नवीन

भारतीय शासन-विधान

(दो भाग)

भूमिका-लेखक

माननीय डा० नारायण भास्कर खरे
प्राइम मिनिस्टर, मध्य प्रान्त ।

प्रस्तावना-लेखक

माननीय डा० कैलाशनाथ काटजू
एम० ए०, एल-एल० डी०,
न्याय-मंत्री, संयुक्त प्रान्त ।

लेखक

रामनारायण 'यादवेन्दु' बी० ए०, एल-एल० बी०,

प्रकाशक

नवयुग साहित्य निकेतन,
आगरा ।

प्रथम संस्करण
११००

मूल्य दो रुपये

प्रकाशक—

नवयुग साहित्य निकेतन,

राजामण्डी-आगरा।

प्रथम संस्करण

अप्रैल सन् १९३८ ई०

मूल्य दो रुपये

मुद्रक—

सत्यपाल शर्मा,

कान्ति प्रेस, माईथान-आगरा।

प्रकाशक की ओर से

प्रिय पाठको !

आपको यह जानकर हर्ष होगा कि इस वर्ष के प्रारंभ में आगरा-नगर में नवयुग साहित्य निकेतन नामक एक प्रकाशन संस्था की स्थापना की गई थी। इस संस्था की ओर से राष्ट्र-भाषा में गंभीर राष्ट्रीय और समाजोपयोगी ऐसे साहित्य का प्रकाशन किया जायगा जो समाज और देश में जीवन, जागृति और स्फूर्ति प्रदान कर सच्ची नागरिकता को जन्म दे।

इस संस्था की प्रथम रचना नवीन भारतीय शासन विधान आपके कर-कमलों में है। यह पुस्तक सुप्रसिद्ध लेखक श्री० रामनारायण 'यादवेन्दु' बी० ए०, एल-एल० बी० के गंभीर अध्ययन, मनन और चिन्तन का फल है। हमारा यह विश्वास है कि इस विषय पर राष्ट्रभाषा हिन्दी में ऐसी सर्वाङ्ग-पूर्ण और आलोचनात्मक रचना इस विषय पर आज तक नहीं निकली। हमने इस पुस्तक को यथा संभव सुन्दर, आकर्षक और उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया है।

अन्त में हम श्रीयुत रामस्वरूप जी सगर और श्री नत्थी लाल जी यादव को धन्यवाद देते हैं जिन्होंने हमारी योजना को सफल बनाने में हमें पूर्ण सहयोग प्रदान किया है।

अपने कृपालु पाठकों से त्रुटियों के लिए क्षमा माँगते हुए, हम यह आशा करते हैं कि वे हमारी इस रचना को हृदय से स्वीकार कर हमें प्रोत्साहन देने की अनुकम्पा करें तथा हमारी योजना में योग-दान दें जिससे भविष्य में हम सुन्दर, सामयिक और उच्च कोटि की गंभीर रचनाएँ आपकी सेवा में भेंट कर सकें।

निवेदक

एल० आर० निम

नवीन भारतीय शासन-विधान

लेखक
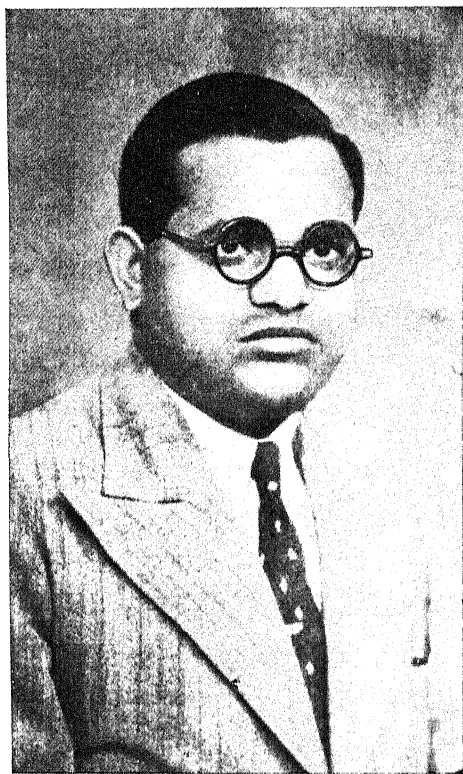
श्री० रामनारायण 'यादवेन्दु'

बी० ए० एल-एल० बी०

लेखक का निवेदन

सभ्यराष्ट्र के प्रत्येक नागरिक का, जो शासन-प्रबन्ध में भाग लेना चाहता है, यह परम कर्त्तव्य है कि वह अपने देश के शासन-विधान का अध्ययन करे जिसके अनुसार देश का शासन-संचालन होता है। भारतवर्ष के लिए ब्रिटिश-पार्लिमेंट ने जो नवीन-शासन-विधान सन् १६३५ ई० में स्वीकार किया था उसके अनुसार आज ब्रिटिश भारत के ११ प्रान्तों में शासन किया जा रहा है। जिस वर्ष यह विधान निर्माण किया गया था उस वर्ष ही मेरा यह विचार हुआ कि मैं राष्ट्रभाषा हिन्दी में इस विषय पर लिखूँ। परंतु यह कार्य मैंने कतिपय निजी कारणों से स्थगित कर दिया और सन् १६३६ ई० के मध्य में मैंने भारतीय शासन-विधान पर पुस्तक लिखना प्रारम्भ किया। पुस्तक तो लिख गई परंतु उसका प्रकाशन उस समय न हो सका। तदुपरान्त प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं के चुनाव शुरू हो गये। ता० १ अप्रैल १६३७ को ब्रिटिश भारत के ११ प्रान्तों में प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना की गई। इसके बाद ऐतिहासिक वैधानिक संकट उपस्थित हो गया जिसके कारण अल्प-मत के अस्थायी मंत्रि-मंडलों (Interim Ministries)

ने तीन मास तक शासन किया। इस बीच स्थिति में जो परिवर्तन हुए उनके कारण पुस्तक में भी यथास्थान परिवर्तन और संशोधन करने पड़े।

विज्ञ पाठक वृन्द! मैंने इस पुस्तक को यथासाध्य सर्वाङ्ग पूर्ण, विवेचनात्मक, सरल और प्रसाद-पूर्ण बनाने का प्रयास किया है। नवीन शासन-विधान (Government of India Act of 1935) अत्यन्त क्लिष्ट एवं गहन और ऐसा है कि जो सामान्यतया सर्व साधारण के समझने में बड़ी कठिनाई से आ सकता है। एक्ट की भाषा भी बहुत ही क्लिष्ट और दुरूह है। परंतु मैंने इस पुस्तक में उसे अतिशय सरल एवं सुबोध बनाने का प्रयत्न किया है जिससे केवल राजनीति के विद्यार्थी और व्यवस्थापिका परिषदों (Legislatures) के सदस्य ही आसानी से नहीं समझ सकेंगे प्रत्युत शिक्षित जनता के लिए भी यह पठनीय है।

नवीन भारतीय शासन-विधान में अनेक त्रुटियाँ एवं दोष हैं और उनकी इस पुस्तक में विस्तार से आलोचना की गई है। आलोचना करने का उद्देश केवल यही है कि विधान के इन दोषों के निवारण के लिए शीघ्रातिशीघ्र प्रयत्न किया जाय जिससे शासन-विधान, वास्तविक अर्थ में, प्रगतिशील भारतीय लोकमत की आकांक्षा के अनुरूप बन जाय।

इस पुस्तक के लिखने में मैं कहाँ तक सफल हुआ हूँ यह तो विज्ञ पाठक और विद्वान समालोचक ही निर्णय देंगे; परन्तु मैं

केवल इतना निवेदन कर देना चाहता हूँ कि मैंने इस पुस्तक को सर्वथा उपादेय बनाने में कोई बात उठा नहीं रक्खी है।

मैं मध्य-प्रान्त और बरार के प्रधान-मंत्री (Premier) माननीय श्री नारायण भास्कर खरे बी० ए०, एम० डी० (नागपुर) और माननीय डा० कैलाशनाथ काटजू एम० ए० एल-एल० डी०, न्याय-मंत्री (Minister of Justice) संयुक्त-प्रान्त का अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने अपना बहुमूल्य समय देकर इस पुस्तक की भूमिका लिखकर इसे गौरव प्रदान किया है।

नवयुग-साहित्य-निकेतन आगरा ने मेरी इस रचना को प्रकाशित कर राष्ट्र-भाषा हिन्दी के पाठकों की जो सेवा की है, उसके लिए मैं उसके अधिकारियों का अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

मैं यह जानता हूँ कि इस विश्व में कोई भी मानव-रचना दोषों से मुक्त नहीं होती। फिर यदि मेरी इस कृति में त्रुटियाँ रह गई हों, तो यह स्वाभाविक ही है। मैं अपने कृपालु पाठकों और विद्वान समालोचकों एवं सम्पादकों से यह निवेदन करूँगा कि वे सहानुभूति पूर्वक मेरा त्रुटियों की ओर ध्यान दिलाने की कृपा करें जिससे भावी संस्करण में उनका संशोधन किया जा सके।

शान्ति-निवास
राजामंडी-आगरा
१ अप्रैल सन् १९३८ ई०

रामनारायण 'यादवेन्दु'

भूमिका

आज भारतवर्ष अपनी स्वाधीनता-प्राप्ति के लिए लड़ रहा है। हमने पूर्ण स्वतंत्रता अपना ध्येय घोषित कर दिया है और उसकी प्राप्ति के लिए तन-मन-धन से यत्नशील हैं। हमारी लड़ाई समय-समय पर परिस्थिति के अनुसार विविधि रूप लेती रही है। असहयोग, सत्याग्रह, सविनय-भंग, विधायक कार्यक्रम और वैधानिक (Constitutional) लड़ाई इन सब मार्गों का हमने अवलंबन किया है। रास्ते या तरीक़े चाहे बदले हों, लेकिन हमारा ध्येय नहीं बदला और हमारा युद्ध तब तक जारी रहेगा जब तक कि हम अपने उद्देश्य की प्राप्ति नहीं कर लेते।

इस तरह वैधानिक कार्यक्रम या पार्लिमेंटरी कार्रवाई हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन का ही एक पहलू है। ब्रिटिश सरकार ने हम पर गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट ऑफ १९३५ के ज़रिये एक नवीन शासन-विधान लादा है जो नितान्त अग्राह्य, प्रतिक्रिया-वादी और प्रजातंत्र के सिद्धान्तों के खिलाफ है। इसके दो अङ्ग हैं जिन्हें प्रान्तीय स्वराज्य (Provincial Autonomy) और

संघ-शासन (Federation) कहा गया है। देश के सभी राजनीतिक दलों ने इस शासन-विधान का कड़ा विरोध किया है, यहाँ तक कि ऐसे दलों ने भी, जो अरसे से ब्रिटिश हुकूमत के खैरख्वाह थे, इसकी निन्दा की है और कहा है कि भारतीय आकांक्षाओं की दृष्टि से यह एकदम अधूरा है। यह शासन-विधान इतना खराब क्यों है इसका ज्ञान प्राप्त करने के लिए इसका अध्ययन आवश्यक है। राजनीतिक शिक्षा के बिना राष्ट्रीयता का विकास असंभव है।

मुझे यह देख कर प्रसन्नता होती है कि इस पुस्तक के लेखक श्रीयुत रामनारायण 'यादवेन्दु' ने इस विषय के महत्व को पहचान कर उस पर एक अध्ययन-शील ग्रन्थ लिखा है। श्री० 'यादवेन्दु' की साहित्य-सेवा हिन्दी संसार से छिपी नहीं है। उन्होंने विविधि विषयों पर सरल भाषा में सुन्दर पुस्तकें लिखी हैं।

इस पुस्तक में भी उन्होंने अपनी अध्ययन-शील मनोवृत्ति का परिचय दिया है। मेरा ख्याल है कि ऐसी पुस्तक की हमें बड़ी आवश्यकता है।

इस पुस्तक में लेखक ने नवीन शासन-विधान के सभी प्रमुख अङ्गों पर समुचित प्रकाश डाला है और साथ ही साथ यह भी बतलाने का प्रयत्न किया है कि उनमें किन-किन स्थानों

में त्रुटि रह गई है। इससे पुस्तक सर्व साधारण के समझने के लिए उपयुक्त हो गई है।

नवीन शासन-विधान के संबंध में अंगरेज़ी में कुछ अच्छी पुस्तकें निकल चुकी हैं जिनमें राष्ट्रीय दृष्टि-कोण को सामने रखते हुए शासन-विधान की विवेचना की गई है। हिन्दी में ऐसे साहित्य की बड़ी आवश्यकता है। हमारी धारा-सभाओं (Legislatures) के कतिपय सदस्य और ग्रामों में कार्य करने वाले अनेक कार्यकर्त्ता अंगरेज़ी भाषा नहीं जानते। उनके पास जब तक सरल राष्ट्र-भाषा हिन्दी में सब ज्ञान नहीं पहुँचाया जाता, तब तक वह उनके काम की चीज़ नहीं हो सकती। मैं आशा करता हूँ कि श्री यादवेन्दुजी की यह पुस्तक इस दिशा में सहायक सिद्ध होगी। पुस्तक की भाषा सरल है, विवेचन उत्तम है, हिन्दी-भाषी जनता उसका समुचित आदर करेगी, यह मेरा विश्वास है।

घनतोली
नागपुर
२८ मार्च १९३८ ई०

नारायण भास्कर खरे
प्राइम मिनिस्टर
मध्य प्रान्त और बरार।

प्रस्तावना

श्री रामनारायण 'यादवेन्दु' बी० ए० एल-एल० बी० ने यह पुस्तक हिन्दी भाषा में लिखकर सर्व-साधारण पर एक प्रकार से उपकार किया है। जो सज्जन अँग्रेजी भाषा से अनभिज्ञ हैं, उनके लिए एक ऐसी पुस्तक की आवश्यकता थी कि जिससे वह भारतवर्ष में राजनीतिक स्वतंत्रता की उत्तरोत्तर वृद्धि के इतिहास से कुछ जानकारी हासिल करलें। योग्य लेखक ने परिश्रम से इस इतिहास का क्रम-वद्ध संग्रह किया है और उस पर अच्छा विचार किया है और जैसा कि उनकी पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ से विदित है इस विषय की अनेक प्रसिद्ध तथा उत्तम पुस्तकों से सहायता लेकर उन्होंने इस ग्रन्थ की रचना की है।

सभी राजनीतिज्ञ इस बात पर सहमत हैं कि नये क़ानून में जहाँ कुछ अंशों में भारतवासियों को विशेष अधिकार दिए गए हैं, वहाँ अनेक बातों में पुराने क़ानून में दिए हुए अधिकारों को भी छीन लिया गया है और यह भी निर्विवाद है कि नये क़ानून से भारतवर्ष का कोई भी राजनीतिक दल सन्तुष्ट नहीं। संघ-शासन-प्रणाली (Federation) चाहे किसी इच्छा

से नये क़ानून का भाग बनाई गयी हो; परन्तु देश की वर्त्तमान अवस्था में यह एक जटिल समस्या बन गई है। आश्चर्य न होगा यदि यह भविष्य में एक तीव्र आन्दोलन का कारण बन जाय। पुस्तक के लेखक ने प्रान्तीय-स्वराज्य (Provincial Autonomy) तथा संघ-राज्य (Federation) के उचित भाग करके प्रत्येक पर अच्छा प्रकाश डाला है। मुझे पूरी आशा है हिन्दी जानने वाले स्त्री-पुरुष इस पुस्तक को पढ़कर लाभ उठायेंगे और योग्य लेखक के परिश्रम को सफल करेंगे। यद्यपि समयाभाव से मैं इस पुस्तक के विषय पर कुछ लिखने में असमर्थ हूँ परन्तु यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि पुस्तक के पढ़ने के पश्चात् पाठकों के ज्ञान में उचित वृद्धि होगी और यदि भविष्य में इस नये क़ानून (New Indian Constitution) के किसी विषय के कारण राजनीतिक झोंके आये तो पाठक उस अवसर पर उस विषय में सचेत होकर अपनी राय क़ायम कर सकेंगे।

२१ मार्च सन् १९३८
लखनऊ।

कैलाशनाथ काटजू
न्याय-मंत्री,
संयुक्त प्रान्त।

विषय-सूची

प्रथम भाग—प्रान्तीय स्वराज्य।

द्वितीय भाग—संघ-शासन।

परिशिष्ट

❀ ओ३म् ❀

नवीन

भारतीय शासन-विधान

अध्याय १

शासन-विधान के सिद्धान्त

१—प्रान्तीय स्वराज्य

नवीन भारतीय शासन-विधान की आधार-भूत विशेषता है भारत के प्रान्तों में प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना। भारत के प्रान्तों में 'प्रान्तीय स्वराज्य' का बीजारोप बहुत पहले से हो चुका था। भारतीय लोकमत को यह विश्वास था कि ब्रिटिश सरकार भारतवासियों के हाथों में समग्र देश का शासन-सूत्र इतना शीघ्र नहीं देगी। ब्रिटिश-शासन में विकासवादी प्रवृत्तियाँ स्पष्टतः

दीख पड़ती हैं। आज ब्रिटेन में पर्लिमेंटरी शासन-प्रणाली का जो विकास इस दशा को पहुँच चुका है, वह किसी एक या दो विधान-निर्मात्री-परिषदों के शासन-विधानों का परिणाम नहीं है, प्रत्युत इस प्रणाली के क्रमिक विकास का फल है। ब्रिटिश सरकार भी अपने इस परीक्षण का प्रयोग भारतवर्ष में करना चाहती है। वह भारतवर्ष में 'क्रमिक विकास' की पक्षपातिनी है। यही कारण है कि भारतवर्ष के नगरों और ज़िलों को सबसे पूर्व स्थानीय स्वराज्य प्रदान किया गया और अब भारत के ११ प्रान्तों में 'प्रान्तीय स्वराज्य' की स्थापना की गयी है। १ अप्रेल सन् १९३७ को 'प्रान्तीय स्वराज्य' की स्थापना की गयी थी।

भारतवासी ब्रिटिश सरकार की इस विकासवादी मनोवृत्ति से भली भाँति परिचित हैं। इसलिए आज से कई दशाब्दियों पूर्व भारत में 'अधिकार-विभाजन' की माँग पेश की गयी। भारत-वासियों की यह माँग थी कि स्थानीय संस्थाओं, प्रान्तीय और केन्द्रिय शासन में उनका यथेष्ट प्रतिनिधित्व स्वीकार किया जाय। सन् १९२१ से पूर्व ब्रिटिश सरकार ने उनकी यह माँग स्वीकार नहीं की। सन् १९२१ के शासन-सुधारों से पूर्व प्रान्तीय सरकारें भारत-सरकार की केवल 'एजेण्ट' मात्र थीं। उन्हें भारत-सरकार की नीति और आदेश के अनुसार अपने प्रान्तों का शासन करना पड़ता था।

सन् १९२१ के शासन-सुधारों से पूर्व भारत-सरकार का प्रान्तीय सरकारों की व्यवस्थापक, कार्यकारिणी और आर्थिक व्यवस्था पर पूरा नियन्त्रण था। सन् १९१९ में मोन्टेग्यू-चेम्स फोर्ड ने सबसे पहली बार ब्रिटिश पार्लिमेंट से यह शिफारिश की कि पार्लिमेंट, भारत-मंत्री और भारत-सरकार का प्रान्तीय

सरकारों पर नियन्त्रण कम हो जाना चाहिये। यदि प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाएँ अपने शासन-प्रबंध में उत्तरदायित्व ग्रहण करेंगी, तो ऐसा किया जाना अनिवार्य है। मोन्टेग्यू चेम्सफोर्ड की शासन-सुधार रिपोर्ट के आधार पर जो शासन-विधान सन् १६२१ में तैयार किया गया उसमें प्रान्तों में, उत्तरदायित्व की कुछ मात्रा का समावेश भी किया गया। प्रान्त में 'द्वैध-शासन' प्रणाली की स्थापना की गयी जिसके अनुसार कुछ विषयों का उत्तरदायित्व भारतीय-मन्त्रियों को सौंप दिया गया। अब प्रान्तों में 'प्रान्तीय स्वराज्य' की स्थापना हो जाने से, द्वैध-शासन-प्रणाली का अन्त हो गया है और प्रान्तीय-शासन भारतीय मंत्रि मंडल के अधीन कर दिया गया है।

'प्रान्तीय-स्वराज्य' भावना का प्रादुर्भाव

भारत के प्रान्तों में प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना की योजना नवीन नहीं है। आज से ८० वर्ष पूर्व जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारतीय शासन-सूत्र ब्रिटिश सरकार के हाथों में सौंप दिया तब जॉन ब्राइट ने यह कहा था कि हम भारतवासियों की दशा में उस समय तक सुधार नहीं कर सकते जब तक कि प्रत्येक 'प्रेसीडेन्सी' को पहले से अधिक स्वतन्त्र अधिकार न दे दिये जाँय। जॉन ब्राइट ने बड़े जोरदार शब्दों में कहा कि—"हम जो कुछ चाहते हैं, वह यह कि 'प्रेसीडेन्सियों' की सरकारें 'प्रेसीडेन्सियों' की जनता की सरकारें बना दी जाँय। सम्राट् की नौकरशाही की सरकारें न बनें।.........यदि ऐसा एक शताब्दी या इससे अधिक समय तक रहा, तो भारत में पाँच या छः प्रेसीडेन्सियाँ बन जायँगी; यदि भविष्य में भारत में इङ्गलैण्ड की प्रभुता वापस कर ली गयी, तो उस समय से प्रेसीडेन्सी प्रान्त स्वतन्त्र बन जायँगे और हम यह कहने के योग्य हो सकेंगे

कि हमने देश को उस अराजकता और फूट का शिकार नहीं बनने दिया, जो मेरे विचार में अनिवार्य है, यदि हम इस विशाल देश को एक बड़ा साम्राज्य बनाने के उद्देश से अपने अधीन रखने के लिए जोर देते रहें।"❀

इस महान् राजनीतिज्ञ और विद्वान ने जिस भावना को उपरोक्त ज़ोरदार और प्रभावपूर्ण शब्दों में व्यक्त किया है, उसकी ओर से ब्रिटिश-सरकार, भारतीय-शासन के संबंध में आज तक उदासीन रही है। जॉन ब्राइट ने जिन उच्च विचारों को आज से ८० वर्ष पूर्व ब्रिटिश पार्लिमेंट को लक्ष्य करके प्रगट किया था, उनको आज तक पार्लिमेंट क्रियात्मक रूप नहीं दे सकी।

❀ "What we want to make is to make the governments of the presidencies governments of the people of the presidencies; not governments of the Civil Servants of the crown.......If that were to go on for a century or more, then there would be five or six presidencies of India built up into so many compact States; and if at any future period the sovereignty of England should be with-drawn, we should have so many presidencies built up and firmly compacted together each able to support its own independence—and own government, and we should be able to say we had not left the country a prey to that anarchy and discord whice I believe to be inevitable, if we insist on holding these vast territories with the idea of building them up into one great empire."—John Bright A Critique of the White Paper Part I.

सन् १९११ ई० में भारत के तत्कालीन गवर्नर-जनरल 'लार्ड हार्डिङ्ग ने भारत-मंत्री को अपने 'डिस्पेच' में भी उपरोक्त विचारों को दोहराते हुए कहा—"......भारतवासियों की देश के शासन में अधिक भाग लेने की माँग को पूरा कर दिया जाय।" इसका एक उपाय है और वह यह कि 'प्रान्तों में अधिक से अधिक स्वायत्त-शासन' संस्थाओं की स्थापना की जाय। इस डिस्पेच पर भी कोई ध्यान नहीं दिया गया। सन् १९१४ ई० में यूरोपीय महायुद्ध छिड़ गया।

भारत-मंत्री की घोषणा

२० अगस्त सन् १९१७ को भारत-मंत्री ने पार्लिमेंट में भारत के संबंध में निम्नलिखित घोषणा की:—

"ब्रिटिश सरकार की नीति, जिससे ब्रिटिश-भारत की सरकार पूरी तरह सहमत है, राज्य-प्रबंध के प्रत्येक विभाग में भारत-वासियों का बढ़ता हुआ सहयोग प्राप्त करना और भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के एक भाग के रूप में प्रगति-शील उत्तरदायी शासन की स्थापना के उद्देश से स्वायत्त-शासन संस्थाओं का विकास करना है। सरकार ने यह निश्चय कर लिया है कि इस दिशा में ठोस कार्य शीघ्रातिशीघ्र किया जाय। यह कार्य कैसा हो,—यह विचार करने से पूर्व ब्रिटिश-सरकार और भारत-सरकार में स्वतंत्र और अनियमित विचार विनिमय होना चाहिए। इसीलिए सरकार ने यह निश्चय किया है—इस निश्चय को सम्राट ने भी स्वीकार कर लिया है—कि मुझे वायसराय के निमंत्रण को स्वीकार कर भारत में जाना चाहिये और वहाँ जाकर वायसराय और भारत-सरकार के साथ इन मामलों पर विचार करना चाहिए; वायसराय के साथ प्रान्तीय

सरकारों के विचारों और प्रतिनिधि-संस्थाओं के प्रस्तावों पर भी विचार करना चाहिए।"

भारतवर्ष में उत्तरदायी-शासन की स्थापना के लिए ब्रिटिश सरकार की यह सर्व प्रथम घोषणा है। इससे पूर्व ब्रिटिश-सरकार अनुत्तरदायी ढंग से नौकरशाही द्वारा शासन करती रही थी। सबसे पहली बार बड़े अस्पष्ट रूप में ब्रिटिश पार्लिमेण्ट ने भारत में ब्रिटिश राज्य के ध्येय की घोषणा करते हुए जॉनब्राइट के विचारों को अपनाया।

मोन्टेग्यू-चेम्सफोर्ड-रिपोर्ट

इस रिपोर्ट में यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है कि ब्रिटिश सरकार ने भारत में राजतंत्र-पद्धति के अनुसार राज किया है।❀ रिपोर्ट के द्वितीय भाग में सिफारिशों में यह उल्लेख किया गया है कि:—

"प्रान्तों में सबसे पूर्व शीघ्र ही प्रगतिशील उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिए प्रयत्न किया जाना चाहिए। कुछ उत्तरदायित्व तो शीघ्र ही दे दिया जाय। हमारा ध्येय है शीघ्र से शीघ्र पूर्ण उत्तरदायित्व की स्थापना। इसका मतलब यह है कि प्रान्तों को व्यवस्था, प्रबंध और राजस्व के मामलों में भारत-सरकार के नियंत्रण में अधिक से अधिक स्वतंत्रता देदी जाय जिससे प्रान्त की सरकारें अपने उत्तरदायित्वों का पूरी तरह पालन कर सकें।"†

❀ Vide—Report on Indian Constitutional Reforms. page 2 (1918).

† Vide—Report on Indian Constitutional Reforms. page 124 (1918).

इन शासन-सुधारों के आधार पर जो शासन-विधान बनाया गया, उसमें यह सिद्धान्त स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया कि कार्य-कारिणी को व्यवस्थापिका के द्वारा जनता के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए।

प्रान्तीय स्वराज्य की परिभाषा

संयुक्त-पार्लिमेंटरी कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में उपरोक्त सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए प्रान्तों में 'स्वराज्य' की स्थापना के लिए सिफारिश की। उपरोक्त कमेटी ने प्रान्तीय स्वराज्य की परिभाषा निम्न प्रकार की है:—

"प्रान्तीय स्वराज्य की योजना, जैसा हम समझते हैं, वह है जिसके अनुसार प्रत्येक गवर्नर के प्रान्त में एक कार्य-कारिणी सभा और एक व्यवस्थापिका सभा होगी, जिनकी प्रान्त में स्पष्ट रूप से मर्यादित क्षेत्र में पूर्ण सत्ता होगी और उस मर्यादित क्षेत्र में वे केन्द्रिय सरकार और केन्द्रिय व्यवस्थापिका के नियत्रंण से मुक्त रहेंगे। इसे हम प्रान्तीय स्वराज्य का मूल तत्व मानते हैं।...यह पद्धति उस वर्त्तमान प्रणाली से मौलिक रूप में भिन्न है जिसके अन्तर्गत प्रान्तीय सरकारें 'प्राप्त' अधिकारों का—मौलिक अधिकारों का नहीं—प्रयोग करती हैं।"॥

इसमें थोड़ा भी सन्देह नहीं कि भारत में प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना 'स्वाभाविक विकास' है। भारतीय-राजनीति का प्रत्येक विद्यार्थी चाहे उसका राजनीतिक ध्येय व आदर्श कितना ही भिन्न क्यों न हो, यदि मोन्टेग्यू-चेम्सफोर्ड-रिपोर्ट (१९१८)

॥ Vide—Joint Commiteeon Indian Reforms (1934). page 2.

से सायमन-कमीशन-रिपोर्ट (१९३०) और उसके बाद गोलमेज परिषद् तक की कार्यवाही का अध्ययन करे तो वह इस परिणाम पर पहुँचेगा कि ये सब घटनाएँ भारत में प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना की ओर ले जाती हैं। वर्षों से भारत-सरकार हस्तान्तर (Devolution) द्वारा प्रान्तीय सरकारों को अधिकार प्रदान करती रही है। संयुक्त-कमेटी की राय में भारत-सरकार की इस नीति ने तीन महत्वपूर्ण परिणाम उत्पन्न कर दिये हैं:—

१—इस नीति ने प्रान्तीय-शासन प्रबन्ध को ब्रिटिश-शासन के निकट नियंत्रण से दूर कर दिया है। इस प्रकार यह संभव हो गया है कि कुछ मात्रा में स्थानीय उत्तरदायी शासन की स्थापना हो सके।

२—इसने प्रान्तों को सामाजिक सेवाओं की उन्नति का केन्द्र बना दिया है।

३—इसने प्रान्तीय कार्य-कारिणी को व्यवस्था व नियम की रक्षा के लिए प्राथमिक उत्तरदायित्व हस्तान्तरित करने में योग दिया है।

प्रान्तीय स्वराज्य की तीन विशेषताऐं

१—द्वैध-शासन-पद्धति का विकास—संयुक्त-रिपोर्ट में लिखा है—"प्रान्तों में वर्त्तमान द्वैध-शासन-पद्धति के प्रयोग का तात्पर्य था उत्तरदायित्व की भावना का विकास करना और इसने वास्तव में बहु संख्या में सार्वजनिक नेताओं को सरकार के उत्तरदायित्व का अनुभव प्रदान किया है।.......उत्तरदायित्व की भावना चरित्र का वह गुण है जो अनुभव से प्राप्त होता है। यह कोई पोशाक नहीं है जिसे जब चाहे तब अपनी इच्छानुसार किसी विशेष सामाजिक कृत्य

या उत्सव में सम्मलित होनेवाला व्यक्ति समयानुकूल पहन ले अथवा उतार दे।''' अतः द्वैध-शासन प्रणाली का नाश कर देना चाहिए। प्रान्तीय मंत्रि-मंडल प्रान्तीय सरकार के समस्त क्षेत्र के लिए सामान्यतया उत्तरदायी होना चाहिए।"

२—सामाजिक व्यवस्था—"यह प्रत्यक्ष है कि सामाजिक प्रबन्ध के क्षेत्र में अब स्थिति यह है कि भविष्य में उन्नति इस बात पर निर्भर है कि भारत वासी भारतीय सामाजिक दशाओं के लिए यथार्थ उत्तरदायित्व ग्रहण करें।''''' भारतीय जीवन के एक पहलू से ब्रिटिश-राज्य सदैव उदासीन रहा है। उसने भारत के समस्त धार्मिक मामलों में तटस्थता और उदासीनता की नीति इख्त्यार की है।''''''' अब यह स्पष्टतः-प्रत्यक्ष हो गया है कि [ऐसे नियमन या व्यवस्था के मार्ग में आई हुई बाधाएँ भारतीयों द्वारा ही दूर हो सकेंगी। इस कार्य की गहनता के विषय में हम अनभिज्ञ नहीं हैं किन्तु हमारा मत स्पष्ट है कि सिर्फ़ उत्तरदायी शासन के अन्तर्गत ही यह कार्य सफलता की आशा से किया जा सकता है।"

३—क़ानून और व्यवस्था का प्रयोग—संयुक्त-कमेटी की राय में प्रान्तीय स्वराज्य का यह तीसरा पहलू सबसे अधिक कठिन और महत्वपूर्ण है।

संयुक्त-कमेटी की यह राय है कि "प्रान्तीय मंत्री इन कर्त्तव्यों को पूरा करने के लिए उत्तरदायी बनाये जांय। परन्तु यह भली-भाँति याद रखना चाहिये कि ब्रिटिश वैधानिक प्रथा के अनुकूल इस उत्तरदायित्व की प्रकृति क्या है। यह ऐसा उत्तरदायित्व है जिसे कोई कार्य-कारिणी किसी भी व्यवस्थापिका के साथ विभाजित नहीं कर सकती, चाहे वह उसे पूरा करने

की विधि के लिए व्यवस्थापिका के प्रति कितनी ही उत्तरदायी क्यों न हो। यह बात भारत-सरकार के पार्लिमैंट के सम्बन्धों के विषय में सत्य सिद्ध हुई है और भविष्य में प्रान्तीय मन्त्रियों के प्रान्तीय व्यवस्थापिकाओं के सम्बन्ध के बारे में भी यह बात सत्य होनी चाहिये। भारत की विशेष परिस्थितियों में यह समुचित है कि कार्य-कारिणी की स्वतंत्रता का यह सिद्धान्त. शासन-विधान में, गवर्नर को बहैसियत प्रान्तीय कार्य-कारिणी के प्रमुख के विशेष अधिकार और उत्तरदायित्व प्रदान करके और भी अधिक शक्ति-शाली बना दिया जाय।"

कहना न होगा कि प्रान्तीय स्वराज्य की यह अन्तिम सबसे बड़ी और महत्वपूर्ण विशेषता, उसका सबसे बड़ा दोष है जिसके कारण प्रान्तीय उत्तरदायित्व एक सार-हीन चीज बन गया है।

२—संघ शासन

संघ के मूलतत्व—राजनीतिक अर्थ में संघ का मतलब है स्वतंत्र राज्यों का सामान्य❀ उद्देश की पूर्ति के लिए संगठित हो जाना। अपने सामान्य उद्देश की सिद्धि के लिए संघ में सम्मलित होने वाले स्वतंत्र राज्यों को अपनी स्वतंत्र प्रभुता का अधिक भाग त्याग देना होता है। इस प्रकार इन राज्यों के संगठन से जो राज्य स्थापित होता है, वह संघ कहलाता है और वह संघ के समान अङ्गों से अधिक शक्तिशाली और सर्वोपरि होता है।

संघ और उसके अङ्गों में प्रभुता विभाजित हो जाती है। इसका स्पष्ट शब्दों में यह मतलब है कि कुछ विशेष कार्य पूर्ण-

❀ Common.

रूप से केवल संघीय राज्य को सौंप दिये जाते हैं और इनके अतिरिक्त दूसरे निश्चत कार्य संघ में सम्मलित होने वाले राज्यों के अधीन सुरक्षित रहते हैं। व्यवस्थापिका, कार्यकारिणी और न्याय-संबंधी प्रत्येक कार्य संघीय राज्य और संघ के राज्यों में विभाजित कर दिये जाते हैं।

इस प्रकार प्रत्येक राष्ट्र अपने एक निश्चित क्षेत्र में 'प्रभुता' का प्रयोग करता है। संघीय राज्य का शासन-विधान लिखित एवं निश्चित होता है और उसका सामान्य रीति से संशोधन नहीं किया जा सकता। उसकी व्याख्या के लिए न्यायालय और उसके संशोधन के लिए विधान-निर्मात्री परिषद होती है। इस शासन-विधान में जनता की इच्छा का समावेश होता है; इसलिए यह वास्तविक सत्ता का स्रोत है। संघ की प्रकृति का जो वर्णन किया गया है उससे यह सर्वथा स्पष्ट है कि संघ में समान राज्यों का संगठन होता है। वे समान रूप से संघ से प्राप्य अधिकारों और लाभों का उपयोग करते हैं। अतः संघ के नागरिकों की राजभक्ति भी दो भागों में बँट जाती है। प्रत्येक नागरिक उस राज्य के प्रति राजभक्त होता है जिसमें वह सामान्यतया निवास करता है अथवा जिसका नागरिक होता है और इसके साथ-साथ वह संघीय राज्य के प्रति भी राजभक्त होता है। संघीय-शासन की पद्धति लोकतंत्र-वादी है।

संघ की पूर्व आवश्यकताएँ

१—भौगोलिक एकता:—संघ-शासन की स्थापना के लिए सबसे प्राथमिक आवश्यकता है भौगोलिक एकता अर्थात् जो राज्य संघ में सम्मलित होना चाहें वे परस्पर भौगोलिक दृष्टि से मिले हुए हों। कुछ राजनीतिक लेखकों ने ब्रिटिश साम्राज्य को ब्रिटिश

कॉमनवैल्थ ऑफ नेसन्स❀ नाम देकर उसे संघ का नाम दिया है। परन्तु राजनीति-विज्ञान के अनुसार ऐसा कहना सर्वथा अनुचित है। ब्रिटिश-साम्राज्य में, कनाड़ा, दक्षिणी अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलेण्ड, लंका और भारत सम्मलित हैं। यह सब परस्पर हज़ारों मीलों की दूरी पर स्थित हैं। ऐसी दशा में इनका संघ नहीं बन सकता।

२—सांसारिक सामान्य हित—भौगोलिक एकता के साथ-साथ उनके पारस्परिक सामान्य भौगोलिक सांसारिक या भौतिक हितों का अस्तित्व भी आवश्यक है। इन हितों की रक्षा के लिए वे परस्पर संघ बनाना चाहते हैं।

३—सांस्कृतिक या जातीय एकता एवम् चेतना—जो राज्य संघ में सम्मलित होना चाहें उनमें एक ऐसी सांस्कृतिक एकता अथवा जातीय चेतना की भावना होनी चाहिए जो उनमें एकता के लिए इच्छा जागृत करे।

४—सामान्य खतरे की सम्भावना—संघ में जो राज्य सम्मलित होते हैं उनका एक प्रधान उद्देश होता है एक ऐसे शक्तिशाली सामान्य-शासन की स्थापना जो उनको दूसरे शत्रु राष्ट्रों के खतरों से बचा सके, उनकी रक्षा कर सके।

संघ-शासन की भावना

सन् १९१८ में मोण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड-रिपोर्ट में भारत के भविष्य के विषय में जो चित्र खींचा गया है, उसमें संघ का अस्पष्ट रूप में बीजारोप मिलता है। रिपोर्ट में लिखा है:—

"हमारी भारत के भविष्य की कल्पना है राज्यों का एक संघ। यह राज्य अपने स्थानीय या प्रान्तीय क्षेत्र में स्वायत्त-

❀ Common wealth of Nations.

शासन का उपयोग करेंगे।······इस राज्य-समूह पर केन्द्रिय-सरकार का शासन होगा जो समस्त नागरिकों व जनता की प्रतिनिधि होगी और उसके प्रति उत्तरदायी भी; वह समस्त भारत के हित के सब मामलों का नियमन करेगी—चाहे वे आन्तरिक हों अथवा वाह्य। वह अन्तर्राज्य मामलों में पंच होगी, वह ब्रिटिश साम्राज्य के स्वायत्त-शासित प्रदेशों के साथ समानता की शर्तों के साथ अखिल भारत के हितों का प्रतिनिधित्व ग्रहण करेगी। इस चित्र में देशी राज्यों के लिए भी एक स्थान होगा।" ❀

इसके बाद सन् १९३० ई० में सायमन-कमीशन की रिपोर्ट में 'अखिल भारतीय संघ' के आदर्श पर विशदता से विचार किया गया। सायमन-कमीशन ने भारतीय संघ की कल्पना में दो संघों का स्वप्न देखा था; एक ब्रिटिश-भारत का संघ और दूसरा देशी राज्यों का संघ। इसके साथ ही रिपोर्ट में कमीशन ने अपनी यह राय प्रकट की कि "यह विषय ऐसा है जिस पर प्रस्तावित परिषद् में विचार किया जाना चाहिए।" परन्तु इसमें थोड़ा भी सन्देह नहीं है कि सायमन-कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में संघ की जो रूप-रेखा निश्चय की, वही कुछ थोड़े सामान्य परिवर्त्तनों के साथ पार्लिमेंट ने स्वीकार कर ली। कमीशन ने

❀ "We are inclined our-selves to think that the easier and more speedy approach to the desired end can be obtained by reorganising the constitution of India on a federal basis in such a way that individual States or groups of States may have the opportunity of entering as soon as they wish to do."—Indian Statutory Commission Report (1930) page 13.

यह सिफारिश की कि भारत का शासन-विधान संघीय आधार पर बनाया जाय और देशी राज्य या राज्य-समूह को स्वेच्छानुसार जब वे चाहें तब उसमें प्रविष्ठ होने की सुविधा हो। ⁙

सायमन-कमीशन रिपोर्ट में यह बतलाया गया है कि भारतवर्ष में भौगोलिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक एकता है। इनके अतिरिक्त प्रान्तों और देशी राज्यों की सामान्य आवश्यकताएँ भी हैं जिनकी पूर्ति के लिए एक सामान्य यंत्र अपेक्षित है।

सन् १९३१ ई० में 'श्वेत-पत्र' में भी संघ-शासन की योजना का उल्लेख किया गया। सन् १९३४ ई० में पार्लिमैंटरी संयुक्त-कमेटी ने भी अपनी रिपोर्ट में भारतीय संघ के सिद्धान्त को स्वीकार करते हुये भारत में संघ शासन की स्थापना के लिए सिफारिश की। कमेटी की यही योजना नवीन-शासन-विधान में स्वीकार की गयी है।

भारतीय लोकमत सच्चे अखिल भारतीय-संघ के पक्ष में है।

भारत की स्थिति

किन्तु नवीन शासन-विधान (भारत-सरकार क़ानून १९३५) में प्रस्तावित संघ-योजना के पक्ष में भारत का कोई भी राजनीतिक दल नहीं है।❀ इस समय भारत की स्थिति सच्चे संघ की स्थापना के लिए अनुकूल भी नहीं है। शासन-विधान की संघ-योजना भी अपूर्ण और पूर्ण उत्तरदायित्व से रहित है।

⁙ देखिये मोन्टेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट (१९२८) पृ० २२०

❀ अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने अपने कलकत्ता अधिवेशन (अक्टूबर १९३७ ई०) में संघ-शासन के विरुद्ध जो प्रस्ताव पास किया

प्रस्तावित संघ-शासन में दो प्रकार के राज्य सम्मिलित हैं। एक ब्रिटिश भारत के अन्तर्गत गवर्नर के प्रान्त, चीफ़ कमिश्नर

है, उससे यह स्पष्ट विदित होता है कि भारतीय-लोकमत संघ-योजना के विरुद्ध है। प्रस्ताव निम्न प्रकार है:—

"ब्रिटिश सरकार की ओर से इस आशय की घोषणायें किये जाने के कारण कि प्रस्तावित अखिल भारतीय संघ की स्थापना के लिए प्रयत्न किया जायगा, कांग्रेस कमेटी इस स्कीम के प्रति अपने घोर विरोध, निन्दा और उसे हर संभव उपाय से नष्ट करने के निर्णय को दोहराती है। राष्ट्र की स्पष्टतः प्रकट इच्छा के विरुद्ध स्कीम का उद्‌घाटन भारत की जनता के लिए चुनौती होगी। इसलिए कमेटी का यह आदेश है कि प्रान्तीय, स्थानीय कमेटियाँ, जनता और प्रान्तीय सरकारें एवं मन्त्रि-मण्डल उस संघ-शासन की स्थापना को रोकने का प्रयत्न करें, जिससे भारत को बड़ी हानि होगी और उनके हाथ मजबूत हो जायँगे जो उसे साम्राज्यवादी अधीनता में रखे हुए हैं। कमेटी की यह राय है कि प्रान्तीय सरकारों को अपनी व्यवस्थापिका-सभाओं में संघ के विरोध की अभिव्यक्ति करनी चाहिए और ब्रिटिश सरकार से यह प्रार्थना की जाय कि वह प्रान्तों पर उसे न लादे।"

अखिल भारतवर्षीय मुस्लिम लीग ने अपने लखनऊ-अधिवेशन में श्री मुहम्मदअली जिन्ना के सभापतित्व में निम्नलिखित प्रस्ताव संघ-योजना के विरोध में अक्टूबर १९३७ में पास किया:—

"अखिल भारतवर्षीय मुस्लिम लीग का यह अधिवेशन भारत-सरकार क़ानून १९३५ में प्रस्तावित संघ-योजना के प्रति घोर विरोध प्रकट करता है और ब्रिटिश सरकार से यह प्रार्थना करता है कि वह संघ की स्थापना न करे; कारण कि यह भारत की जनता के हितों और विशेषतः मुसलमानों के हितों के विरुद्ध है। यह अधिवेशन लीग की कार्य समिति से प्रार्थना करता है कि वह इस योजना के विरोध के लिए उपाय करे तथा शासन-सुधार की योजना तैयार करे।"

के प्रदेश, पृथक् प्रदेश, व पिछड़े प्रदेश और दूसरे वे देशी रियासतें जो संघ में सम्मिलित होना चाहें। संघ के इन समस्त राज्यों में समान शासन-पद्धति, समान शासनादर्श और समान आदर्शों का अभाव है। देशी राज्यों में राजतन्त्र-पद्धति से नरेश मनमाना शासन करते हैं। बहुत कम राज्यों में प्रतिनिधि-सभाएँ शासन-कार्य करती हैं। दूसरी ओर ब्रिटिश भारत के प्रान्तों में अर्द्ध-लोक-तन्त्रवादी संस्थाओं द्वारा शासन-सूत्र का संचालन होता है। ब्रिटिश प्रान्त ब्रिटिश पार्लिमेंट द्वारा बनाये गये हैं और शासन प्रबंध में भारत-सरकार के एजेण्ट रहे हैं। प्रान्तों का निर्माण शासन-प्रबंध की सुविधा से, प्रान्तीय संस्कृति, भाषा या एकता के कारण नहीं किया गया है। प्रान्तों की समान स्थिति भी नवीन शासन-विधान का परिणाम है। ब्रिटिश प्रान्तों में प्रभुता का अल्प अंश भी नहीं है। ब्रिटिश पार्लिमेंट ही में इनकी प्रभुता निहित है। इसलिए संघ में सम्मिलित होते समय ये अपनी किस प्रभुता का अंश उसे—संघीय भारत को—सौंपेंगे? राजनीति-विज्ञान का यह सिद्धान्त है कि संघ में केवल समान और स्वाधीन राज्य, अपनी इच्छा से, सामान्य उद्देशों की पूर्त्ति के लिए सम्मिलित होते हैं।

परन्तु नवीन-शासन-विधान की संघ-योजना तो व्यक्तिगत प्रान्तों की स्वेच्छा का परिणाम नहीं है। वह तो भारतीय लोकमत के विरुद्ध है। पार्लिमेंट उसे ज़बरदस्ती ब्रिटिश प्रान्तों पर लाद देने का प्रयत्न कर रही है।

संघ-शासन और देशी रियासतें

देशी रियासतों की शासन-प्रणाली ही नहीं उनकी आर्थिक और सामाजिक प्रणालियाँ भी ब्रिटिश प्रान्तों की शासन-प्रणाली और सामाजिक पद्धति से बिलकुल भिन्न हैं। संघ में ऐसी भिन्न शासन-

पद्धतियों का समावेश भारतीय हित की दृष्टि से वांछनीय नहीं हो सकता। रियासतों में शासन-प्रबंध लोकतंत्र के सिद्धान्तों के अनुसार नहीं होता। वहाँ प्रजा की आवाज शासन पर कोई प्रभाव नहीं डालती। प्रभाव कैसे डाले, जब कि प्रजा को अपनी आवाज पहुँचाने के साधनों से वंचित रखा जाता है। देशी रियासतों में कुछ अपवादों को छोड़ व्यवस्थापक-संस्थाएँ ही नहीं हैं। भाषण-स्वातंत्र्य और विचार-स्वातत्र्य का अभाव है। स्वतंत्र विचारों के प्रवेश पर अनेकों प्रकार के बन्धन लगा रक्खे हैं। ब्रिटिश-प्रान्तों से यदि कोई नेता रियासतों में जाना चाहे, वहाँ भाषण देना चाहे अथवा प्रचार करना चाहे तो रियासतें उसके लिए प्रतिबन्धकारी 'आर्डर' निकाल देती हैं। स्वतंत्र और राष्ट्रीय समाचार-पत्रों और पुस्तकों का रियासतों में प्रवेश नहीं होने पाता। ऐसी दशा में देशी राज्यों का प्रान्तों के साथ मेल वास्तव में एक बड़ी विचित्र बात है।

देशी नरेश यह चाहते हैं कि संघ में सम्मिलित तो हो जाँय परन्तु अपने स्वेच्छाचारी राज-तंत्र को ज्यों का त्यों बनाये रखें, सदियों पहले की सन्धियाँ और समझौते ज्यों के त्यों बने रहें; वे अपनी रियासतों में पूरे 'प्रभु' बनकर रहें; पर साथ साथ ब्रिटिश भारत के शासन-प्रबंध में भी भाग लें। इस प्रकार ब्रिटिश भारत में भी स्वेच्छाचारी शासन को जारी करना मात्र उनका ध्येय है।

'भारतीय राष्ट्रीयता के बढ़ते हुए दबाब के कारण ब्रिटिश सरकार ने देशी राज्यों को अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न किया है। इसलिए हाल में उसने इन सन्धियों की पवित्रता की ओर संकेत किया है और लोकतंत्र की स्थापना न करने के लिए उन्हें

एक बहाना बनाया है। परन्तु सन्धियाँ ब्रिटिश हितों और नीति में कभी किसी भी समय बाधा नहीं डाल सकतीं। उनका प्रयोग तो भारत में एकता और लोकतंत्र की स्थापना में बाधा के रूप में किया जायगा। अगर ब्रिटिश सरकार ऐसा चाहती है, तो नरेशों को संघ में सम्मिलित होना ही पड़ेगा, वह अपने सन्धि के अधिकारों के कारण उससे अधिक समय तक बाहर नहीं रह सकता।"❀

ब्रिटिश-प्रान्तों और देशी रियासतों में तीन प्रकार के भेद स्पष्ट रूप से दीख पड़ते हैं। (१) देशी राज्य स्वतंत्र प्रभुता का उपभोग करते हैं; परन्तु ब्रिटिश-भारत के प्रान्तों में प्रभुता का अल्पांश भी नहीं है। वे तो भारत सरकार के एजेंट हैं और भारत-सरकार जनता के प्रति नहीं, पार्लिमेंट के प्रति उत्तरदायी है। (२) ब्रिटिश प्रान्तों में प्रतिनिधि-संस्थाओं की स्थापना बहुत पहले से हो चुकी है। परन्तु देशी राज्यों में लोकतंत्रवादी प्रवृत्ति के प्रति भय का भाव मौजूद है।

संघ-शासन का विचित्र स्वरूप

पार्लिमेंटरी संयुक्त-कमेटी की रिपोर्ट में यह लिखा है कि "देशी राज्यों के नरेशों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि वे अब ब्रिटिश भारत के प्रान्तों के साथ निश्चित शर्तों के साथ संघ-शासन पर विचार करने के लिए इच्छुक हैं, वे स्वतंत्र राज्य होने के कारण संघ-शासन द्वारा हर दशा में उन समानाधिकारों के प्रयोग किये जाने से सहमत नहीं हैं जिन्हें वह उन प्रान्तों के बारे में प्रयोग

❀ Vide—Federal Structure (Indian constitution) 1937 By. K. T. Shah pp. 17.

करेगा जिनमें अभी स्वराज्य की स्थापना की जायगी।" ❀ इससे यह प्रकट होता है कि संघ-शासन अपने अन्तर्गत राज्यों—जिनमें प्रान्त और देशी राज्य सम्मिलित हैं—के साथ समान रूप से अपनी सत्ता और अधिकारों का प्रयोग न कर सकेगा। संघीय-व्यवस्थापिका में देशी राज्यों के जो सदस्य होंगे उनका चुनाव राज्यों की जनता द्वारा न होकर उनकी नामज़दगी नरेन्द्रों द्वारा होगी और ब्रिटिश भारत के प्रान्तों की ओर से संघीय व्यवस्थापिका में जो प्रतिनिधि होंगे, उनका अप्रत्यक्ष ढंग से चुनाव किया जायगा।

ब्रिटिश भारत के प्रान्तों का जहाँ तक सम्बन्ध है, उन्हें भारतीय संघ में सम्मिलित होने अथवा उससे अलग होने का कोई स्वतंत्र अधिकार नहीं है। एक बार संघ में सम्मिलित होने पर उसके उपरान्त किसी प्रान्त को यह स्वतंत्रता नहीं होगी कि वह भविष्य में उससे उस समय तक अलग हो जाय, तब तक कि पार्लिमेंट ऐसा निश्चय न कर दे।

भारतीय संघ की स्थापना के लिए कोई समय नियत नहीं किया गया है। उसकी स्थापना सम्राट् की घोषणा द्वारा होगी। परन्तु इस घोषणा में पूर्व दो शर्तों का पालन आवश्यक है:—

१—जिन देशी राज्यों ने संघ में सम्मिलित होना स्वीकार किया है, उनके राजाओं को राज्य-परिषद् (Council of State) के ५२ सदस्य नामज़द करने का अधिकार हो; इससे कम नहीं।

२—जो देशी राज्य संघ में सम्मिलित होना स्वीकार करते

❀ Vide—Joint Committee Report (1934) page 16.

हैं•उनकी कुल जन-संख्या समस्त राज्यों की जनसंख्या का कम से कम ½ आधा भाग हो। ꙮ

देशी राज्य भारतीय संघ में उसी समय सम्मिलित माने जाँयगे जब कि उनके राजा प्रवेश-पत्र† पर हस्ताक्षर कर शासन-विधान की धारा ६ (१) के अनुसार घोषणा कर देंगे और सम्राट उनके प्रवेश-पत्र को स्वीकार कर लेगा। प्रवेश-पत्र पर हस्ताक्षर करते समय प्रत्येक राजा को यह अधिकार होगा कि, वह अपनी सन्धि तथा दूसरे अधिकारों की रक्षा के लिए उपयुक्त शर्तें या संरक्षण जोड़ दे। प्रान्तों को यह अधिकार नहीं दिये गये हैं। इसके अतिरिक्त राजाओं के लिए एक बड़ी विचित्र सुविधा दी गयी है। वह यह कि जो देशी राज्य संघ में सम्मिलित होना चाहें, वे शासन-विधान की धारा ६ (१) के अनुसार संघ के उद्घाटन के लिए भी अवधि नियत कर सकेंगे। अर्थात् नियत अवधि तक संघ की स्थापना न हुई तो, वे संघ के सदस्य न रहेंगे। श्रीयुत एच. वी. लीस-स्मिथ ने भारतीय-संघीय-पद्धति के विषय में जो विचार प्रगट किये हैं, उनसे हमारे कथन की पुष्टि होती है :—"भारतीय संघीय प्रणाली ऐसी होगी जिसका आज तक किसी को भी ज्ञान न होगा—अर्थात् बिल्कुल अपरिचित; क्योंकि प्रान्तों के लिए एक प्रकार के संघीय अधिकार होंगे और प्रत्येक देशी राज्य के लिए दूसरे प्रकार के होंगे। संघ के एक भाग की सरकार पार्लिमेंटरी सिद्धान्तों पर आश्रित होगी और दूसरे भाग की सरकार प्राच्य स्वेच्छाचारी शासन पर।"

ꙮ देखिये भारत-सरकार-क़ानून १९३५ धारा ५ (२)

† Instrument of Accsesion.

"मुसलमानों की भाँति राजाओं ने भी यह शर्त रखी है कि संघीय व्यवस्थापिका में देशी राज्यों को उनकी जन-संख्या के अनुपात से भी अधिक प्रतिनिधित्व दिया जाय। देशी राज्यों की जन-संख्या समस्त भारत की जन-संख्या का २३% प्रतिशत है। परन्तु उनको ३३% प्रतिशत स्थान संघीय व्यवस्थापिका सभा में मिलेंगे और राज्य परिषद् में ४०% प्रतिशत।"❀

३—केन्द्रिय शासन में द्वैध-पद्धति

सन् १९३० ई० में जब लन्दन में गोलमेज परिषद् का प्रथम अधिवेशन हुआ तब देशी राज्यों के नरेशों ने भारतीय संघ में सम्मिलित होने के लिए अपनी इच्छा प्रकट की। उस समय देशी राज्यों के नरेशों ने अपनी नीति इन शब्दों में घोषित की थी :—"अतः नरेशों ने अपनी घोषणा में यह स्पष्ट रूप से कहा है कि अब वे अखिल भारतीय संघ में सम्मिलित होने के लिए अपनी अभिलाषा प्रकट करते हैं; किन्तु इस शर्त पर कि संघ शासन उत्तरदायी हो; अनुत्तरदायी नहीं।" सर तेजबहादुर सप्रू ने, जो ब्रिटिश-भारत की ओर से गोलमेज परिषद् के सदस्य थे, अपने आवेदन-पत्र में भी यह स्पष्ट रूप से कहा था कि केन्द्रिय शासन में पूर्ण उत्तरदायित्व की स्थापना की जाय। किन्तु संयुक्त पार्लिमेंटरी-कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में केन्द्रिय शासन में उत्तरदायित्व की जो रूप-रेखा खींची है, वह विशुद्ध पूर्ण उत्तरदायित्व नहीं है। उसकी यह सिफ़ारिश है कि केन्द्रिय-शासन में द्वैध-शासन-पद्धति की स्थापना की जाय। नवीन शासन-विधान में कुछ थोड़े परिवर्तन के साथ कमेटी की इस सिफ़ारिश को स्वीकार किया गया है। नवीन शासन-विधान ने

❀ Vide—Current History, October 1935.

प्रान्तों में जिस द्वैध-शासन-पद्धति को अनुत्तरदायित्वपूर्ण मान-कर नाश कर दिया है, उसी पद्धति की केन्द्र में स्थापना कर दी है। यह पद्धति ब्रिटिश भारत के प्रान्तों में विफल सिद्ध हो चुकी है; फिर यह कैसे संभव हो सकता है कि यह केन्द्र में सफल हो सकेगी।

संघीय कार्य-कारिणी

संघ की कार्य-कारिणी-सत्ता और शासनाधिकार ब्रिटिश राजा के प्रतिनिधि गवर्नर-जनरल के अधीन होंगे। यह समस्त अधिकार उसे शासन-विधान द्वारा प्राप्त हैं। किन्तु इनके अतिरिक्त वह उन 'क्राउन'† के विशेषाधिकारों का भी प्रयोग कर सकेगा जिन्हें ब्रिटिश राजा प्रदान करेगा। गवर्नर-जनरल एक मंत्रि-मंडल की नियुक्ति करेगा जिसका कार्य होगा गवर्नर-जनरल को उसके कार्यों के संबंध में परामर्श देना। परन्तु निम्न लिखित मामलों में गवर्नर-जनरल को मंत्रि-मंडल से परामर्श लेने की आवश्यकता नहीं है। (१) सेना (२) वैदेशिक-विभाग (३) ईसाई-मत-संबंधी-विभाग (४) बिलोचिस्तान का राज्य-प्रबंध (५) गवर्नर-जनरल के विशेषाधिकारों के उत्तरदायित्वों के अन्तर्गत कार्य।

इस प्रकार केन्द्रिय-शासन में द्वैध-शासन-प्रणाली द्वारा जिस अनुत्तरदायी शासन की स्थापना का बीजारोप किया गया है, वैसा आज पर्यन्त किसी भी लोकतंत्र-वादी सभ्य राष्ट्र में नहीं किया गया। गवर्नर-जनरल को इतने अधिक विशेषाधिकार प्रदान किये गये हैं कि जिससे वह स्वेच्छाचारी ढंग से शासन करने में पूर्णतः स्वतंत्र रहेगा। भारतीय व्यवस्थापिका परिषद्

† Crown.

में संयुक्त-पार्लिमैंटरी-कमेटी की रिपोर्ट पर तीन दिन तक बहस हुयी। इसमें शासन-विधान को सर्वथा असंतोषप्रद और प्रतिक्रियात्मक एवं अग्राह्य घोषित किया गया था। इसी अवसर पर भारतीय असेम्बली में स्वतंत्र-दल के मुसलिम नेता श्री० मुहम्मदअली जिन्ना ने कहा "कि संघीय-शासन की योजना पूर्ण रूप से दोषपूर्ण और सर्वथा अस्वीकार्य है।......... देशी नरेशों द्वारा लगायी गयी शर्तों और संरक्षणों की लौह दीवाल के बीच में मैं अपने को कहीं नहीं पाता.....जिस शासन-विधान को आप भारत के लिये रच रहे हैं, वह वर्त्तमान शासन-विधान से भी अधिक खराब है। इस शासन-विधान का मतलब है उस ध्येय या उद्देश और उस प्रतिनिधि-सत्तात्मक-शासन-प्रणाली का सर्वनाश जिसके विकास के लिए भारत ने विगत अर्द्धशताब्दी में प्रयत्न किया है। मैं देशी राज्यों के नरेशों से यह पूछता हूँ कि क्या यह उत्तरदायित्व है जिसकी रूप-रेखा शासन-विधान में मिलती है और जिसके आधार पर वे संघ में सम्मिलित होने के लिये तत्पर हैं। शासन-विधान में ९८ प्रतिशत संरक्षण हैं और सिर्फ २ प्रतिशत उत्तरदायित्व...... संघ-शासन की यह भावना एक ऐसी योजना है जो केन्द्र में उत्तरदायित्व की स्थापना होने में रुकावट डालेगी।"

प्रभुता और भारतीय संघ

अखिल भारतीय संघ की योजना भारत में अनुत्तरदायी शासन की स्थापना करती है। तब यह स्वाभाविक है कि भारतीय संघ भारत की जनता के प्रति उत्तरदायी नहीं हो सकेगा। ब्रिटिश-राजा में भारतीय संघ की प्रभुता निहित है। शासन-विधान की धारा २ के अनुसार, भारतीय-शासन सम्बन्धी व समस्त अधिकार, सत्ता और विशेषाधिकार जिनका प्रयोग अबतक ब्रिटिश

राजा और भारत-सम्राट करता रहा है वे अब भी उसीके अधीन रहेंगे। यह शासन विधान का सबसे महान् दोष है कि प्रभुता भारतवासियों में सन्निविष्ट नहीं है। जो पार्लिमेंट आज तक यह घोषित करती रही थी कि ब्रिटिश पार्लिमेंट भारत की 'ट्रस्टी' है, वही अपने शासन विधान द्वारा भारत-सम्राट को भारतीय संघ की प्रभुता प्रदान कर रही है। कैसी विचित्र बात है! प्रत्येक स्वतंत्र देश को यह अधिकार प्राप्त है कि वह स्वयं अपनी शासन-प्रणाली का निश्चय करे और आवश्यकतानुसार परिवर्तन भी। नवीन शासन विधान ने भारत-वासियों को यह अधिकार प्रदान न करके उत्तरदायी शासनके सिद्धान्त पर कुठाराघात किया है। श्रीयुत के० टी० शाह ने अपनी 'संघ-शासन' पुस्तक में एक स्थान पर लिखा है कि:—"जो कुछ भी हो आस्ट्रेलिया और कनाड़ा के संघीय शासन विधान, वास्तव में, उनके नागरिकों द्वारा बनाये गये हैं। यद्यपि उनका स्वरूप कनाड़ा और आस्ट्रेलिया की प्रजा की इच्छानुसार ब्रिटिश पार्लिमेंट ने क़ानून द्वारा निर्धारित किया है। यदि पार्लिमेंट भारत-वासियों को यह अधिकार देने से वंचित रखने का सतत प्रयास करती रही, तो उससे न केवल भारत-वासियों के प्रति पूर्ण अविश्वास ही प्रकट होगा, प्रत्युत, वह स्वयं, भारतीय जनता की स्वयभू 'ट्रस्टी' से बदल कर भारत में ब्रिटिश हितों की ट्रस्टी और संरक्षिका बन जायगी।"

भारत के बाहर भारतीय संघ की प्रभुता का एक दूसरा पहलू भी है। भारतीय संघ में देशी रियासतें और ब्रिटिश भारत के प्रान्त सम्मिलित होंगे। इनमें से पहले राज्यों की प्रभुता तो उनके देशी नरेशों में निहित है और प्रान्तों की प्रभुता पार्लिमेंट में है। अतः संघ की स्थापना पर संघ की प्रभुता भारत-सम्राट में सन्निविष्ट हो जाने से देशी रियासतों की स्थिति बड़ी विचित्र हो जायगी।

अब तक पार्लिमैंट ब्रिटिश भारत की प्रभु (Sovereign) थी, परन्तु अब वह भारतीय भारत की भी प्रभुता प्राप्त कर लेगी।

४—ब्रिटिश पार्लिमैंट का नियंत्रण

मोन्टेग्यू-चेम्सफोर्ड के शासन-सुधारों का मौलिक सिद्धान्त यह था कि भारत में उत्तरदायी शासन की स्थापना ब्रिटिश-सरकार का लक्ष्य है। परन्तु उत्तरदायी शासन की स्थापना क्रमानुसार की जायगी। इस सिद्धान्त का दूसरे शब्दों में अर्थ यह है कि जैसे-जैसे भारत में उत्तरदायी शासन का विकास होता जायगा वैसे-वैसे उस पर पार्लिमैंट का अनुशासन कम होता जायगा। सन् १९१८ के शासन सुधारों का मौलिक सिद्धान्त यह था कि ब्रिटिश गवर्नमेंट को भारत के मामलों में और विशेष रूप से उन मामलों में जिनके बारे में भारत-सरकार और ग़ैर-सरकारी भारतीय लोकमत सहमत हों किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

नवीन शासन-विधान में उत्तरदायी शासन के सिद्धान्त को स्वीकार किया गया है; परन्तु साथ ही साथ विधान में कुछ ऐसी धारायें भी जोड़ दी गई हैं जो उत्तरदायी शासन के सिद्धान्तों की विरोधिनी हैं। गवर्नर-जनरल व गवर्नरों के लिए जो 'शासनादेश' (Instruments of Instructions) निर्धारित किये गये हैं; उन्हें पार्लिमैंट द्वारा स्वीकृत होने पर ही प्रयोग में लाया जा सकेगा।

सर सैमुअल होर ने हाउस ऑफ़ कामन्स के अधिवेशन में 'शासनादेशों' के विषय में यह कहा था कि हम शासनादेशों को पार्लिमैंट में स्वीकृत कराने की प्रणाली के लिए अपने इति-

हास में पहली बार यह परीक्षण कर रहे हैं। इससे पूर्व शासनादेश पार्लिमैंट की स्वीकृत के लिए कभी पेश नहीं किये जाते थे। इस संबंध में भूतपूर्व भारत-मंत्री रायट आनरेबुल वेजवुड वेन ने अपने एक लेख में बड़ी उत्तमता से प्रकाश डाला है। श्री बेजवुड वेन महोदय लिखते हैं:—"योजना की एक विचित्र विशेषता है गवर्नर-जनरल के शासनादेशों की रचना की प्रणाली में परिवर्तन। अब तक यह कार्य ब्रिटिश मंत्रि-मंडल की कार्यकारिणी के कार्यों के अन्तर्गत एक कार्य माना जाता रहा है। अब इतिहास में पहली बार इसे पार्लिमैंटरी क़ानून का रूप दिया गया है। लॉर्ड-सभा और कॉमन सभा दोनों में स्वीकृति के लिए 'शासनादेश' का मशविदा प्रस्तुत किया जायगा। ब्रिटिश दृष्टिकोण से यह एक वैधानिक सुधार है; क्योंकि लार्डस् को शासन प्रबंध पर नियंत्रण करने की कभी आज्ञा नहीं थी। भारतीय दृष्टिकोण से इसका प्रभाव यह होगा कि भावी सरकार उस स्वाधीनता से वंचित हो जायगी जिसका उसने अब तक उपभोग किया है।"❀ इस प्रकार पार्लिमैंट को पूर्व की अपेक्षा अधिक सत्ता प्रदान की गयी है। भारतीय शासन पर उसके नियंत्रण को कम करने की जगह और अधिक बढ़ाने का उपाय किया गया है। नवीन शासन-विधान ने पार्लिमैंट को पहले से अधिक अधिकार दे दिये हैं, इसका उदाहरण है—'कौंसिल के आर्डर' (Order-in-Council)। कौंसिल-आर्डर के ड्राफ्ट पार्लिमैंट के दोनों चेम्बरों में स्वीकृति के लिये पेश करने पड़ेंगे। इस प्रकार पार्लिमैंट भारतीय शासन

❀ देखिये श्री वेजवुडवेन का "भारतीय शासन सुधारों पर विचार कोण" लेख पोलिटिकल क्वार्टरली, में जुलाई-सितम्बर १६३४ ई०।

प्रबन्ध के बहुतेरे मामलों में हस्तक्षेप कर सकेगी। लार्ड ह्यूवर्ट, लार्ड चीफ जस्टिस इङ्गलैंड, ने अपनी एक नवीन पुस्तक 'न्यू डिस्पोटिज्म' (The new Despotism) नामक पुस्तक में ऑर्डर-इन-कौंसिल के मशविदे को पार्लिमैंट की स्वीकृति के लिये प्रस्तुत करने की प्रणाली के दोषों पर पड़ी दूरदर्शिता और योग्यता के साथ प्रकाश डाला है। लार्ड ह्यूवर्ट लिखते हैं:—

"इस सम्बन्ध में यह याद रखना चाहिये कि कौंसिल आर्डर, पार्लिमैंट के हस्तक्षेप के बिना, मंत्रियों के परामर्श से साधारणतया ब्रिटिश सरकार द्वारा बनाये जाते हैं। अलबत्ता कुछ मामलों में प्रस्तावित आर्डर के ड्राफ्ट पार्लिमैंट के दोनों चेम्बरों के समक्ष स्वीकृति के लिए पेश किये जाते हैं और अन्त में उन पर ब्रिटिश राजा की स्वीकृत ली जाती है। ब्रिटेन के सम्बन्ध में ऐसे मामलों में जिस प्रणाली का व्यवहार किया जाता है उसमें और भारत के मामले में जो प्रणाली कार्य में लायी जायगी, उसमें बहुत बड़ा अन्तर है। पहले मामले में तो जिन दलों पर किसी संशोधन या परिवर्तन का प्रभाव पड़ता है, वे सदैव अपने विचार और भाव पालिमैंट के दोनों चेम्बरों के समक्ष रखने में समर्थ होते हैं; भारत के मामले में जिस जनता का उनसे संबंध है और जो हज़ारों मील की दूरी पर रहते हैं, वह पार्लिमैंट के समक्ष अपने विचार प्रस्तुत करने का कोई भी सुयोग नहीं प्राप्त करती। "ब्रिटेन में ऐसे अनेकों मामलों में ऐसे कानूनी आर्डर की उपयुक्तता को चुनौती दी जा सकती है और यदि ऐसा कोई भी कानूनी आर्डर नियम विरुद्ध ठहराया गया तो वह अवैध घोषित कर दिया जाता है।"

५—भारत के वैधानिक विकास का अन्तिम लक्ष्य

नवीन भारतीय शासन-विधान (Government of India Act 1935) में कोई प्रस्तावना (Preamble) नहीं है। इससे यह नहीं जाना जा सकता कि शासन-विधान का यथार्थ उद्देश क्या है। परन्तु शासन-विधान (१९१९) को रद्द करने के लिए नवीन-विधान में धारा ४७८ जोड़ी गयी हैं उसकी एक उपधारा से यह स्पष्ट है कि सन् १९१९ का भारतीय शासन-विधान रद्द हो जाने पर भी उसका प्रस्तावना भाग जारी रहेगा। ⁙

संयुक्त-पार्लमेंटरी-कमेटी रिपोर्ट में यह लिखा है कि भारतीय-शासन विधान (१९१९) की प्रस्तावना में पार्लमेंट ने अन्तिम और निश्चय रूप से भारत में अंगरेजी राज्य के अन्तिम लक्ष्य को निर्धारित कर दिया है। इसके बाद के नीति-संबंधी वक्तव्यों ने इस घोषणा में कुछ अधिक नहीं बढ़ाया है और हम यह उचित समझते हैं कि उसे यहाँ पूरा उद्धृत कर दें ·····"❀ इसके बाद रिपोर्ट में प्रस्तावना को उद्धृत किया गया है। सन् १९१९ के शासन-विधान की प्रस्तावना निम्न प्रकार है:—"पार्लिमैंट की घोषित पोलिसी (नीति) यह है कि भारतीय शासन-प्रबंध के प्रत्येक भाग में भारत-वासियों की वर्द्धमान सहकारिता और ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत ब्रिटिश भारत में क्रमशः उत्तरदायी शासन की स्थापना के उद्देश से स्थानीय स्वराज्य संस्थाओं के विकास के लिए व्यवस्था की जाय। इस नीति को कार्यान्वित करने के लिए धीरे-धीरे प्रगति करनी चाहिए और यह उचित

⁙ धारा ४७८ नवीन शासन-विधान।

❀ पार्लमेंटरी कमेटी रिपोर्ट (१९३४) पृ० ६।

होगा कि अब इस संबंध में ठोस कार्य किया जाय। उन्नति के लिए समय और पद्धति का निर्णय केवल पार्लिमैंट द्वारा होगा जिस पर भारतीय जनता के हित-चिन्तन का उत्तरदायित्व है। भारत के प्रान्तों में स्वायत्त-संस्थाओं के विकास के साथ-साथ यह उचित होगा कि प्रान्तीय मामलों को भारत-सरकार द्वारा अधिकाधिक स्वाधीनता दे दी जाय जिससे कि प्रान्तीय-शासन अपने उत्तरदायित्वों का भली भाँति पालन कर सकें।"

महान ब्रिटिश राजनीति-विशारद और राजनीतिज्ञ प्रोफेसर ए० बी० कीथ ने नवीन शासन-विधान (१६३५) के विषय में कहा है:—इस प्रश्न पर बड़ा कटु वाद-विवाद हुआ।.... कि बिलमें भारतीय शासन के लक्ष्य--औपनिवेशिक स्वराज्य का स्पष्ट विधान होना चाहिए। सरकार ने एक अजीब रुख इख्तियार किया। उसने निश्चय पूर्वक सन् १६१६ के शासन-विधान में घोषित प्रतिज्ञा को स्वीकार कर लिया .... और साथ ही साथ उस व्याख्या को भी स्वीकार कर लिया जो तत्कालीन सरकार की आज्ञा से भारत के गवर्नर-जनरल ने सन् १६२६ में की थी। 'भारत की उन्नति का स्वाभाविक परिणाम है औपनिवेशिक स्वराज्य की प्राप्ति।" परन्तु सरकार ने नवीन विधान की प्रस्तावना में इस प्रकार का कोई उल्लेख करना स्वीकार नहीं किया और इसके बजाय सन् १६१६ के विधान की प्रस्तावना को नवीन विधान में जारी रखने पर जोर दिया।"†

† A Constitutional History of India By A. B. Keith page 316.

औपनिवेशिक स्वराज्य

अगस्त सन् १९१७ ई० में पार्लिमेंट में भारत-मंत्री ने भारतीय शासन के अन्तिम लक्ष्य को जिन शब्दों में प्रकट किया था उससे और उसके बाद ब्रिटिश राजनीतिज्ञों एवं वायसरायों ने जो वक्तव्य निकाले उनसे भारत-वासियों को यह पूरा विश्वास हो गया था कि ब्रिटिश सरकार भारत को शीघ्र ही औपनिवेशिक स्वराज्य प्रदान करेगी। परंतु नवीन शासन-विधान की रचना करते समय पार्लिमेंट और पार्लिमेंटरी संयुक्त-कमेटी ने भारत की वैधानिक दशा पर शासन-विधान में कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं किया और अपनी प्रतिज्ञाओं❀ को ऐसे ढंग से तोड़ दिया कि जिससे भारत हितैषी ब्रिटिश

❀ ड्यूक आफ कर्नाट ने ९ फर्वरी १९२१ ई० को भारतीय व्यवस्थापिका परिषद् का उद्घाटन करते समय भारत-सम्राट की ओर से जो सन्देश सुनाया उसमें कहाः—

"वर्षों से, युगों से, देश-भक्त और राज-भक्त भारतवासी अपनी मातृभूमि के लिए स्वराज्य के स्वप्न देखते आये हैं। आज मेरे साम्राज्य में आप स्वराज्य का सूर्योदय देख रहे हैं और उस स्वाधीनता के विकास के लिए सुयोग और विशाल क्षेत्र जिसका मेरे दूसरे उपनिवेश उपभोग करते हैं।"

सन् १९२१ ई० में जब मि० चर्चिल ने, जो उस समय औपनिवेशिक विभाग के मंत्री थे, साम्राज्य-परिषद् में अपने एक भाषण में भारत-वासियों की महायुद्ध में अपूर्व वीरता की सराहना करते हुए कहाः—

"हम भारत के चिर-ऋणी हैं और हम विश्वास के साथ उस

राजनीतिज्ञों और भारतीय लोकमत में गहरा असन्तोष और क्षोभ पैदा हो गया है।

उज्वल भविष्य को देखते हैं, जब भारतीय शासन और भारतवासी पूर्णतः औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त कर लेंगे।"

१५ मार्च सन् १९२१ ई० को भारत-सम्राट् ने गवर्नर-जनरल के शासनादेश (Instrument of Instructions) में जिन शब्दों का प्रयोग किया है वे बहुत ही महत्वपूर्ण हैं:—

"......हमारी यह इच्छा और कामना है कि ब्रिटिश भारत में उत्तरदायी शासन की प्रगतिशील स्थापना के लिए जो योजना तैयार की गयी है वह सफलीभूत हो जिससे ब्रिटिश-भारत हमारे उपनिवेशों में अपना समुचित पद प्राप्त कर सके।"

तत्कालीन प्रधान मंत्री (British Premier) ने २ जुलाई सन् १९२८ ई० को कहा:—

"मुझे आशा है कि कुछ महीनों में अथवा वर्षों में हमारे साम्राज्य के उपनिवेशों में एक नवीन उपनिवेश और मिल जायगा—उपनिवेश डोमीनियन जो दूसरी जाति का होगा और जो ब्रिटिश-कामन-वैल्थ में आत्म-सम्मान के साथ समानता का पद प्राप्त करेगा। मेरा अभिप्राय भारत से है।"

तत्कालीन भारत के वायसराय लार्ड इरविन ने ३१ अक्टूबर सन् १९३१ ई० को ब्रिटिश मंत्रि-मंडल की आज्ञा से एक वक्तव्य प्रकाशित किया था। इसमें यह कहा गया था:—

"हिज मेजेस्टी की सरकार की ओर से मुझे अधिकार मिला है कि मैं यह स्पष्ट रूप से घोषित कर दूँ कि उसकी राय में सन् १९१७ की घोषणा में यह निहित है कि भारत की वैधानिक उन्नति का स्वाभाविक परिणाम है औपनिवेशिक स्वराज्य की प्राप्ति।"

ब्रिटिश-भारत 'डेलीगेशन' का प्रस्ताव

ब्रिटिश भारत प्रतिनिधि-मंडल (Delegation) ने अपने संयुक्त-आवेदन-पत्र में, जो पार्लिमेंटरी-कमेटी को दिया था, यह स्पष्ट रूप से बतलाया कि "भारतीय लोकमत को उन प्रयत्नों से गहरा धक्का लगा है जो इन दो-तीन सालों में इन प्रतिज्ञाओं को बदलने के लिए किये गये हैं। यह स्पष्ट रूप से कहा जाता है कि पार्लिमेंट के क़ानून में जो विधान किया जाता है, वही भावी पार्लिमेंट पर लागू हो सकता है और उसी से वह प्रतिज्ञाबद्ध है। यहाँ तक कि भारत-सम्राट् द्वारा की गयीं घोषणायें भी कोई क़ानूनी प्रभाव नहीं रखतीं। हम यह अनुभव करते हैं कि नवीन शासन-विधान की प्रस्तावना में घोषणा आवश्यक है।" प्रतिनिधि मंडल ने यह कहा कि प्रस्तावना में यह भी स्पष्ट रूप से लिखा जाय कि "भारत की वैधानिक उन्नति का स्वाभाविक परिणाम औपनिवेशिक स्वराज्य—डोमीनियन स्टेटस—है। परंतु यह महान् आश्चर्य की बात है कि, नवीन शासन-विधान में कोई भी प्रस्तावना नहीं दी गयी है और इस प्रकार ब्रिटिश पार्लिमेंट ने भारतीय लोकमत को ठुकरा कर अपनी स्वेच्छाचारिता का परिचय दिया है।❀

❀ प्रसिद्ध भारतीय राजनीतिज्ञ सर हरिसिंह गौड़ ने लिखा है:—

"The absence of a preamble reiterating the grant of Dominion Status as the objective of the British policy in India is regarded as a serious blot on the Government of India Bill now before Parliament." (In a letter to The Statesman 14-2-35).

"To argue at this distance of time that Parliament is bound by Preamble of the Government of

सन् १९१९ के शासन-विधान की प्रस्तावना का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। यह प्रस्तावना, पुराने शासन-विधान के रद्द हो जाने पर भी, नवीन शासन-विधान द्वारा स्वीकृत कर ली गई है। अब हमें यहाँ यह विचार करना है कि वर्त्तमान परिस्थिति में उपरोक्त प्रस्तावना कहाँ तक उचित और वांछनीय है।

सन् १९१९ के शासन-विधान की प्रस्तावना

सन् १९१९ के शासन-विधान की प्रस्तावना में उत्तरदायी शासन का जो ध्येय निर्धारित किया था, वह केवल ब्रिटिश भारत के लिए ही था। उस समय अखिल भारतीय संघ-शासन का प्रश्न ही मौजूद न था। परन्तु अब तो स्थिति में विशाल परिवर्तन हो गया है।

ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों के सम्मिलित हो जाने से स्थिति बदल गयी है। प्रस्तावना में दूसरा महत्वपूर्ण पद है साम्राज्य का एक भाग (Integral part of the Empire)।

India Act only, and that it makes no reference to Dominion Status, that the declarations made by Viceroys and Prime Ministers of His Majesty's Government are not binding on Parliament.... ..., will be to give a rude shock to the faith of those Indians who have honestly believed in the realisation of India's destiny as a Self-Governing dominion within the British Common-Wealth of Nations, not in a remote and uncertain future but in the near future."
—Sir T. B. Sapru's Memorandum.

इस शब्द-समूह से तात्पर्य है ब्रिटेन, उसके उपनिवेशों और भारत का समूह; परंतु आयरिश स्वतंत्र राज्य की स्थापना और वैस्ट मिनिस्टर क़ानून के पास हो जाने से, यह समुचित न होगा कि इन स्वाधीन उपनिवेशों के 'कामनवैल्थ' को 'साम्राज्य' के नाम से सम्बोधन किया जाय यदि 'साम्राज्य' † का तात्पर्य 'भारत' से है, तो भी इस शब्द की शासन-विधान में कहीं भी परिभाषा नहीं की गयी है। सत्य तो यह है कि भारत में संघ-शासन की स्थापना के बाद भारत का साम्राज्य हो ही नहीं सकता। यदि १६१६ के शासन-विधान की प्रस्तावना में उल्लिखित 'उत्तरदायी शासन' को ही भारत का ध्येय मान लिया जाय, तो

† "Thore is one empire which remains to be mentioned—an Empire which unlike the other empires of which we have spoken, is entirely independent of the tradition and memory of Rome. This is the British Empire, or, as it is coming more and more to be called the British Common-Wealth. It is an Empire so much sui generis—a Federation of National States at once so independent and so interconnected, that it is altogether a matter for separate consideration. This much however may be said of its nature, The British Empire is, in a sense, an aspiration rather than a reality, a thought rather than a fact; a common culture, not a common government.. ...." Prof. Earnest Barker.

भी भारत औपनिवेशिक स्वराज्य (Dominion Status) का अधिकारी है।

उत्तरदायी शासन और औपनिवेशिक स्वराज्य।

सन् १६२४ ई० में भारत-सरकार के भूतपूर्व गृह-सदस्य (Home Member) सर मालकम हेली ने २० अगस्त १६१७ की भारत-मंत्री की घोषणा की ऐसी विचित्र व्याख्या करने का प्रयत्न किया था जिससे भारत औपनिवेशिक पद का अधिकारी न रहे। सर मालकम हेली ने उत्तरदायी शासन और औपनिवेशिक स्वराज्य में अंतर की रेखा खींचते हुए कहा:—"……… वास्तव में कुछ अंतर तो अवश्य है ही; कारण कि उत्तरदायी शासन के साथ मर्य्यादित व्यवस्थापिका सभा संभव है। यह संभव हो सकता है कि औपनिवेशिक स्वराज्य उत्तरदायी शासन का युक्ति-संगत फल है; नहीं, नहीं वह उत्तरदायी शासन का अनिवार्य और ऐतिहासिक विकास है। परन्तु यह एक अंतिम लक्ष्य है।" इन दोनों में अंतर मानने वाले यह तर्क देते हैं कि उत्तरदायी शासन का मतलब तो यह है कि व्यवस्थापिका-सभा के प्रति उत्तरदायी मंत्री आन्तरिक मामलों का नियंत्रण करें। वाह्य-मामलों का नियंत्रण तो बहुत पीछे का विकास है; जिन्होंने सन् १६१७ की नीति की घोषणा की उनका यह मंतव्य कदापि नहीं था कि ऐसे विषयों पर भी उनका नियंत्रण होगा। यह दलील बिलकुल सार-हीन और युक्ति-हीन हैं। प्रोफ़ेसर ए० बी० कीथ ने यह स्पष्ट रूप से कहा है कि:—"यह भुला दिया जाता है कि सन् १६१७ तक किसी भी समय उत्तरदायी शासन और औपनिवेशिक स्वराज्य में भेद करने का प्रयत्न नहीं किया गया। 'औपनिवेशिक स्वराज्य' उस समय प्रचलित पद नहीं था और उस समय जिस शासन-प्रणाली

के लिये प्रतिज्ञा की गयी थी, वह एक ऐसी निश्चित प्रणाली थी जो साम्राज्य में उस समय मौजूद थी.....।"❀

औपनिवेशिक स्वराज्य का अर्थ यह है कि भारत में वैसी ही शासन-प्रणाली की स्थापना की जाय जैसी कि आयरिश फ्री स्टेट, कनाड़ा, आस्ट्रेलिया आदि ब्रिटिश 'उपनिवेशों' में मौजूद हैं। प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ बोनरलॉ ने औपनिवेशिक स्वराज्य की परिभाषा निम्न प्रकार की है:—"औपनिवेशिक स्वराज्य का मूल-तत्व क्या है? मूल-तत्व यह है कि उपनिवेश स्वयं स्वभाग्य-निर्णायक हैं; निज सेना पर उनका नियंत्रण है। साम्राज्य की रक्षा के लिए वे कितनी सहायता करें—इसका निश्चय करना उनके हाथों में है। यह सब खास बातें हैं। पार्लिमेंट में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं होगा जो यह स्वीकार न करे कि साम्राज्य का उपनिवेशों से सम्पर्क उनके ऊपर ही निर्भर है। यदि कनाड़ा और आस्ट्रेलिया कल यह कहना चाहें कि—हम ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन रहना नहीं चाहते, तो हम उनको बलपूर्वक साम्राज्य में रखने की चेष्टा नहीं करेंगे। संक्षेप में औपनिवेशिक स्वराज्य का अर्थ है स्वभाग्य-निर्णय (Right of Self-determination) का पूर्ण अधिकार।"

"साम्राज्य-परिषद् की सन् १६२६ ई० की अन्तर्साम्राज्य-प्रबंध समिति (Inter-Imperial Relations Committee) ने उपनिवेशों की स्थिति के संबंध में निम्न प्रकार निर्णय दिया है:—'उपनिवेश (Dominions) साम्राज्य के अन्तर्गत स्वाधीन

❀ India Analysed: F. M. Houlston and P. B. L. Bedi. Vide Chapter India in the Empire By A. B. Keith, page 92.

राज्य हैं; उनका पद समान है। आन्तरिक तथा बाह्य राज्य-प्रबंध में वे एक दूसरे पर आश्रित नहीं हैं। यद्यपि ब्रिटिश सम्राट् के प्रति सामान्य राजभक्ति के कारण वे एकता के सूत्र में बंधे हुए हैं तथापि वे स्वतंत्र रूप से ब्रिटिश कॉमन वैल्थ के सदस्य हैं। औपनिवेशिक शासन के बाह्य (External) और आन्तरिक प्रबंध पर उनका नियंत्रण है। उनकी निजी सेना है। वे जब चाहें तब साम्राज्य से संबंध तोड़ सकते हैं। ऐसा करने की उन्हें स्वतंत्रता है।"

औपनिवेशिक स्वराज्य की उपरोक्त परिभाषा इतनी स्पष्ट है कि उसकी व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं है। भारत, वास्तव में, स्वभाग्य-निर्णय का अधिकार प्राप्त करना चाहता है। वह बाह्य (External) और आन्तरिक (Internal) दोनों प्रकार के राज्य-प्रबंध पर पूरा नियंत्रण चाहता है।

प्रथम् गोलमेज परिषद् में संघ-शासन की भावना का विकास हुआ। राजाओं ने इस पद्धति के प्रति विशेष रूप से अपना ध्यान आकर्षित किया। इसका परिणाम यह निकला कि संघ-शासन की समस्या के सामने औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग खटाई में पड़ गयी। पूना में अखिल भारतवर्षीय लिबरल फेडरेशन के अधिवेशन के अवसर पर दिसम्बर सन् १९३४ ई० में माननीय वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री ने संयुक्त पार्लिमेंटरी कमेटी की रिपोर्ट पर भाषण देते हुये कहाः—

"मैंने कलकत्ता में अपने भाषण में अपने उन नरेश सहयोगियों से जिन्होंने प्रथम गोलमेज परिषद् में भाग लिया था, यह कहने का साहस किया था कि हम उनके अत्यन्त ऋणी हैं। मैं उनके ऋणों को न तो भुलाना चाहता हूँ और न उनका मूल्य

कम करना चाहता हूँ। मैं उस दृश्य को याद करता हूँ जब हमने गोलमेज परिषद् में उनके आगमन का स्वागत किया था और उनके संघ-शासन-सम्बन्धी प्रस्ताव का समर्थन। परन्तु उनको हमारे देश की सहायता के लिये आना चाहिये था—उसके लिये बाधा के रूप में नहीं।.....मैंने गोलमेज परिषद् में जो भाषण दिये थे उनमें से एक भाषण में ....मैंने यह बतलाया था कि नवीन संघ का भाव औपनिवेशिक स्वराज्य के भाव के साथ समान धरातल पर है। यह दोनों ही भाव समान रूप से शक्तिशाली थे। हममें से कुछेक औपनिवेशिक स्वराज्य पर अधिक जोर देते थे और दूसरे लोग संघ पर। मैंने उनसे निवेदन किया कि वे हृदय से, भारत के भविष्य के नाम पर मिलकर दोनों भावों की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करें। एक को दूसरे भाव के नाश का साधन न बनावें। मुझे उस समय कुछ ऐसा ही लगा कि ऐसा ही होगा और ऐसा ही हुआ। देशी राज्यों के राजा, जिन्होंने समय-समय पर भारत में औपनिवेशिक स्वराज्य के लिये अपना उत्साह दिखलाया, अब ऐसा प्रतीत होता है, संघ से अधिक प्रेम करने लगे हैं।"❀

भारतीय लोकमत इस ब्रिटिश-नीति के विरुद्ध है। उदार-दल के सबसे प्रमुख नेता ने ऊपर के अवतरण में जो भाव व्यक्त किये हैं, उनसे गहरे असन्तोष की अभिव्यक्ति होती है। राष्ट्रीय-महासभा (Indian Congress) और मुसलिम लीग ने भी इसका प्रबल विरोध किया है। सन् १९३० से कांग्रेस का ध्येय ही बदल गया है। उसका अन्तिम लक्ष्य है भारत में पूर्ण स्वराज्य

❀ Vide—Mr. V. S. Shrinivas Sastri's Speech. Hindustan times Delhi 15-1-35.

की स्थापना। मुसलिम लीग ने अपने विगत लखनऊ अधिवेशन (१६३७) में अपने लक्ष्य में परिवर्तन करके यह प्रमाणित किया है कि वह भी देश में स्वाधीनता को अपना चरम ध्येय मानती है। देश का वाह्य और आन्तरिक शासन-प्रबंध पूर्ण-रूप से भारत-वासियों के हाथों में हो—यह भारतीय आकांक्षा है। चाहे उसे आप 'उत्तरदायी शासन' कहें या 'औपनिवेशिक स्वराज्य', अथवा महात्मा गान्धी के शब्दों में पूर्ण स्वाधीनता का सार।

६—नागरिकता के मौलिक अधिकार

शासन-विधान में नागरिकता के मौलिक अधिकारों की घोषणा का स्थान सबसे प्रमुख है। जिन देशों में नवीन ढंग पर शासन-विधानों की रचना हुई है, उनके विधानों में नागरिक अधिकारों पर एक विशेष अध्याय जोड़ा गया है। नागरिकों की स्वाधीनता की रक्षा के लिए शासन-विधान में मौलिक अधिकारों का उल्लेख अतीव आवश्यक है। देश के शासन (Executive) अथवा व्यवस्थापिका (Legislature) के अन्याय या अत्याचार से नागरिकों की रक्षा करने के लिए उनके हाथों में आत्म-रक्षा के लिए इनके सिवा और अस्त्र ही क्या है।

ऐतिहासिक दृष्टि से नागरिक अधिकारों की माँग सबसे पूर्व प्रजातंत्र-वादी इङ्गलैंड में वहाँ की जनता ने पेश की। सबसे पूर्व सन् १२२५ ई० में प्रसिद्ध 'मेगनाकार्टा' (Magna Carta) द्वारा नागरिकों ने अपने अधिकारों की घोषणा की। यह राजा द्वारा स्वीकार कर ली गयी। सन् १६२८ का अधिकारों का आवेदन पत्र (Petition of Rights) और सन् १६८६ का अधिकारों का बिल (Bill of Rights) नागरिकों के अधिकारों की घोषणाएँ हैं। सन् १७८७ में संयुक्त राज्य अमेरिका ने भी

अपने शासन-विधान में 'अमेरिका के अधिकारों' की घोषणा को स्थान दिया। तब से विश्व के समस्त प्रजातंत्र-वादी शासन-विधानों में नागरिकता के मौलिक अधिकारों को महत्व पूर्ण स्थान दिया जाने लगा है।

परंतु इङ्गलैंड में सबसे पूर्व नागरिकता ने मौलिक अधिकारों की माँग का जन्म होने पर भी उसके शासन-विधान में इनको आज पर्यन्त स्थान नहीं मिल सका। इसका कारण यह कि इङ्गलैंड का शासन-विधान लिखित (Written and rigid Constitution) नहीं है। न्यायालय के निर्णयों द्वारा उसमें परिवर्तन होते रहते हैं। ब्रिटिश उपनिवेशों में भी शासन-विधानों में मौलिक अधिकारों का उल्लेख नहीं है। हाँ, आयरलैंड ने जबसे आइरिश स्वतंत्र-राज्य की स्थापना की है तब से वहाँ के शासन-विधान में मौलिक अधिकारों को स्थान मिलने लगा है।

नवीन शासन-विधान (Government of India Act 1935.) में नागरिकता के मौलिक अधिकारों (Fundamental Rights of Citizen-ship) का सर्वथा अभाव है। सन् १६२६ ई० के मद्रास कांग्रेस अधिवेशन के समय से भारतवासियों की यह माँग रही है कि भारत के शासन-विधान में मौलिक अधिकारों का स्पष्ट रूप से समावेश किया जाय। स्वर्गीय पं० मोतीलाल नेहरू ने सर्व-दल-सम्मेलन की रिपोर्ट में नागरिकता के मौलिक अधिकारों को स्थान दिया था।❀

❀ In the first place enunciation of fundamental rights guaranteed in a manner which would not permit their with-drawal under any circumstances, was demanded by the political relation of India to

सायमन रिपोर्ट की सम्मति में नागरिकता के मौलिक अधिकारों की घोषणा का "कोई क्रियात्मक मूल्य नहीं है"। तीनों गोलमेज परिषदें में इस प्रश्न पर विचार किया गया। संयुक्त पार्लिमैंटरी-कमेटी के समक्ष ब्रिटिश-भारत के प्रतिनिधि-मंडल (Delegation) ने भी इस बात पर ज़ोर दिया था कि शासन-विधान में नागरिकता के मौलिक अधिकारों की घोषणा अवश्य होनी चाहिये। परन्तु कमेटी ने इसे स्वीकार नहीं किया और नवीन शासन-विधान में मौलिक अधिकारों की घोषणा नहीं की। कमेटी ने प्रतिनिधिमंडल के उपरोक्त प्रस्ताव के विरुद्ध दो आपत्तियाँ प्रस्तुत कीः—

(१) पहली आपत्ति यह की है कि मौलिक अधिकरों की घोषणा से व्यवस्थापिका परिषद् (Legislature) के कार्यों व अधिकारों पर प्रतिबंध लग जायगा। व्यवस्थापिका-परिषद् ऐसे अनेकों क़ानून बनावेगी जो मौलिक अधिकारों के प्रतिकूल होने पर अवैध ठहरा दिये जांयगे।

(२) दूसरी आपत्ति यह है कि देशी रियासतों ने यह स्पष्ट रूप से घोषित कर दिया है कि नागरिकता के मौलिक अधिकारों की घोषणा देशी राज्यों पर लागू न होनी चाहिये। यह वास्तव में बड़ी विचित्र बात होगी कि घोषणा का संघ के एक भाग में क़ानूनी असर हो और देशी रियासतों में उसका कोई प्रभाव न हो। ❀

England. Another reason why great importance was attached to a declaration of-rights was the unfortunate existence of communal difference in the country. —Report of All Parties Conference 1928 pp.-80.

❀ Joint Parliamentary Report (Vol. 1 Part 1) page 216 (1934).

पहली आपत्ति बिलकुल सारहीन और तर्क-रहित है। नागरिकता के मौलिक अधिकारों का मतलब ही यह है कि नागरिक व्यवस्थापिका (Ligislature) और कार्य-कारिणी (Executive) के स्वेच्छापूर्ण शासन व क़ानूनों के शिकार न बन सकें। यह तो सत्य ही है कि शासन के जो 'आर्डर' या व्यवस्थापक के जो क़ानून नागरिक अधिकारों के विरुद्ध होंगे, वे अवैध (Unconstitutional) ठहरा दिये जायँगे। ऐसा ही अन्य प्रजातंत्र-वादी देशों में होता है। मौलिक अधिकारों के खिलाफ़ जो आपत्ति प्रकट की गयी है वही उनकी घोषणा के पक्ष में एक ज़ोरदार तर्क है।

दूसरी आपत्ति तो और भी अधिक तर्क-शून्य है। यदि संघ का एक भाग–देशी रियासतें—राजतंत्र-वादी हैं, तो क्या इसका यह अर्थ है कि ब्रिटिश भारत को भी राजतंत्र-वादी बन जाना चाहिये। देशी राज्यों की इच्छा-पूर्ति के लिए समस्त ब्रिटिश-भारत को नागरिकता के मौलिक अधिकारों की घोषणा से वंचित रखना सर्वथा अनुचित है।

नवीन शासन-विधान के अनुसार ब्रिटिश-भारत के प्रान्तों में 'प्रान्तीय स्वराज्य' के स्थापना हो जाने पर भी नागरिक स्वाधीनता की रक्षा के लिए कोई उपाय नहीं किया जा रहा है यह भारतीय नागरिक स्वाधीनता संघ (Indian Civil Liberties Union) के उस 'मेनीफेस्टो' के निम्नलिखित शब्दों से प्रकट होता है जो उसकी ओर से लन्दन में होने वाले १७ अक्टूबर १९३७ के नागरिक स्वाधीनता-सम्मेलन में पढ़ा गया था:—"भारतीय नागरिक स्वाधीनता संघ अखिल विश्व के समस्त स्वाधीनता-प्रेमियों को यह बतला देना चाहता है कि

भारत के नागरिकों के प्राथमिक अधिकारों और स्वाधीनता पर दिन-पर-दिन ब्रिटिश साम्राज्यवाद की ओर से भारत में राज्य करने वाली अनुत्तरदायी नौकरशाही द्वारा आघात और आक्रमण होते रहते हैं और संघ इस बात पर ज़ोर देना ज़रूरी समझता है कि और दूसरे मामलों की तरह नागरिक स्वाधीनता के विषय में भी उन प्रान्तों में अभी कोई परिवर्तन नहीं हुआ जिनमें गैर काँग्रेसी मंत्रि-मंडल राज्य-संचालन कर रहे हैं और दूसरे प्रान्तों में कुछ समय से थोड़ा-सा सुधार हुआ है, परंतु काँग्रेसी मंत्रि-मंडल गवर्नरों और स्थायी "सर्विस" के अनवरत विरोध के कारण जनता की माँगों को पूरा नहीं कर सके।"❀ लन्दन में नागरिक स्वाधीनता-सम्मेलन के अवसर पर इङ्गलैंड के विश्व-विख्यात राजनीतिज्ञ और राजनीतिक लेखक प्रोफ़ेसर हैराल्ड लास्की ने अपने भाषण में कहा:—"अमेरिकन उपनिवेशों और आयरलैंड का इतिहास यह सिद्ध करता है कि नागरिक स्वाधीनता के दमन का परिणाम निकला गृह-युद्ध (Civil war)। तथापि इङ्गलैंड के लिए यह असंभव प्रतीत होता है कि वह उससे यह सबक सीखे कि भारत अपनी स्वाधीनता अमेरिका या आयरलैंड की तरह प्राप्त करेगा। यदि भारत का नवीन शासन-विधान ब्रिटेन की स्वाधीनता की भावना का प्रकटीकरण है, तो भारत दूसरे ढंग से आज़ादी प्राप्त कर सकेगा। भारतीय स्वाधीनता पर आघात यह प्रकट करता है कि ब्रिटेन भारत में शासन करने के योग्य नहीं है।" †

❀ Vide—The Hindustan Times October 23, 1937 page 4.

† Vide—The Hindustan Times October 23, 1937 page 4.

७—शासन-विधान का संशोधन

भारतीय शासन-विधान (Government of India Act 1919) १६१६ में एक धारा इस प्रकार की थी कि १० वर्ष के बाद पालिमैंट एक जाँच कमीशन नियुक्त करेगी। यह कमीशन भारत में जाकर राजनीतिक परिस्थिति का अध्ययन कर शासन सुधार के संबंध में अपनी सिफारिशें करेगा। इसके अनुसार सन् १६२८ ई० में सायमन कमीशन (Indian Statutory Commission) की नियुक्ति की गयी। इस कमीशन में ७ अङ्गरेज़ सदस्य थे। उसके अध्यक्ष सर जॉन सायमन थे। इसी कारण यह कमीशन 'सायमन कमीशन' के नाम से प्रसिद्ध है। सायमन रिपोर्ट में यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है कि "शासन-विधान के प्रान्तीय क्षेत्र में ऐसा पूर्ण विधान संभव है जिससे ब्रिटिश पार्लिमैंट से नवीन अधिकार प्राप्त करने की आवश्यकता न हो और शासन-विधान का विकास होता रहे।"

"इसलिए यथा-संभव जिस उद्देश्य की प्राप्ति करना है वह है ऐसे शासन-विधान की रचना करना जिसमें नियत समय पर संशोधन करने के लिए कोई ऐसी धारा न जोड़ी जाय; किंतु उसमें स्वाभाविक विकास के लिए गुंजाइश हो।"❀ परंतु

❀ "While we think it possible in the provincial sphere to make very full provision in the constitution for growth and development without the security of seeking new powers from the British Parliament,..........." page 8.

"As far as possible, there-fore, the object now to arrived at is reformed constitution which will not

यह बड़े आश्चर्य की बात है कि पार्लिमैंटरी संयुक्त कमेटी ने सायमन कमीशन-रिपोर्ट को टैक्स्टबुक (Text-Book) मानकर उसकी सिफारिशों के आधार पर शासन-विधान की रूप-रेखा निश्चय की उस कमीशन की उपरोक्त सिफारिश पर कमेटी ने कोई ध्यान नहीं दिया। कमेटी की राय में "उनको (भारतीय व प्रान्तीय व्यवस्थापिकाओं को) ऐसे अधिकार (विधान में संशोधन करने के अधिकार देना) देने का प्रयत्न करना क्रियात्मक राजनीति नहीं हैं।" नवीन शासन-विधान (१६३५) के अनुसार संघीय या प्रान्तीय व्यवस्थापिका परिषद् को विधान (Constitution) में कोई संशोधन या परिवर्तन करने का अधिकार नहीं दिया गया है। परंतु ये व्यवस्थापक परिषदें कुछ मामलों में परिवर्त्तन के लिए पार्लिमैंट से सिफारिश कर सकती हैं। पार्लिमैंट को शासन-विधान में परिवर्त्तन या संशोधन करने का पूर्ण अधिकार है।

भारतीय व्यवस्थापिका और विधान में संशोधन

भारतीय व्यवस्थापक को विधान में संशोधन करने का अधिकार नहीं है। परंतु संघीय व्यवस्थापक सभा या प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा कुछ निर्दिष्ट विषयों के संबंध में निम्न प्रकार से अपनी सिफारिश पार्लिमैंट में भेज सकती हैं:—

१—इस धारा की शर्तों के अनुसार यदि संघीय व्यवस्थापिका या कोई प्रान्तीय व्यवस्थापिका अपने प्रत्येक चेम्बर में मंत्रि-मंडल

---

necesarily require revision at stipulated intervals, but which provides opportunities for natural development. Simon Commission Report Vol. II page 7.

की ओर से मंत्री (Minister) द्वारा शासन-विधान में अथवा कौंसिल आर्डरों में कोई संशोधन करनेवाला प्रस्ताव स्वीकार करें और इसी प्रकार प्रस्ताव द्वारा यह गवर्नर-जनरल या गवर्नर को इस आशय से भेजने की प्रार्थना की जाय कि यह प्रस्ताव ब्रिटिश-सम्राट् की सेवा में इसलिए भेज दिया जाय कि वह उसे पार्लिमैंट में भेज दें तो भारत मंत्री उस प्रस्ताव के पार्लिमैंट में भेजे जाने के ६ मास की अवधि के भीतर उस कार्य के विषय में एक वक्तव्य देंगे जिसे वह उस संबंध में करना चाहते हों।

भारत-मंत्री के पास ऐसे प्रस्ताव भेजते समय गवर्नर-जनरल या गवर्नर उसके साथ अपना एक वक्तव्य प्रस्तावित संशोधन के संबंध में भेजेंगे जिनमें वे अपनी निजी राय प्रकट करेंगे और अल्प-मत के विचारों के संबंध में वे अपनी रिपोर्ट भी भारत-मंत्री के पास भेजेंगे।

"इन कर्त्तव्यों का पालन करते समय गवर्नर-जनरल या गवर्नर स्वेच्छानुसार (In his discretion) कार्य करेगा।"

२—निम्नलिखित विषयों में संशोधन करने के लिए व्यवस्थापक अपनी सिफारिशें भेज सकेंगे:—

"(१) संघीय व्यवस्थापक के चेम्बरों का संगठन, निर्वाचन या सदस्यों की योग्यता; परंतु राज्य-परिषद् (Council of State) और संघीय-परिषद् (Federal As embly) के सदस्यों के अनुपात अथवा ब्रिटिश-भारत और देशी राज्यों के सदस्यों के अनुपात में परिवर्तन करने वाला कोई प्रस्ताव पास न हो सकेगा।"

"(२) प्रान्तीय व्यवस्थापिका में चेम्बरों की संख्या, संगठन, निर्वाचन या सदस्यों की योग्यता।

"(३) स्त्रियों के संबंध में मताधिकार के लिए उच्च-शिक्षा संबंधी योग्यता के स्थान में साक्षरता (Literacy) रखी जाय या स्त्रियों को निर्वाचन-सूची में बिना आवेदन-पत्र दिये ही लिख लिया जायगा।

"(४) मतदाता की योग्यताओं के संबंध में।❀

सिफारिशी प्रस्तावों पर प्रतिबंध

मर्यादित सीमा के अंतर्गत भारतीय व्यवस्थापिका परिषदों को शासन-विधान के संशोधन के संबंध में जो सिफ़ारिशी प्रस्ताव पास करने का अधिकार दिया गया है, उस पर एक बड़ा प्रतिबंध लगा दिया है। उपरोक्त संशोधनों में से (२) को छोड़ और कोई भी संशोधन १० वर्ष से पूर्व प्रस्तुत नहीं किया जा सकेगा परंतु परिषद् सम्राट (His Majesty-in-Council) को प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना से पूर्व या बाद में, उपरोक्त संशोधन करने का अधिकार होगा। अतः यह बिलकुल प्रत्यक्ष है कि नवीन शासन-विधान में भारतीय व्यवस्थापिका को परिवर्तन करने का बिलकुल भी अधिकार नहीं है।

कौंसिल-आर्डर द्वारा संशोधन

पार्लिमेंटरी कमेटी ने यह सिफ़ारिश की कि शासन-विधान को (Elastic) बनाने के लिए यह आवश्यक है कि ब्रिटिश सरकार को कुछ अधिकार सौंप दिये जायँ जिससे वह आर्डर इन कौंसिल द्वारा आवश्यक संशोधन कर सके; परंतु

❀ Government of India Act 1935 Section 308 (1), (2), (4).

पार्लिमेंट का नियंत्रण बराबर रहे। ये कौंसिल आर्डर दो प्रकार के होते हैं प्रथम वर्ग में वे आर्डर आते हैं जो राज्य-प्रबंध-संबंधी मामलों से संबंध रखते हैं जैसे गवर्नर-जनरल, गवर्नर, चीफ जस्टिस, हाईकोर्ट-जज आदि के वेतन, भत्ते तथा पेंशन आदि दूसरे वर्ग में विविधि प्रकार के आर्डर हैं। जैसे आयकर का प्रान्तीय भाग, देशी राज्यों द्वारा संघीय—शासन को कर, प्रथक प्रदेश, संघीय व प्रान्तीय व्यवस्थापिका के मतदाताओं की योग्यताएँ, निर्वाचन-पद्धति, निर्वाचन-क्षेत्रों की सीमा। जो आर्डर-इन-कौंसिल बनाये जायँगे, उनके ड्राफ्ट पार्लिमेंट की स्वीकृति के लिए पेश किये जायँगे।

इस नवीन शासन-विधान का यह एक सबसे बड़ा दोष है कि इसमें परिवर्त्तन करने का अधिकार भारतीय व्यवस्थापिका को नहीं दिया गया है। पार्लिमेंट के क़ानून (Act) या ब्रिटिश-सरकार के कौंसिल आर्डर ही इसमें जब चाहें जैसे संशोधन कर सकते हैं। उनके मार्ग में कोई बाधा नहीं है। वे चाहें तो ऐसा संशोधन भी कर सकते हैं जिससे भारतीय प्रान्तों को दिया गया 'प्रान्तीय स्वराज्य' भी वापस ले लिया जाय।

अध्याय २

प्रान्तीय स्वराज्य

कार्यकारिणी

१—गवर्नर

गवर्नर के प्रान्त

नवीन भारतीय शासन विधान के दो भाग हैं; प्रथम् भाग है अखिल भारतीय संघ (All India Federation) और दूसरा भाग है प्रान्तीय स्वराज्य। अखिल भारतीय संघ की स्थापिना कब होगी, यह नहीं कहा जा सकता। उसके दूसरे भाग प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना १ अप्रैल सन् १९३७ को हो चुकी है। नवीन-शासन विधान के अनुसार निम्न लिखित ११ प्रान्त गवर्नर के प्रान्त कहलाते हैं:—

(१) बंगाल प्रेसीडेंसी (२) बम्बई प्रेसीडेंसी (३) मद्रास प्रेसीडेंसी (४) संयुक्त-प्रान्त, (५) पंजाब प्रान्त (६) बिहार प्रान्त (७) मध्य प्रान्त (८) आसाम प्रान्त (९) उड़ीसा प्रान्त (१०) सिन्ध प्रान्त और (११) सीमा-प्रान्त। ९ प्रान्त तो पहले से मौजूद थे; नवीन-शासन विधान ने उड़ीसा और सिंध के दो नवीन प्रान्तों की रचना की है।

इनके अतिरिक्त निम्न लिखित प्रान्त चीफ कमिश्नर के प्रान्त होंगे। इन प्रान्तों का शासन-प्रबंध चीफ-कमिश्नर द्वारा गवर्नर-जनरल के आधीन होगा। चीफ-कमिश्नर की नियुक्ति गवर्नर-जनरल द्वारा की जायगी। (१) ब्रिटिश बिलोचिस्तान (२) देहली (३) अजमेर-मेरवाड़ (४) कुर्ग (५) अन्दमान निकोवर द्वीप (६) पन्थ पिलोदा। अब तक अदन का शासन प्रबंध भारत सरकार के अधीन था। किंतु अब वह भारत से प्रथक् कर दिया गया है। इसी प्रकार ब्रह्मा भी भारत से प्रथक् कर दिया गया है।

चीफ कमिश्नर के प्रान्त

नवीन शासन विधान (१९३५) की धारा ४८ (१) के अनुसार प्रान्त के गवर्नर की नियुक्ति, 'रायल साइन मेनुअल' के अन्तर्गत ब्रिटिश राजा द्वारा की जायगी।

गवर्नर

प्रान्त की कार्य-कारिणी सत्ता का प्रयोग ब्रिटिश राजा की ओर से गवर्नर करेगा। इस सत्ता का प्रयोग प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अपने अधीनस्थ अफसरों द्वारा किया जायगा। ❀

अब तक गवर्नर सामान्यतया ५ साल तक के लिए नियुक्त होते रहे हैं और सन् १९२५ से गवर्नरों को इस ५ साल की अवधि में ४ महीने का अवकाश-ग्रहण करने का अधिकार है। ब्रिटिश शासन-विधान की यह एक प्रकार से वैधानिक प्रथा (Convention) है कि ब्रिटिश राजा गवर्नर-जनरल की नियुक्ति ब्रिटिश प्रधान-मंत्री के परामर्श से, और प्रेसीडेन्सी के गवर्नर की नियुक्ति भारत-मंत्री के परामर्श से करता है। प्रान्त के गवर्नर की

गवर्नरों की नियुक्ति

❀ Government of India Act 1935 Sec. 49 (1).

नियुक्ति करते समय गवर्नर-जनरल के परामर्श पर ध्यान दिया जाता है। भारत में जो गवर्नर नियुक्त किये जाते हैं, वे दो भागों में बाँटे जा सकते हैं:—(१) ब्रिटिश नेता और राजनीतिज्ञ (२) भारतीय सिविल-सर्विस के अनुभवी सदस्य। प्रथम् श्रेणी के गवर्नर प्रेसीडेन्सी में नियुक्त किये जाते हैं और दूसरी श्रेणी के गवर्नर प्रान्तों में। अब तक भारत के प्रान्तों के गवर्नर, लार्ड सिनहा को छोड़ कर अङ्गरेज़ ही नियुक्त किये जाते रहे हैं। भारतीय लोकमत वर्षों से गवर्नर-पद के भारतीयकरण के लिए प्रयत्नशील रहा है। भारतीय लोकमत 'सिविल सर्विस' के सदस्यों को गवर्नर के पद पर नियुक्त किये जाने का सर्वदा विरोधी रहा है।

गवर्नर प्रान्तीय-शासन के प्रति उत्तरदायी उसी समय हो सकते हैं जब कि उनकी नियुक्ति पर प्रान्त का नियंत्रण हो। आस्ट्रेलियन कॉमन वेल्थ में गवर्नर की नियुक्ति प्रान्तीय-व्यवस्थापिका अथवा प्रान्तीय उत्तरदायी शासन (Government) द्वारा की जाती है। आयरिश-फ्री-स्टेट में गवर्नर के पद के लिए चुनाव किया जाता है। संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका में भी राष्ट्रपति (President) का चुनाव प्रति चौथे वर्ष किया जाता है। इसी प्रकार भारत के प्रान्तीय गवर्नर की नियुक्ति पर जनता का नियंत्रण हो सके तो यह संभव है कि वह प्रान्तीय-शासन प्रबंध के लिए जनता के प्रति उत्तरदायी हो सकेगा—पार्लिमेंट के प्रति नहीं।

गवर्नर की कार्य-कारिणी सत्ता सबसे अधिक महत्वपूर्ण है।

गवर्नर की कार्य-कारिणी-सत्ता

विधान की धारा ५० के अनुसार गवर्नर को एक मंत्रि-मंडल की नियुक्ति करने का अधिकार है। मंत्रि-मंडल का कार्य प्रान्तीय-शासन के विषय में गवर्नर को परामर्श देना और

शासन-कार्य में सहायता देना (aid and advise) है। गवर्नर के कार्य-कारिणी कार्यों (Executive actions) को तीन भागों में बाँटा जा सकता है:—(१) मंत्रि-मंडल के परामर्श से कार्य करना (२) अपने व्यक्तिगत-निर्णय (in his individual Judgment) के अनुसार कार्य करना। (३) पूर्ण स्वेच्छा से कार्य करना (In his sole discretion)। इनके अतिरिक्त एक चौथी श्रेणी भी है जिसके अन्तर्गत वे कार्य हैं जिन्हें मंत्रि-मंडल से परामर्श करने के बाद गवर्नर पूर्ण स्वेच्छा से करेगा।

१—मंत्रि-मंडल के परामर्श से कार्य—गवर्नर मंत्रि-मंडल के परामर्श से जो कार्य करेगा उनकी संख्या सबसे अधिक है। वे कार्य कैसे हैं; और मंत्रि-मंडल को परामर्श देने का अधिकार किन-किन मामलों में है इसका विवेचन प्रथक् अध्याय में किया जायगा।

२—गवर्नर के स्वेच्छापूर्ण अधिकार और कार्य—निम्न लिखित मामलों में गवर्नर को मंत्रि-मंडल से परामर्श लेने की आवश्यकता नहीं है; वह स्वयं स्वेच्छानुसार कार्य कर सकता है:—

(१) वह मंत्रि-मंडल के अधिवेशनों का सभापतित्व ग्रहण करेगा। धारा ५०

(२) उसे यह निर्णय करने का अधिकार है कि कोई विषय गवर्नर के विशेषाधिकार के अन्तर्गत है या नहीं।

(३) उसे मंत्रियों की नियुक्ति व पद-च्युत करने का अधिकार है। जब तक व्यवस्थापिका उनका वेतन निर्धारित न करे, तब तक गवर्नर नियत कर सकता है। ५१-(५) धारा

(४) क़ानून द्वारा स्थापित शासन के विनाश के उद्देश से किये गये हिंसात्मक कार्यों को रोकने के लिए गवर्नर यह

आदेश दे सकता है कि कुछ विशेष कार्यों को वह स्वयं करेगा। इस कार्य के लिए वह किसी भी 'आफीसियल' को व्यवस्थापिका परिषद् का सदस्य नियुक्त कर सकेगा; उसे सदस्य की हैसियत से सब अधिकार प्राप्त होंगे।

(५) उपरोक्त प्रकार के हिंसात्मक अपराधों के संबंध जो सूचना व 'रिकार्ड' सुरक्षित होगा, वह पुलिस के किसी सदस्य द्वारा पुलिस के किसी दूसरे सदस्य के सामने प्रकट नहीं किया जायगा। इन्स्पेक्टर-जनरल या पुलिस कमिश्नर के आदेश से ऐसा किया जा सकेगा। ऐसी सूचना या 'रिकार्ड' किसी अन्य व्यक्ति (जिसमें पुलिस-विभाग का मंत्री (Minister) भी सम्मलित है) को गर्वनर के आदेश के बिना नहीं बतलाया जायगा। इस संबंध में गवर्नर नियम बनायेगा। धारा ५८

(६) निम्न लिखित नियम बनानाः—

(*i*) सरकार के 'आर्डर' तथा अन्य कागजातों को प्रमाणित (Authenticate) करने के नियम।

(*ii*) प्रान्तीय सरकार के कार्य-संचालन के नियम।

(*iii*) मंत्रि-मंडल के सदस्यों में कार्य-विभाजन के नियम।

(*iv*) इन उपरोक्त नियमों में ये भी नियम सम्मलित होंगे कि मंत्री (Minister) और सेक्रटरी प्रान्तीय-सरकार के संबंध की समस्त सूचनाएँ गर्वनर के पास भेजेंगे। यदि किसी मामले में गर्वनर के 'विशेष उत्तरदायित्वों' से संबंध हो, तो मंत्री को उसे गवर्नर के सामने पेश करना और सेक्रेटरी को मंत्री और गवर्नर के सामने पेश करना चाहिये। धारा ५९

(७) व्यवस्थपिका के अधिवेशन निमंत्रित करना और उसके अधिवेशन अनिश्चित काल के लिए स्थगित (Prorogue) करना । धारा ६२.

(८) व्यवस्थापिका में भाषण देना । ६३.

(९) किसी बिल के संबंध में, जो प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा के किसी चेम्बर के सामने प्रस्तुत हो, संदेश (Messages) भेजना ।

(१०) प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा का सदस्य बनने के लिए किसी व्यक्ति की अयोग्यताओं का निवारण करना । धारा ६९

(११) यदि कोई बिल गवर्नर की राय में उसके विशेष उत्तरदायित्वों की पूर्ति अथवा उसके संबंध में अर्थ-नीति (Finance) से सम्पर्क रखता है, तो वह दोनों चेम्बरों की संयुक्त बैठक आमंत्रित करेगा । धारा ७४

(१२) प्रान्तीय-व्यवस्थापिका सभा द्वारा स्वीकृत बिल को (i) स्वीकार करना, (ii) अस्वीकार करना, (iii) गवर्नर-जनरल के विचारार्थ सुरक्षित रखना, या (vi) अपने इस सन्देश के साथ कि बिल पर पुनर्विचार किया जाय, बिल को वापस भेज देना । धारा ७५

(१३) प्रस्तावित व्यय उस श्रेणी के अन्तर्गत है जिसपर व्यवस्थापिका सभा अपनी राय दे सकती है अथवा नहीं— इसका निर्णय करना । धारा ७८

(१४) व्यवस्थापिका परिषद् या कौंसिल की कार्यवाही के संचा-

लन के लिए अध्यक्ष से परामर्श लेने के बाद नियम बनाना।※ धारा ८४

(१५) यह आदेश करना कि उस बिल, वाक्यांश या संशोधन के विषय में आगे और कोई कार्यवाही नहीं की जायगी जिसको गवर्नर-जनरल ने यह प्रमाणित कर दिया हो कि

※ इस धारा के अन्तर्गत निम्न लिखित नियम बनाये जायंगे:—

१—गवर्नर के उन कार्यों के संबंध में जिन्हें वह आत्म-निर्णय या स्वेच्छानुसार करेगा।

२—नियत समय के भीतर व्यवस्थापिका सभा की आर्थिक कार्य-वाही को समाप्त करना।

३—देशी रियासत संबंधी किसी मामले पर बहस करने या प्रश्न करने के संबंध में रुकावट। यदि गवर्नर की राय में ऐसा मामला प्रान्तीय सरकर के हितों से अथवा प्रान्त की ब्रिटिश प्रजा के हितों से संबंध रखता हो, तो गवर्नर ऐसी बहस या प्रश्नों के लिए अपनी सम्मति दे देगा।

४—ब्रिटिश राजा या गवर्नर-जनरल तथा विदेशी राज्य या राज-कुमार के संबंध के विषय में बहस या प्रश्नों की रुकावट। यदि गवर्नर सम्मति दे दे, तो बहस की और प्रश्न पूछे जा सकेंगे।

५—किसी कबीलों के प्रदेश (Tribal area) के राज्य-प्रबंध या पृथक् प्रदेश के शासन प्रबंध के विषय में प्रश्न पूछना या बहस करना। उसके बजट पर बहस नहीं हो सकेगी।

६—किसी देशी राज्य के नरेश के व्यक्तिगत आचरण के संबंध में प्रश्न या बहस।

७—दोनों चेम्बरों की संयुक्त बैठक के लिए नियम।

वह बिल, वाक्यांश या संशोधन शान्ति-स्थापन संबंधी विशेष उत्तरदायित्व पर प्रभाव डालेगा। धारा ८६

(१६) अपने उत्तरदायित्वों की पूर्ति के लिए 'आर्डीनेंस' जारी करना। धारा ८९

(१७) गवर्नर के क़ानून (Governor's Act) का निर्माण करना। धारा ९०

(१८) प्रान्त के प्रथक्-प्रदेश के सुशासन के लिए रेगूलेश्न बनाना। धारा ९२

(१९) शासन-विधान के स्थगित करने के लिए घोषणा प्रकाशित करना। धारा ९३

(२०) स्टाफ़ (Secretarial Staff) के लिए नियुक्ति वेतन, भत्ता आदि। धारा ३०५

यह अधिकारों की सम्पूर्ण सूची नहीं है। हमने केवल प्रमुख अधिकारों की सूची दे दी है। इन अधिकारों की सूची के अध्ययन से यह बिलकुल स्पष्ट हो जाता है कि इनके कारण मंत्रि-मंडल के कार्य बड़े मर्यादित हो गये हैं। कार्य-कारिणी (Executive) ही नहीं व्यवस्थापिका (Legislative) संबंधी कार्यों में गवर्नर सर्व-शक्तिशाली है। अनेकों ऐसे महत्वपूर्ण विषय हैं जिनके संबंध में मंत्रि-मंडल द्वारा व्यवस्थापिका-परिषद् में कोई मशविदा, प्रस्ताव, बिल या प्रश्न प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।

३—गवर्नर के कार्य व अधिकार जिन्हें वह आत्म-निर्णय के अनुसार करेगा:—निम्नलिखित मामलों में गवर्नर मंत्रि-मंडल से परामर्श लेगा; किन्तु यदि वह मंत्रि-मंडल की सम्मति से

सहमत न हो तो आवश्यकता होने पर वह मंत्रि-मंडल की सम्मति के विरुद्ध भी कार्य कर सकेगाः—इनमें सबसे प्रमुख 'विशेष उत्तरदायित्व' निम्न प्रकार हैंः—

धारा ५२ (१)—(*i*) प्रान्त या उसके किसी भाग की शान्ति व व्यवस्था के लिए किसी खतरे का अवरोध।

(*ii*) अल्प-संख्यक जातियों के वैध हितों का संरक्षण।

(*iii*) शासन-विधान द्वारा 'पबलिक सर्विस' के किसी सदस्य अथवा उसके आश्रित के लिये सुरक्षित अधिकारों और उनके वैध हितों की रक्षा।

(*iv*) शासन-विधान के भाग ५ अध्याय ३ की धाराओं के उद्देश की पूर्ति।

(*v*) प्रथक् प्रदेशों (Excluded areas) के सुशासन और शान्ति के लिए व्यवस्था।

(*iv*) देशी रियासतों के हितों और उनके नरेशों के अधिकारों व पद-गौरव की रक्षा।

(*vii*) शासन-विधान के भाग ६ के अन्तर्गत गवर्नर-जनरल द्वारा निकाली गयी आज्ञाओं का पालन।

(२) मध्य-प्रान्त व बरार के गवर्नर का यह विशेष उत्तरदायित्व होगा कि वह इस बात की व्यवस्था करे कि प्रान्त की आय का यथेष्ट भाग बरार के लाभ के लिए व्यय हो। जिन प्रान्तों में प्रथक् प्रदेश सम्मलित हैं, उनके गवर्नरों का

यह विशेष उत्तरदायित्व होगा कि वे उनका शासन उचित ढंग से करें। सिन्ध के गवर्नर का यह विशेष उत्तरदायित्व होगा कि वह लायडबाँध और नहर-योजना का उचित शासन-प्रबंध करे।

(३) एडवोकेट-जनरल की नियुक्ति। धारा ५५

(४) पुलिस के संबंध में नियम बनाना या नियमों में संशोधन करना। धारा ५६

(५) जो व्यक्ति प्रान्तीय और संघीय व्यवस्थापिका सभाओं का सदस्य चुन लिया गया है उसकी एक 'सीट' को 'रिक्त' घोषित करना। धारा ६८ (२)

(६) वे समस्त रेगुलेशन (नियम) जो किसी संघीय या प्रान्तीय क़ानून के अन्तर्गत किसी उद्देश के लिए व्यावसायिक या 'टेकनीकल' योग्यताओं के संबंध में बनाये जायगें अथवा जो किसी पद, व्यवसाय, व्यापार के ग्रहण करने के संबंध में कोई अयोग्यता, प्रतिबंध या शर्त लगायेंगे, तो उनके लागू होने से ४ मास पूर्व वे प्रकाशित कर दिये जायेंगे; यदि प्रकाशित होने के दो मास के भीतर किसी ऐसे नियम के विरुद्ध शिकायत की गयी और वह शिकायत ठीक हुई, तो गवर्नर या गवर्नर-जनरल उसे रद्द कर देगा। धारा ११९ (३)

(७) गवर्नर यह नियम बनायगा कि जो धन प्रान्त की आय के संबंध में प्राप्त होगा वह प्रान्त के राज्य-कोष (Public account) में अदा किया जायेगा। धारा १५१ (१)

(८) हाई-कोर्ट के राज्य-प्रबंध-संबंधी खर्च (जिनमें कोर्ट के अफ़सरों व नौकरों के वेतन, भत्ते, पेंशन आदि सम्मिलित

हैं) और कोर्ट के जजों के वेतन और भत्ते प्रान्त की आय से अदा किए जायेंगे। धारा २२८ (१)

(९) तथाकथित सुरक्षित जगहों के लिए नियुक्तियाँ प्रान्त के गवर्नर द्वारा होंगी। धारा २४६ (२)

(१०) भारत-मंत्री द्वारा सिविल सर्विस में नियुक्त किए गये सदस्य की पदोन्नति, तीन मास के अवकाश-ग्रहण का 'आर्डर' या किसी पद से मुअत्तिली का आर्डर गवर्नर द्वारा दिया जायगा। धारा २४७ (२)

(११) यदि ऐसा व्यक्ति मुअत्तिल कर दिया गया, तो मुअत्तिली की अवधि में उसका वेतन उससे कम नहीं किया जायगा जितना गवर्नर नियत करेगा। धारा २४७ (३)

(१२) ऐसे व्यक्ति को दंड देनावाला आर्डर गवर्नर द्वारा ही दिया जायगा।

गवर्नर के विशेषाधिकारों पर लार्ड जटलैंड

मार्च १९३७ के अन्तिम सप्ताह में ६ कांग्रेसी प्रान्तों के कांग्रेस-दलों के नेताओं को उन प्रान्तों के गवर्नरों ने मंत्रि-मंडल निर्माण करने में सहायता देने के लिए निमंत्रण भेजे। नेताओं और और गवर्नरों में परस्पर विचार-विनिमय हुआ। कांग्रेस ने पद ग्रहण के लिए आश्वासन की शर्त रखी थी। उस पर गवर्नरों से काफ़ी बहस हुई। अन्त में गवर्नरों ने यह शर्त स्वीकार नहीं की। फलतः कांग्रेस-दल ने मंत्रि-मंडल निर्माण करना अस्वीकार कर दिया। उपरोक्त ६ प्रान्तों में कांग्रेस-दल का बहुमत है। अतः यह सर्वथा वैधानिक है कि इस दल का मंत्रि-मंडल बनाया जाय। परंतु आश्वासन की शर्त के कारण कांग्रेसी मंत्रि-मंडल निर्माण न हो सका।

भारत में, प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना से पूर्व ही वैधानिक संकट (Constitutional crisis) उत्पन्न हो गया। हाउस आफ़ कामन्स में भारत-मंत्री लार्ड जटलैंड ने ८ अप्रेल सन् १९३७ को भारत की स्थिति पर एक वक्तव्य दिया। इस वक्तव्य में लार्ड जटलैण्ड ने गवर्नर के विशेष उत्तरदायित्वों पर अपने विचार प्रकट किये हैं :—

"......समस्त भ्रान्तियों का निवारण करने के लिए, सन्देह से परे, यह बांछनीय है कि यह स्पष्ट कर दिया जाय कि गवर्नरों से जो माँग की गई है, वह ऐसी है कि शासन-विधान में संशोधन किये बिना स्वीकार नहीं की जा सकती। सबसे सीधा मार्ग तो यह है कि एक उदाहरण पर विचार किया जाय जिससे आपको उस स्थिति का ज्ञान हो जायगा, जो माँगे हुए आश्वासनों के दिये जाने पर उत्पन्न हो जायगी। यह आपको याद होगा कि शासन-विधान की धारा ५२ के अन्तर्गत अल्प-संख्यक जातियों के वैध हितों के संरक्षण के लिए कुछेक विशेष संरक्षण (Safe-guards) हैं; और जहाँ तक ऐसे किसी विशेष उत्तर-दायित्व का संबंध है, उसे अपने कार्यों का संपादन करने में अपने व्यक्तिगत निर्णय (Individual Judgment) और स्वतंत्र मति का अनुसरण करना चाहिये।......अब हमें एक उदाहरण द्वारा यह कल्पना करनी चाहिये कि किसी प्रान्त में जिसमें हिन्दुओं का बहुमत है या किसी प्रान्त में जिसमें मुसलमानों का बहुमत है, मंत्रि-मंडल ने ऐसे किसी कार्य का प्रस्ताव किया जिसका प्रभाव यह हो कि जिस प्रान्त में हिन्दू बहुमत में हों वहाँ मुसलमानों और जिस प्रान्त में मुसलमानों का बहुमत हो वहाँ हिन्दुओं के स्कूलों की संख्या कम हो जाय। उनका (मंत्रि-मंडलका) कार्य कांग्रेस प्रस्ताव के अन्तर्गत स्पष्टतः होगा; कारण कि

इस प्रकार का प्रस्ताव करना बिल्कुल वैधानिक और उचित होगा और व्यवस्थापिका परिषद् भी ऐसा क़ानून बना सकती है। अतः यह कार्य मंत्रि-मंडल के लिए वैधानिक कार्यों (Constitutional activities) की सीमा में रहेगा। यही कारण है कि इस तथ्य को अनुभव करके कि शासन-विधान के अन्तर्गत ऐसा कार्य संभव है, पार्लिमैंट ने शासन-विधान में संरक्षणों को स्थान दिया; इसके अनुसार गवर्नरों पर विशेष उत्तरदायित्व लादे गये। "......परंतु यदि उसने (गवर्नर ने) कांग्रेस की इच्छानुसार आश्वासन दे दिया, तो फिर वह अपने व्यक्तिगत-निर्णय के अनुसार कार्य नहीं कर सकेगा; कारण कि वह उन उत्तरदायित्वों को पूरा करने में अशक्त रहेगा जिन्हें उसे पूरा करना चाहिये। मुझे आशा है कि मैंने इस उदाहरण द्वारा यह स्पष्ट कर दिया है कि गवर्नर शासन-विधान के अन्तर्गत (within the framework of the constitution) आश्वासन नहीं दे सकता और महात्मा गान्धी इस भूल में हैं कि वह दे सकता है।"❀

जे० एच० मॉर्गन के विचार

श्रीयुत जे० एच० मोर्गन ने यह सम्मति दी है कि गवर्नर-जनरल के स्वेच्छापूर्ण अधिकार शासन-विधान में संशोधन किये बिना बिनष्ट किये जा सकते हैं। मि० मोर्गन ने आस्ट्रेलिया के शासन-विधान के इतिहास से उदाहरण उद्धृत किये हैं और यह कहा है भारतीय शासन-विधान का संशोधन किये बिना ही संरक्षण दूर किये जा सकते हैं। वह यह कहते हैं कि भारत-

❀ भारत में वैधानिक संकट—लेखक रामनारायण 'यादवेन्दु' B. A. LL. B. विश्वमित्र (मासिक पत्र) कलकत्ता पृ० १२९-३० मई सन् १९३७ ई०

मंत्री की ओर से गवर्नर-जनरल के लिए इस आशय का एक साधारण संदेश (Despatch) कि गवर्नर-जनरल को अपने मत से कार्य मंत्रियों के परामर्श पर करना चाहिए। भारतीय शासन-विधान में संशोधन किये बिना संरक्षण दूर किये जा सकते हैं।†

गवर्नर के विशेषाधिकारों पर श्री राजगोपालाचार्य

श्री राजगोपालाचार्य ने अपने ५ अप्रैल १९३७ ई० के वक्तव्य में कहा है:—"जो कुछ हम चाहते हैं वह यह कि यदि गवर्नर यह कह सकते हैं कि हम हस्तक्षेप के अधिकारों का प्रयोग नहीं करेंगे, तो हमें पद-ग्रहण करना चाहिये। यदि गवर्नर को किसी मामले में यह अनुभव हो कि मंत्रि-मंडल ग़लत मार्ग पर है और इतने ग़लत मार्ग पर कि उसे हस्तक्षेप करना चाहिये, तो गवर्नर को व्यवस्थापिका परिषद् भंग कर देनी चाहिये अथवा मंत्रि-मंडल को पद-च्युत कर देना चाहिये। कहने का तात्पर्य यह है कि उसे प्रान्तीय शासन-क्षेत्र में यह समझ लेना चाहिये कि हस्तक्षेप का अर्थ है निर्वाचकों की अपील पर मंत्रि-मंडल का परिवर्तन। हम शासन-विधान का संशोधन नहीं चाहते और न कोई क़ानूनी (Contract) इक़रार चाहते हैं। हम तो एक वैधानिक प्रथा (Constitutional convention) प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। इन संरक्षणों में गवर्नरों को जिस स्वेच्छानुसार अधिकारों का प्रयोग करने का आदेश किया गया है, वह न्यायाधीश की स्वेच्छा (Judicial discretion) नहीं है, प्रत्युत राजनीतिक स्वेच्छा है, जिसे, सर तेजबहादुर सप्रू तथा दूसरा प्रत्येक वकील यह स्वीकार करता है कि वैधानिक

† देखिये श्री राजगोपालाचार्य का ५ अप्रैल १९३७ ई० का वक्तव्य।

प्रथा (Constitutional convention) द्वारा अवरुद्ध या मर्यादित किया जा सकता है।"

लार्ड लिनलिथगो के विचार

"ये कागजात (शासन-विधान और शासनादेश) निःस्सन्देह यह स्पष्ट कर देते हैं कि प्रान्तीय स्वराज्य के अंतर्गत, उन सब मामलों में जो मंत्रि-मंडल के कार्य-क्षेत्र के अंतर्गत हैं, जिनमें अल्प-संख्यक जातियों की स्थिति, सर्विस आदि सम्मिलित हैं, गवर्नर समान्यतया अपने अधिकारों के प्रयोग में अपने मंत्रियों के परामर्श से कार्य करेगा और वे मंत्री पार्लिमेंट के प्रति उत्तरदायी न होंगे; किन्तु वे प्रान्तीय व्यवस्थापिका परिषद् के प्रति उत्तरदायी होंगे। इस नियम के अपवाद कुछ विशेष नियत और स्पष्ट मामलों में हैं। इनमें से सबसे प्रमुख प्रान्त या उसके एक भाग की शान्ति व व्यवस्था के लिए खतरे का अवरोध, अल्प-संख्यक जातियों के वैध हितों का संरक्षण और सर्विस के सदस्यों व उनके आश्रितों को शासन-विधान द्वारा प्रदान किये हुए अधिकारों व उनके वैध हितों का संरक्षण हैं।……ये विशेष उत्तरदायित्व, जैसा कि मैने कहा है, यथा-संभव सीमित क्षेत्र में हैं। वे इतने सीमित हैं कि गवर्नर हर समय अपने मंत्रियों को साथ लेकर ही कार्य करेगा और मंत्रि-मंडल के उत्तरदायित्वों के दूसरे क्षेत्र में वह (सम्मति) आदेशात्मक (mendatory) होगी चाहे भले ही गवर्नर का यह विचार हो कि जिन परिस्थितियों में परामर्श दिया गया है वह परामर्श उचित नहीं है।……………

"मैने यह उल्लेख कर दिया है कि मंत्री गवर्नर को शासन (Executive) के समस्त क्षेत्र में परामर्श देने का अधिकार

रखते हैं। इसमें विशेष उत्तरदायित्व का क्षेत्र भी सम्मिलित है। मंत्री गवर्नर को जो परामर्श देंगे, चाहे वह उन मामलों पर दिया गया हो जो विशेष उत्तरदायित्व के कार्य-क्षेत्र के अन्तर्गत हों या बाहर, उसके लिए वे व्यवस्थापिका-परिषद् के प्रति उत्तरदायी होंगे। ऐसे समस्त मामलों में जिनमें उसे विशेष रूप से अपने आत्म-निर्णय (Individual Judgment) के प्रयोग की आवश्यकता नहीं है, यह गवर्नर के लिए आवश्यक है कि वह मंत्रियों के परामर्श को स्वीकार करे। अपने विशेष उत्तरदायित्वों के सीमित क्षेत्र के अन्दर गवर्नर प्रत्यक्षतः पार्लिमेंट के प्रति उत्तरदायी है, चाहे वह मंत्रियों के परामर्श को स्वीकार करे अथवा अस्वीकार।"❀

उपरोक्त विवेचन से यह सर्वथा स्पष्ट है कि गवर्नर अपने विशेषाधिकारों के प्रयोग के समय मंत्रियों के परामर्श को स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं है। कार्य-कारिणी के दो भागों का दो विभिन्न व्यवस्थापिका सभा के प्रति उत्तरदायी होना भी यह प्रमाणित करता है कि भारतीय-मंत्री की स्थिति बड़ी विकट है।

❀ Viceroy's message to India dated 22-6-37.

अध्याय ३
प्रान्तीय स्वराज्य

कार्यकारिणी (२)

मंत्रि-मंडल

मंत्रि-मंडल की वैधानिक स्थिति

नवीन शासन-विधान (१६३५) की धारा ५० के अनुसार मंत्रि-मंडल की क़ानूनी-स्थिति (Legal Status) स्वीकार की गयी है:—

(१) गवर्नर के कार्यों में सहायता और परामर्श देने के लिए एक मंत्रि-मंडल होगा।

(२) गवर्नर मंत्रि-मंडल के अधिवेशनों का अध्यक्ष होगा।

(३) यदि यह प्रश्न उत्पन्न हो कि किसी मामले में शासन-विधान के अन्तर्गत गवर्नर अपने आत्म-निर्णय या स्वेच्छा का प्रयोग कर सकता है या नहीं, तो गवर्नर का निर्णय अन्तिम होगा और इस आधार पर गवर्नर के किसी कार्य की उपयुक्तता (Validity) पर आपत्ति नहीं की जायगी कि गवर्नर को वह कार्य स्वेच्छा या आत्म-निर्णय से करना चाहिये था अथवा नहीं।

शासन-विधान की धारा ५१ के अनुसारः—

(१) गवर्नर मंत्रियों की नियुक्ति करेगा; उनको आमंत्रित करेगा; वे मंत्रि-मंडल के सदस्य की हैसियत से शपथ ग्रहण करेंगे। गवर्नर की इच्छानुसार वे मंत्रित्व-पद पर रहेंगे।

(२) जो मंत्री ६ मास तक प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा का सदस्य नहीं बनेगा वह ६ मास की अवधि समाप्त हो जाने पर मंत्री नहीं रहेगा।

(३) मंत्रियों के वेतन व्यवस्थापिका परिषद् द्वारा नियत होंगे। जब तक वह नियत नहीं करेगी, तब तक गवर्नर नियत करेगा। मंत्री का वेतन उसके कार्य-काल में घटाया या बढ़ाया न जायगा।

(४) मंत्री गवर्नर को जो सम्मति या परामर्श देंगे, उसकी जाँच किसी भी न्यायालय में नहीं की जायगी।

(५) इस धारा के अधीन मंत्रियों की नियुक्ति, आमंत्रण, पद-च्युति व वेतन के संबंध में गवर्नर जो कार्य करेगा, वह स्वेच्छा से करेगा।

मंत्रि-मंडल की नियुक्ति

"मंत्रि-मंडल की नियुक्ति करते समय गवर्नर निम्न लिखित ढंग से अपने मंत्रियों को चुनने के लिए सर्व-श्रेष्ठ प्रयत्न करेगा—अर्थात् उस व्यक्ति से परामर्श करके, जो उसकी सम्मति में व्यवस्थापिका-परिषद् (Legislature) में एक स्थायी बहुमत (Stable majority) पर नियंत्रण करने में अधिक योग्य होगा, उन व्यक्तियों (इनमें यथासंभव महत्व-पूर्ण अल्प-संख्यक जातियों के सदस्य सम्मिलित किये जायँगे) को नियुक्त करेगा जो सम्मिलित रूप में व्यवस्थापिका का विश्वास प्राप्त कर सकेंगे। ऐसा करते समय वह अपने मंत्रियों

में संयुक्त-उत्तरदायित्व की भावना को जागृत करने का प्रयत्न करेगा।"❀ ब्रिटेन में ब्रिटिश-मंत्रि-मंडल (Cabinet) और प्रधान-मंत्री (Prime Minister) समूचे विधान के स्तम्भ हैं; परंतु ब्रिटिश-विधान में इन दोनों की क़ानूनी स्थिति स्वीकृत नहीं की गई है; भारतीय शासन-विधान में मंत्रि-मंडल की क़ानूनी स्थिति स्वीकार की गई है। उसकी सत्ता और उसके कार्य का भी उल्लेख किया गया है। किन्तु शासन-विधान या शासनादेश-पत्र (Instrument of Instructions) में 'प्रधान-मंत्री, (Prime Miuister) शब्दों का प्रयोग नहीं किया गया है। इसमें सन्देह नहीं कि बहुत शीघ्र (Prime minister) का पद वैधानिक प्रथा द्वारा स्वीकृत हो जायगा। शासन-विधान और शासनादेश-पत्र के अध्ययन से यह सर्वथा स्पष्ट है कि गवर्नर को व्यवस्थापिका-परिषद् के बहुमत का मंत्रि-मंडल नियुक्त करनी चाहिये। बहुमत का नेता ऐसा व्यक्ति हो जो व्यवस्थापिका पर नियंत्रण रखता हो। यह भी स्पष्ट है कि गवर्नर को मंत्रि-मंडल की नियुक्ति करते समय महत्व-पूर्ण अल्प-संख्यक-जातियों, जैसे मुसलमान, ईसाई, पारसी, परिगणित जातियों में से भी मंत्री नियुक्त करने चाहिये।

अस्थायी मंत्रि-मंडल की नियुक्ति अवैधानिक है

मद्रास, बम्बई, मध्य-प्रान्त, संयुक्त प्रान्त विहार और उड़ीसा—इन ६ प्रान्तों में कांग्रेस का प्रबल बहुमत है और अब तो इनके अतिरिक्त सीमा-प्रान्त में भी कांग्रेसी-मंत्रि-मंडल शासन संचालन कर रहा है। गवर्नरों ने मार्च १९३७ में प्रान्तीय असेम्बली में कांग्रेसी दलों के नेताओं को

❀ Instrument of Instructions to Governors B. VII

आश्वासन नहीं दिया, तब कांग्रेसी नेताओं ने मंत्रि-मंडल निर्माण के लिए प्राप्त नियंत्रण को अस्वीकार कर दिया। कांग्रेस का बहुमत होने के कारण वही इसकी अधिकारिणी है। यह वास्तव में एक वैधानिक संकट है। जब बहुमत-दल मंत्रित्व को स्वीकार नहीं करता, तब गवर्नर क्या करे? मद्रास के गवर्नर ने अपने वक्तव्य में कहा—"सम्राट् की सरकार का संचालन करने के लिए अस्थायी मंत्रि-मंडल बनाया जायगा।"

अब विचार यह करना है कि इन ६ प्रान्तों ने अस्थायी मंत्रि-मंडलों की नियुक्ति 'सम्राट की सरकार के संचालन' के लिये किस आधार पर की? शासना-देश-पत्र के पैरा ७ में यह स्पष्ट लिखा है कि "मंत्रियों को उस व्यक्ति की सम्मति से चुनना चाहिये, जो उसके विचार में व्यवस्थापिका परिषद् में स्थायी बहुमत पर नियंत्रण करने की क्षमता रखता हो।" इसमें 'स्थायी बहुमत' (Stable majority) शब्दों पर अधिक विचार करना आवश्यक है। इनके पीछे लोक-तंत्र का सिद्धान्त छिपा हुआ है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि इन गवर्नरों ने तीन मास तक अस्थायी मंत्रि-मंडल द्वारा शासन-संचालन करके इस प्रमुख लोकतंत्रवादी सिद्धान्त की सर्वथा उपेक्षा की।

शासनादेश में यह स्पष्ट लिखा है कि गवर्नर धारा ७ के अनुसार मंत्रि-मंडल नियुक्त करने में सफल नहीं हो, तो क्या करे? कोई भी विधानवेत्ता ऐसा एक भी उदाहरण नहीं बतला सकता कि व्यवस्थापिका-परिषद् के बहुमत का विश्वास प्राप्त न करके केवल कुछेक व्यक्तियों या अल्पदल ने किसी भी देश में मंत्रि-मंडल बनाया हो। ब्रिटिश शासन-विधान के इतिहास में

ऐसे अनेकों उदाहरण पाये जाते हैं कि जिस समय 'क्राउन' ने पार्लिमेंट के किसी राजनीतिक दल के नेता को मंत्रि-मंडल-निर्माण के लिए निमंत्रण भेजा, उस समय वह बहुमत का नेता न था। ऐसा उसी समय किया जाता है जब उसे पार्लिमेंट के किसी दूसरे दल का विश्वास प्राप्त हो। ब्रिटेन में राष्ट्रीय-सरकार (National Government) इसी प्रकार का उदाहरण है। परंतु भारत के अस्थायी मंत्रि-मंडलों की मिश्रित-मंत्रि-मंडल (Coalition ministry) से तुलना करना व्यर्थ है।

सर सैय्यद वजीर-हसन का विचार

लखनऊ चीफ-कोर्ट के भूतपूर्व चीफ जस्टिस सर सय्यद वजीर हसन का यह मत है कि "इन प्रान्तों में प्रत्येक गवर्नर का अस्थायी मंत्रि-मंडल की नियुक्ति का कार्य ग़ैर-क़ानूनी, अवैध और विधान के विरुद्ध है।"

प्रोफेसर ए. वी. कीथ का मत

"अलबत्ता अल्प-मत मंत्रि-मंडल उस उत्तरदायी शासन का निषेध है जिसका तात्पर्य है उन मंत्रियों की सरकार जिन्हें व्यवस्थापिका परिषद् में बहुमत का समर्थन प्राप्त हो। उत्तरदायी शासन के स्वरूपों का शासन-विधान के विनाश पर आवरण डालने के लिए प्रयोग न करना चाहिये।"

ऐसी परिस्थिति में इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि नवीन शासन-विधान के अन्तर्गत ९३ वीं धारा के अनुसार यह घोषित कर देना—कि शासन-विफल रहा है—वैधानिक और क़ानूनी उपाय है। ❀

❀ देखिये लेखक का 'भारत में वैधानिक-संकट' लेख विश्वमित्र मई १९३७ पृ० ११२।

मंत्रियों के साथ गवर्नर के संबंध

कार्य-कारिणी के क्षेत्र में सब मामलों में गवर्नर मंत्रियों के परामर्श के अनुसार कार्य करेगा। यदि मंत्रियों के परामर्श के आधार पर कार्य करने से गवर्नर के किसी विशेष उत्तरदायित्व का पालन न हो सकेगा तो वह विशेषाधिकारों का प्रयोग करेगा। "किन्तु यदि गवर्नर अपने मंत्रियों के परामर्श को स्वीकार करने में अशक्त है, तो उसके निर्णय का उत्तरदायित्व केवल उसी का होगा; इस परिस्थिति में निर्णय के लिए मंत्री उत्तरदायी नहीं हैं और उन्हें यह अधिकार है—यदि वे चाहें तो—कि सार्वजनिक रूप से यह घोषणा कर दें कि वे इस विशेष निर्णय के लिए उत्तरदायी नहीं हैं या यह भी कि उन्होंने गवर्नर को विपरीत-भाव में परामर्श दिया है।"❀

"किन्तु प्रत्येक गवर्नर अपने मंत्रि-मंडल की सहायता या समर्थन प्राप्त करने के लिए यत्नशील रहेगा या यह जानने के लिए प्रयत्नशील रहेगा कि वह उस समय अपने मंत्रि-मंडल के साथ मामूली मतभेद नहीं रखता, जिस समय वह उसके समर्थन के बिना या उसके परामर्श के विरुद्ध विशेष उत्तरदायित्व का पालन करता है। ऐसी दशा में जैसा कि मेरा विचार है (जिस विचार को मैं आगे प्रकट करूँगा, उस विचार से भारत में प्रत्येक गवर्नर और भारत-मंत्री सहमत हैं)······ वह उसे (मंत्री को) उन कारणों को बतलायगा जिनसे उसकी राय में उसके लिए यह आवश्यक है कि किसी विशेष मार्ग का ग्रहण करे या कोई विशेषाज्ञा जारी करे। दूसरे पक्ष द्वारा

❀ देखिये भारत के वायसराय लार्ड लिनलिथगो का 'भारत को संदेश' २२ जून १९३७ ई०।

जो तर्क उसके सामने रखी जायँगी उन पर वह निष्पक्षता से विचार करेगा; यदि वह उन तर्कों को समुचित मानता है तो वह अपने प्रस्ताव को जहाँ तक उचित होगा वहाँ तक बदल देगा। और यदि वह उन तर्कों को उचित नहीं समझता तो वह अन्तिम निर्णय करने से पहले अपने मंत्री या मंत्रि-मंडल को अपने उन कारणों की उपयुक्तता और सार्थकता समझाने की चेष्टा करेगा जिनके कारण वह उसकी विचार धारा को स्वीकार करने में असमर्थ है।......"

पदच्युति या पद-त्याग

यदि उपरोक्त रीति से कार्य करने पर भी मंत्रि-मंडल या मंत्री और गवर्नर के विचार में मतभेद रहे और गवर्नर अपने विशेष उत्तरदायित्व की पूर्ति के लिये अपने ही विचार पर दृढ़ रहे—मंत्रि-मंडल के विचार को ग्रहण न करे—तो क्या मंत्रि-मंडल को जनता में अपने विचार की घोषणा करके शान्त हो जाना चाहिए अथवा कोई और भी साधन है जिससे वह विरोध प्रकट कर सकता है।

यदि प्रश्न साधारण और अत्यन्त महत्व का न हो तो मंत्रि-मंडल को इन उपायों का अवलम्बन करने की आवश्यकता ही नहीं होगी। परन्तु यदि प्रश्न, जिसपर मंत्रि-मंडल और गवर्नर में मत भेद है, अत्यन्त महत्वपूर्ण है और मंत्रि-मंडल यह अनुभव करे कि गवर्नर द्वारा उसकी राय की उपेक्षा से उसकी स्थिति संकट में पड़ जायगी, तो ऐसी दशा में मंत्रि-मंडल के सामने दो ही मार्ग हैं—या तो वह स्वयं पदत्याग कर दे या गवर्नर उसे पदच्युत कर दे।

लार्ड लिनलिथगो ने इस संबंध में लिखा है:—

"पदत्याग और पदच्युति दोनों ही संभव हैं; पहला साधन तो मंत्रि-मंडल की इच्छा पर निर्भर है और दूसरा गवर्नर की इच्छा पर।" भारत के वायसराय लार्ड लिन्‌लिथगो ने यह स्पष्ट कर दिया है कि गवर्नर दैनिक शासन-प्रबंध में हस्तक्षेप नहीं कर सकेगा। वह अपने विशेष उत्तरदायित्वों के क्षेत्र से बाहर अपने विशेषाधिकारों का प्रयोग नहीं करेगा।"

मंत्रि-मंडल

जुलाई सन् १९३७ में भारत के उस वैधानिक संकट का अन्त हो गया जिसके कारण देश में हलचल मच गयी थी और ब्रिटिश एवं भारतीय राजनीतिज्ञ बड़े चिंतित थे। कांग्रेस ने मंत्री-पद-ग्रहण करना स्वीकार कर लिया। अतः मद्रास, बम्बई, संयुक्तप्रान्त, मध्य-प्रान्त, बिहार और उड़ीसा में कांग्रेस मंत्रि-मंडलों की स्थापना हो गयी। कुछ मास के बाद सीमाप्रान्त में भी कांग्रेसी सरकार की स्थापना हो गयी। इस प्रकार कुल ११ प्रांतों में से ७ प्रान्तों में कांग्रेसी मंत्रि-मंडल प्रान्तीय शासन का संचालन कर रहे हैं। शेष ५ प्रान्तों में गैर-कांग्रेसी मंत्रि-मंडल शासन-संचालन कर रहे हैं। प्रत्येक प्रान्त के मंत्रि-मंडल के सदस्यों की संख्या और वेतन समान नहीं हैं। बंगाल में ११ मंत्री मद्रास में १० और बम्बई में ६ मंत्री हैं। बिहार, उड़ीसा, सिन्ध और सीमाप्रान्त में ३ से ४ तक मंत्री हैं; संयुक्त-प्रान्त और मध्यप्रान्त में ६-६ मंत्री हैं। इन मंत्रियों के अधीन इनके कार्यों में सहायता देने के लिए व्यवस्थापिका के सदस्यों में से पार्लिमैंटरी सेक्रेटरी नियुक्त किये गये हैं। प्रत्येक प्रान्त में एक-एक प्रधान-मंत्री नियुक्त किया गया है।

प्रत्येक प्रजातंत्र-वादी राज्य में शासन-संचालन राजनीतिक-दल-प्रणाली पर किया जाता है। ब्रिटेन में

राजनीतिक-दल

त्रिदल-प्रणाली प्रचलित है। वहाँ अनुदार-दल (Conservative Party) उदार-दल (Liberal Party), मज़दूर-दल (Labour Party) सबसे प्रमुख हैं। इन दलों का संगठन वर्ग विशेष के आधार पर नहीं है। किन्तु राजनीतिक आदर्शों, ध्येयों और सिद्धान्तों के आधार पर इनका निर्माण हुआ है। संयुक्त राज्य-अमेरिका में भी 'रिप्बलीकन' और 'डेमोक्रेट' ये दो दल हैं। ये राजनीतिक-दल शासन-यंत्र की प्रेरक-शक्ति हैं; इनके समुचित संगठन के अभाव में सरकार शक्तिशाली और सुव्यवस्थित नहीं हो सकती।

भारत में आज पर्यन्त सिद्धान्तों के आधार पर राजनीतिक दलों का निर्माण ही नहीं हुआ। इस संबंध में कांग्रेस-दल अपवाद है। कांग्रेस अपने उच्च ध्येय और आदर्श के कारण किसी वर्ग विशेष का प्रतिनिधि नहीं—समस्त भारत की प्रतिनिधि है; अतः उसे संकुचित अर्थ में दल मानना उचित न होगा। सन् १६२३ में स्वर्गीय चित्तरंजनदास तथा स्वर्गीय पं० मोतीलाल नेहरू ने स्वराज्य-दल की स्थापना की। इसके बाद देश में राजनीतिक दलों का विकास होने लगा। इसे सभी ने मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है कि कांग्रेस-दल भारतवर्ष में सबसे अधिक शक्तिशाली दल है। इसका संगठन सर्वश्रेष्ठ और नीति व ध्येय लोकप्रिय हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि यह दल जनता के सम्पर्क में इतना अधिक आगया है कि एक साधारण किसान या मज़दूर भी इससे भली भाँति परिचित है। इस दल की शक्ति का स्रोत जनता की अटूट श्रद्धा और विश्वास है। मुस्लिम लीग, जिसके कर्णधार श्री मुहम्मदअली जिन्ना हैं, कांग्रेस के बाद दूसरी

पार्टी है। परंतु इसका निर्माण जातीय आधार पर हुआ है—राजनीतिक सिद्धान्तों के आधार पर नहीं। जनता से इसका सम्पर्क भी नहीं है। विगत प्रान्तीय चुनावों में कांग्रेस-दल ने लीग को बुरी तरह हराया था।❀

पंजाब, बिहार, मध्यप्रान्त, सीमाप्रान्त, उड़ीसा और सिन्ध की प्रान्तीय व्यवस्थापिका असेम्बली में लीग का एक भी सदस्य

❀ विगत प्रान्तीय निर्वाचन (१९३७) के बाद मार्च १९३७ में विविधि प्रान्तीय असेम्बलियों में इन दोनों दलों की शक्ति कितनी थी, इसका अनुमान निम्नलिखित अंकों से लग जायगा। जब से कांग्रेस-दल ने पद-ग्रहण किया है तब से कांग्रेस-दल की संख्या पहले से अधिक बढ़ गयी है। कारण कि मुस्लिम लीग के अनेकों सदस्यों ने लीग से त्याग-पत्र देकर कांग्रेस-प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये हैं:—

नाम प्रान्त	कुल संख्या	कांग्रेस-दल	मुस्लिम लीग	यूनीयनिस्ट	प्रजा-दल
१—मद्रास	२१५	१५९	८	...	...
२—बम्बई	१७५	८८	२०	...	...
३—बंगाल	२५०	५१	५०	...	३५
४—संयुक्त-प्रान्त	२२८	१३३	२७	...	...
५—पंजाब	१७५	१८	१	९९	...
६—बिहार	१५२	९५	...	...	...
७—मध्यप्रान्त	११२	७१	...	...	...
८—आसाम	१०८	३५	९	...	१
९—सीमा-प्रान्त	५०	१९	...	...	...
१०—उड़ीसा	६०	३६	...	...	...
११—सिन्ध	६०	७	...	...	...

नहीं है। बंगाल में मुसलिम लीग के ५० सदस्य हैं। प्रजा-दल जिसके नेता मि० फजलुलहक़ जो बंगाल के प्रीमियर हैं, बंगाल तक ही सीमित है। बंगाल में मुसलिम-लीग के नेता की हार के कारण प्रजा-दल और मुसलिग-लीग दोनों सम्मिलित हो गये और उसका नेता मि० हक़ को चुन लिया गया। यूनीयनिस्ट-दल (Unionist Party) केवल पंजाब तक ही सीमित है।' पंजाब में आजकल इसी दल की सरकार है। सर सिकन्द हयात ख़ाँ इस दल के नेता होने के कारण 'प्रीमियर' हैं। काँग्रेस-दल के सिवा अन्य सब दल साम्प्रदायिक आधार पर बने हैं। सच तो यह है कि 'साम्प्रदायिक निर्णय' ने भारत में साम्प्रदायिक ढंग से बटवारा कर राजनीतिक-दलों के विकास के मार्ग में बाधा डाल दी है।

साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की प्रणाली ने मंत्रि-मंडल के लिए बड़ी कठिनाई उत्पन्न कर दी है। शासनादेश-पत्र में गवर्नर के लिए यह आदेश किया गया है कि वह मंत्रि-मंडल में यथा-संभव महत्वपूर्ण अल्प-संख्यक जातियों को भी सम्मिलित करेगा। इस प्रकार 'प्रान्तीय स्वराज्य' के अन्तर्गत मंत्रि-मंडल केवल एक बहुमत दल (Single majority party) का प्रतिनिधि न होगा किन्तु वह विविध दलों का प्रतिनिधि होगा। पार्लिमेंटरी शासन-पद्धति के अनुसार मंत्रि-मंडल को कभी-कभी व्यवस्थापिका सभा भंग कर देनी पड़ती है और फिर साधारण निर्वाचन होता है। परन्तु साम्प्रदायिक-निर्वाचन-प्रणाली के अन्तर्गत व्यवस्था-पिका-सभा का भंग करना कोई प्रभावशाली अस्त्र नहीं रह जाता। व्यवस्थापिका जैसी पहले थी वैसी ही भंग के बाद साधारण चुनाव होने पर होगी। उसमें कोई विशेष अन्तर नहीं होगा।

मंत्रि-मंडल और सरकारी कर्मचारी

व्हीलर कमेटी की सिफ़ारिश—अक्टूबर। सन् १६३५ में भारत-सरकार ने केन्द्रिय सेक्रट्रियेट (Central Secretriate) के पुनसंगठन पर विचार करने के लिए एक कमेटी नियुक्त की जिसके अध्यक्ष सर हेनरी व्हीलर, सर सी. पी रमा स्वामी अय्यर तथा सर जेम्स राव सदस्य नियुक्त किये गये थे। इस कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में यह सिद्धान्त स्वीकार किया है कि:—

"मंत्रियों (Ministers) का कार्य नीति निर्धारित करना है और जब एक बार नीति निर्धारित हो जाय तो सरकारी कर्मचारियों (Civil Servants) का यह निःसंदेह कार्य है कि वे उस नीति के अनुसार कार्य करें; फिर चाहें वे उससे सहमत हों या न हों।"

अब तक ब्रिटिश-भारत में केन्द्र और प्रान्तों में जिस नीति का पालन किया गया है उसका परिमाण यह निकला कि मंत्रियों और सरकारी-कर्मचारियों में परस्पर सम्पर्क अच्छा नहीं रहा। इसका कारण यह हो सकता है कि प्रान्तों में अनुत्तरदायी शासन था और सरकारी कर्मचारी अपने को ब्रिटिश-गवर्नमैंट के एजेंट समझते थे और अब भी यह भावना उनके हृदय में छिपी हुई है।

उत्तरदायी शासन (Responsible Government) की एक विशेषता यह है कि सरकारी-कर्मचारी अपने को शासन (Government) का अंग नहीं समझते; वे किसी भी राजनीतिक-दल से सम्पर्क नहीं रखते। उनका कार्य है सरकार की नीति के अनुसार कार्य करना। वह सरकार चाहे किसी भी दल की क्यों न हो। सरकारी कर्मचारियों का कार्य है

अपनी सरकार की नीति के अनुसार श्रद्धापूर्वक शासन-प्रबंध करना। संयुक्त-प्रान्त के गवर्नर सर हेरी हेग ने संयुक्त-प्रान्तीय लेजिस्लेटिव असेम्बली और कौंसिल के संयुक्त-अधिवेशन में भाषण करते हुए सरकार और सरकारी कर्मचारियों के पारस्परिक संबंधों पर जो प्रकाश डाला है, वह ब्रिटिश-नीति की मनोवृत्ति में परिवर्तन का सूचक है। सर हेरीहेग ने कहाः—

"सरकार नीति का निर्माण करती है और कर्मचारी उसके अनुसार कार्य करते हैं। यह सामान्यतया स्वीकार किया गया है कि देश का संतोषजनक शासन-प्रबंध 'पबलिक सर्विस' के श्रद्धा-मय कार्य पर निर्भर है; उनके कार्यों का निर्देशन सरकार द्वारा किया जाता है। किन्तु सरकार अपनी इच्छा को प्रभाव-पूर्ण या प्रजा के हित के निमित्त योजनाओं को केवल 'पबलिक सर्विस' के महान् प्रबंध-संबंधी संगठन द्वारा कार्य रूप में परिणत कर सकती है। जिनके हाथों में आज राजनीतिक सत्ता है उनमें और 'सर्विस' सदस्यों में विगत नीति और दशाओं के कारण सम्पर्क बहुत कम रहा है। किन्तु अब नवीन संबंध स्थापित हो जाने के कारण इसमें संदेह नहीं कि 'पबलिक सर्विस' के सदस्य पूर्ण राजभक्ति के साथ नवीन शासन-प्रबंध में सहायता देने की इच्छा से, अपने कर्त्तव्यों का पालन करेंगे। यह स्वाभाविक है कि प्रजातंत्र-पद्धति के सहसा विस्तार से सब प्रकार के ग़ैर-सरकारी कार्यों को बहुत बड़ा प्रोत्साहन मिलेगा—बड़ी शक्ति मिलेगी। और अनेकों दिशाओं में ग़ैर-सरकारी कार्य-कर्त्ता पूर्व की अपेक्षा सरकारी कर्मचारियों के अधिक निकट सम्पर्क में आयेंगे। मैं 'पबलिक सर्विस'—सरकारी कर्मचारियों—की एक दूसरी विशिष्टता का उल्लेख करूँगा और वह है उनका प्रत्येक दल के साथ निष्पक्षता की भावना। वे प्रान्त के कर्मचारी हैं और वे दल-

बन्दी के दल-दल से परे हैं। सर्विस के सदस्यों को किसी राजनीतिक दल के साथ मिलकर अपने अस्तित्त्व को न खो देना चाहिये, और न उन्हें किसी दल के प्रति शत्रुता या अविश्वास का रुख अख्त्यार करना चाहिये। उनका कार्य तो यह है कि वे सच्चाई, ईमानदारी और कार्य कुशलता के साथ अपने कर्त्तव्यों का पालन करें और जनता यह अनुभव करने लगे कि वह उनसे निष्पक्ष और समुचित व्यवहार की आशा कर सकती है।❀

मंत्री और उनके वेतन

जब से कांग्रेस ने प्रान्तों में मंत्रित्व-पद ग्रहण किया है तब से इस दिशा में बहुत अधिक सुधार हुआ है। १ अप्रेल १९३७ से पूर्व प्रान्तों में मंत्री को कम से कम ३००० और अधिक से अधिक ५३३३ रुपये प्रति-मास वेतन मिलता था। इसके अतिरिक्त मोटर-कार और निवास-स्थान के लिए भत्ता अलग मिलता था।

कांग्रेस ने करांची-अधिवेशन में यह प्रस्ताव स्वीकार किया कि "सरकारी विभागों के वेतन और खर्च कम कर दिये जायँगें; विशेषज्ञ को छोड़ सरकार के किसी भी कर्मचारी को ५०० रुपये मासिक से अधिक वेतन नहीं दिया जायगा।" सातों कांग्रेसी मंत्रि-मंडलों ने इस करांची-प्रस्ताव के अनुसार प्रत्येक मंत्री (जिसमें प्रधान-मंत्री भी सम्मलित हैं) का मासिक वेतन ५००) रुपये नियत किया है। कांग्रेस के राष्ट्रपति पं० जवाहरलाल नेहरू ने अपने एक वक्तव्य में कहा है कि 'यह ध्यान रखना चाहिये कि ५००) रुपये मासिक अधिक से अधिक वेतन

❀ देखिये सर हेरी हेग का भाषण—'लीडर' ११—१—३७

(Maximum Salary) है। परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि मंत्री या दूसरे उच्च कर्मचारी अधिक से अधिक (Maximum) वेतन प्राप्त करें। कांग्रेस प्रस्ताव के पीछे दो सिद्धान्त हैं:—

(१) वेतन देश की गरीबी के अनुकूल होने चाहिये। इसलिए वे कार्य-कुशलता के अनुसार कम से कम होने चाहिये।

(२) वेतन किसी व्यक्ति के पद की मर्यादा और महत्व का द्योतक न होना चाहिये; परंतु उसका आधार आवश्यकता हो।"※

प्रथम सिद्धान्त को जनता और नेता अनुभव करने लगे हैं और दूसरे सिद्धान्त को अभी तक लोगों ने नहीं समझा। पं० जवाहरलाल नेहरू समाजवादी हैं। इसलिए उन्होंने समाजवाद के इस सिद्धान्त को वेतन के संबंध में स्थिर करने के लिए जोर दिया है। समाजवाद का यह सिद्धान्त है कि राज्य के प्रत्येक नागरिक को अपनी क्षमता के अनुसार राज्य को देना चाहिये और अपनी आवश्यकतानुसार राज्य से प्राप्त करना चाहिये। इसी सिद्धान्त के आधार पर नेहरू जी यह चाहते हैं कि कम या अधिक राज्य के समस्त कर्मचारियों को समान वेतन मिलना चाहिये। यदि कोई केवल मंत्री (Minister) है, इसलिए अपने पार्लिमैंटरी सेक्रेटरी से अधिक वेतन पाता है, तो यह उनके सिद्धान्त के विरुद्ध है।

कांग्रेसी प्रान्तों को छोड़कर अन्य प्रान्तों में वेतन अधिक से अधिक ३,००) और कम से कम २०००) दो हज़ार मासिक

※ पं० जवाहरलाल नेहरू का वक्तव्य 'हिन्दुस्तान टाइम्स' देहली २७ जुलाई १९३७।

मन्त्रियों (Ministers) के लिये नियत किया गया है। यह भारत की स्थिति के अनुकूल नहीं है।

प्रत्येक देश में वेतन देश की राष्ट्रीय आय और सरकार की आय पर निर्भर होता है। परंतु इस भारत देश में अत्यन्त ग़रीबी के होने पर भी मंत्रियों और अन्य कर्मचारियों को वेतन संसार के सबसे अधिक ऐश्वर्यशाली और धनी देशों के कर्मचारियों से अधिक मिलता है। हम यहाँ दूसरे देशों के कुछ तुलनात्मक अंक देते हैं, जिनसे यह ज्ञात हो जायगा कि भारत में वेतनों में राष्ट्र की कितनी सम्पत्ति स्वाहा की जाती है। जापान की प्रति व्यक्ति (per capita) औसत आय १८४) रुपये वार्षिक और भारत की प्रति व्यक्ति औसत आय ८०) रुपये वार्षिक है।

भारत

नाम प्रान्त	रुपयों में गवर्नर का वेतन	रुपयों में गवर्नर का भत्ता	रुपयों में मंत्री का भत्ता
मद्रास	१२००००	५७५५००	५००
बम्बई	,,	५३८४००	५००
बंगाल	,,	६०६१००	३०००
यू० पी०	,,	३३२३३०	५००
पंजाब	१०००००	१४१२००	३०००
बिहार	,,	१०८२००	५००
सी० पी०	७२०००	१०७३००	५००
आसाम	६६०००	१४२१००	३०००
सीमा प्रान्त	,,	११२८५०	५००
उड़ीसा	,,	१२६८००	५००
सिन्ध	,,	१०३०००	२०००

जापान में प्रधान-मंत्री को ६२२ रु० प्रति मास मिलते हैं। संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका संसार के धनी और ऐश्वर्यशाली देशों में शिरोमणि माना जाता है। अमेरिका के प्रति व्यक्ति की औसत आमदनी ६७६ डालर अर्थात् १८४५) रुपये है। यह आमदनी हिन्दुस्तान की आय से २३ गुना है। इसलिए यदि राष्ट्रीय आय के अनुसार वेतन नियत किया जाय तो भारत में कर्मचारियों का वेतन अमेरिका के कर्मचारियों के वेतन का १/२३ भाग होना चाहिये। अमेरिका जन-संख्या की दृष्टि से भारत से छोटा है; सन् १९३६—३७ में भारत-सरकार के वजट की आमदनी १,२२,७३,४१००० रुपये अनुमान की गयी थी और सन् १९३५—३६ में अमेरिका की वास्तविक आमदनी ११,२३,१५,६१,५५९ रुपये थी। इस प्रकार अमेरिकन सरकार की आय भारत सरकार से ९ गुनी है।

ऐसी स्थिति में भी संयुक्त-राष्ट्र-अमेरिका (U. S. A.) के अध्यक्ष का वेतन १७०६२) रुपये मासिक है और भारत का गवर्नर-जनरल २१३३३) रुपये प्रति-मास वेतन पाता है। यद्यपि प्रेसीडेंट का पद और मर्यादा भारत के वायसराय के पद और मर्यादा से अधिक महत्वपूर्ण है। यह वास्तव में बड़ी विचित्र बात है कि जिस भारत देश के प्रति-व्यक्ति की आमदनी ८०) रुपये मासिक है, जो अमेरिका के प्रति व्यक्ति की आमदनी का १/२३ भाग है और जिसकी सरकार की आय अमेरिका की सरकार का १/९ भाग है, उसके उच्च कर्मचारियों का अनुपात से इतना अधिक वेतन ब्रिटिश साम्राज्यवाद की आर्थिक शोषण की नीति का द्योतक है। भारत में वायसराय की कार्यकारिणी सभा के सदस्य का वेतन ६६६७) रुपये

मासिक और अमेरिकन प्रेसीडेंट के मंत्रि-मंडल के सदस्य का वेतन ३४१२) रुपये मासिक है। न्यूयार्क स्टेट के गवर्नर को ५६८७) रुपये मासिक वेतन मिलता है और भारत में मध्य-प्रान्त (जो जन-संख्या में न्यूयार्क स्टेट के बराबर है) के गवर्नर को ६०००) प्रति मास वेतन मिलता है। बंगाल के चीफ जस्टिस को ६०००) मासिक वेतन मिलता है, संयुक्त राष्ट्र-अमेरिका के चीफ जस्टिस को ४५०) रुपये मासिक वेतन मिलता है।

इङ्गलैंड में प्रति व्यक्ति की औसत आमदनी ६३ पौंड अर्थात् १२४०) रुपये है। यह भारत की प्रति व्यक्ति-आमदनी से १५ गुना से भी अधिक है। आज-कल, जब कि ब्रिटिश-मंत्रियों का वेतन बढ़ा दिया गया है, ब्रिटिश प्रधान-मंत्री को ११११२) रुपये मासिक वेतन मिलता है। यह वेतन वायसराय के वेतन से १०२२२) कम है। अर्थात् वायसराय को प्रधान-मंत्री से ६१% प्रतिशत वेतन अधिक मिलता है।

मंत्रियों का उत्तरदायित्व

भारत के प्रान्तों में प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना हो जाने के बाद मंत्रियों का प्रान्तीय व्यवस्थापिका परिषद् के प्रति उत्तरदायी होना स्वाभाविक परिणाम है। प्रान्तीय कार्य-कारिणी दो भागों में बाँट दी गयी है; एक भाग गवर्नर के अधीन है; गवर्नर अपने विशेष उत्तरदायित्वों का पालन करने के लिए अपने विशेषाधिकारों का प्रयोग करेगा और वह अपने कार्यों के लिए जो उसे इन उत्तरदायित्वों के पूरा करने के लिए करने होंगे, भारत-मंत्री और उसके द्वारा पार्लिमेंट के प्रति उत्तरदायी होगा। कार्य-कारिणी का दूसरा भाग मंत्रियों के अधीन है और वे अपने कार्यों के लिए, पार्लिमेंट नहीं, व्यवस्थापिका परिषद् के प्रति उत्तरदायी हैं।

कांग्रेसी-मंत्रियों के उत्तरदायित्व के संबंध में महात्मा गान्धी और राष्ट्रपति पं० जवाहरलाल नेहरू के दृष्टि-कोण पर भी यहाँ विचार कर लेना अप्रासंगिक न होगा। कांग्रेस के पद-ग्रहण के बाद महात्मा गान्धीजी ने अपने एक लेख में लिखा कि—"पहले मंत्री सरकार के नियंत्रण के प्रति उत्तरदायी थे; अब वे कांग्रेस के नियंत्रण में हैं। वे कांग्रेस के प्रति उत्तरदायी हैं।.....गवर्नर और सरकारी कर्मचारी, यद्यपि उनके द्वारा अपने पदों से हटाये नहीं जा सकते, तथापि मंत्रियों के प्रति उत्तरदायी हैं। एक विशेष सीमा तक मंत्रियों का उन पर प्रभाव-पूर्ण नियंत्रण है।"❀

महात्मा गान्धी के विचार

पं० जवाहरलाल नेहरू ने अपने एक वक्तव्य में कहा है कि "यह बिल्कुल स्पष्ट है कि कांग्रेसी मंत्रियों को कांग्रेस के सिद्धान्तों का अनुसरण करना पड़ेगा और कांग्रेस या अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटी या कार्य समिति द्वारा प्रचलित किये गये आदेशों का पालन करना पड़ेगा। यह भी स्पष्ट है कि न तो यह संभव है और न बांछनीय कि मंत्रियों के दैनिक कार्यों में हस्तक्षेप किया जाय।... वे अपने निर्वाचकों के प्रति, व्यवस्थापिका परिषद् में कांग्रेस-पार्टी के प्रति, प्रान्तीय व अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी, प्रान्तीय व अखिल भारतीय कांग्रेस कार्य-समिति के प्रति उत्तरदायी हैं।"†

पं० जवाहरलाल नेहरू के विचार

❀ Mahatama Gandhi's article "Fundamental Difference" Harijan 24 July 1937.

† Pt. Jawahar Lal Nehru's Statement 7 Nov. 1937 Hindustan Times, Delhi.

प्रत्येक प्रजातंत्र राष्ट्र में और विशेष रूप से उन राष्ट्रों में जहाँ पार्लिमैंटरी शासन-प्रणाली प्रचलित है, व्यवस्थापिका परिषद्‌ को सर्वोपरि सर्व-शक्तिमती और सर्वाधिकारी शासन-संस्था माना जाता है। ब्रिटेन में पार्लिमैंट सर्व शक्तिमती संस्था है। यद्यपि पार्लिमैंटरी शासन-प्रणाली के अन्तर्गत बहुमत-दल की सरकार होती है; परंतु वह सरकार केवल अपने दल के प्रति उत्तरदायी नहीं होती प्रत्युत समस्त राष्ट्र की सरकार होने के कारण वह व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी रहती है। यदि सरकार केवल अपनी पार्टी के प्रति उत्तरदायी रहे और अपनी पार्टी के अतिरिक्त और दूसरे अल्पमत दलों के प्रति अनुत्तरदायी रहे तो सच्चे अर्थों में वह राष्ट्र के प्रति उत्तरदायी नहीं कही जा सकती। इस प्रकार यह सिद्धान्त प्रजातंत्र-वाद की भावना के अनुकूल नहीं है।

महात्मा गान्धी और राष्ट्रपति पं० जवाहरलाल नेहरू ने अपने वक्तव्य और लेखों में यह कहीं भी नहीं कहा है कि कांग्रेस मंत्रि-मंडल व्यवस्थापिका परिषदों के प्रति उत्तरदायी होंगे। मंत्रि-मंडल के उत्तरदायित्व की यह व्याख्या प्रजातंत्र-भावना के विरुद्ध है।

श्रीयुत के टी० शाह ने अपनी पुस्तक में लिखा है "यदि मंत्री – देश में राजनीतिक लोकमत के नायक — देश के शासन में वास्तव में लोक-भावना को प्रतिफलित करना चाहते हैं तो उन्हें दो उत्तरदायित्वों का पालन करना पड़ेगा; निकट में तो व्यवस्थापिका और गवर्नर के प्रति वैधानिक उत्तरदायित्व और यथार्थ, अन्तिम, राजनीतिक उत्तरदायित्व जनता के प्रति।"❀

❀ Provincial Autonomy By K. T. Shah. p. 150 (1937).

अध्याय ४

प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा

अब तक भारत की प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाएँ एक चेम्बर की थीं। परन्तु नवीन शासन-विधान (१६३५) के अनुसार ६ प्रान्तों में दो चेम्बरों की स्थापना हो गयी है। शासन-विधान की धारा ६० में लिखा है :—

"(१) प्रत्येक प्रान्त में एक प्रान्तीय व्यवस्थापिका-सभा होगी जिसमें सम्राट का प्रतिनिधि गवर्नर, और—

(i) मद्रास, बम्बई, बंगाल, संयुक्त-प्रान्त, बिहार और आसाम में दो चेम्बर।

(ii) अन्य प्रान्तों में एक चेम्बर होंगे।

(२) जिन प्रान्तों में दो चेम्बर होंगे वे क्रमशः व्यवस्थापिका-सभा (Legislative Council) और व्यवस्थापिका-परिषद् (Legislative Assembly) के नाम से प्रसिद्ध होंगे और जहाँ केवल एक चेम्बर होगा वहाँ वह व्यवस्थापिका-परिषद् नाम से प्रसिद्ध होगा।"❀

❀ आगे हम लेजिस्लेटिव कौंसिल को केवल 'कौंसिल' और लेजिस्लेटिव असेम्बली को 'असेम्बली' नाम से सम्बोधन करेंगे।

—लेखक।

इस विधान ने एक सर्वथा नूतन परिवर्तन किया है। वह यह कि इससे पूर्व सम्राट का भारतीय-शासन से इतना प्रत्यक्ष सम्पर्क नहीं था जितना कि अब है। यह वास्तव में एक ऐसी व्यवस्था है जिसका व्यवस्थापिका-सभा पर प्रभाव पड़ेगा।

व्यवस्थापिका-सभा का संगठन

(१) प्रान्तीय व्यवस्थापिका-सभा का संगठन शासन-विधान की पाँचवीं परिशिष्ट के अनुसार होगा।

(२) प्रत्येक प्रान्तीय असेम्बली, यदि पहले ही भंग न कर दी गयी, तो अपने प्रथम अधिवेशन की तिथि से पाँच वर्ष तक कार्य करेगी। पाँच वर्ष समाप्त हो जाने पर असेम्बली स्वयं भंग हो जायगी।

(३) प्रत्येक कौंसिल स्थायी संस्था होगी। उसका कभी भंग नहीं होगा। किन्तु पाँचवीं परिशिष्ट में दिये हुए नियमानुसार कौंसिल के एक तिहाई सदस्य प्रति तीसरे वर्ष अवकाश ग्रहण करेंगे। – धारा ६१.

शासन-विधान में यह स्पष्ट रूप से उल्लेख है कि असेम्बली का कार्य-काल केवल पाँच वर्ष तक है। गवर्नर को भी यह अधिकार नहीं है कि वह उसका जीवन-काल बढ़ा सके। दूसरी ओर कौंसिल (अपर चेम्बर) स्थायी संस्था बना दी गई है।

द्वितीय चेम्बर

श्वेत-पत्र (White Paper) का यह प्रस्ताव था कि केवल बंगाल, संयुक्त प्रान्त और बिहार में द्वितीय चेम्बर की स्थापना की जाय; संयुक्त कमेटी ने यह सिफ़ारिश की कि इनके साथ-साथ बम्बई और मद्रास में भी द्वितीय चेम्बर की स्थापना की जाय। पार्लि-

मैंट ने शासन-विधान एक्ट को पास करते समय इस सूची में आसाम को भी जोड़ दिया। श्वेत-पत्र का यह प्रस्ताव था कि प्रान्तीय व्यवस्थापिका (Bi-cameral Legislature) को यह अधिकार दे दिया जाय कि दस साल के बाद वह अपनी लेजिस्लेटिव कौंसिल को नष्ट कर सके और प्रान्तीय असेम्बली 'क्राउन' के समक्ष इस प्रकार का प्रस्ताव कर सके कि प्रान्त में कौंसिल की स्थापना की जाय। संयुक्त-कमेटी ने श्वेत-पत्र के इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया और यह सिफारिश की कि प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा को प्रान्त में कौंसिल के विनाश या स्थापना का अधिकार नहीं दिया जाय किन्तु उसे यह विशेष-अधिकार दिया जाय कि वह गवर्नर के पास उपरोक्त आशय का प्रस्ताव इसलिए भेजे कि उसे वह पार्लिमैंट के पास भेज दे।

सर तेजबहादुर सप्रू ने संयुक्त-कमेटी के सामने अपने आवेदन-पत्र में द्वितीय चेम्बर का विरोध किया। सायमन-कमीशन ने भी द्वितीय चेम्बर का विरोध किया। सायमन-कमीसन ने भी द्वितीय चेम्बर की स्थापना के लिए सिफ़ारिश नहीं की थी। प्रान्तीय सरकारों में से ५ सरकारें द्वितीय चेम्बर की स्थापना की विरोधिनी थीं।

सर तेजबहादुर सप्रू की सम्मति

सर तेजबहादुर सप्रू का कथन है कि "यह पूर्णतः सत्य है कि जहाँ प्रमुख जमींदार हैं, वहाँ द्वितीय चेम्बर की स्थापना के लिए माँग है परंतु लोकमत इस माँग को स्वीकार नहीं करता। व्यक्तिगत रूप से मुझे सन्देह है कि द्वितीय चेम्बर स्वतः ज़मीदारों या दूसरे अनुदार वर्गों के हितों की रक्षा कर सकेंगे। मुझे इसमें भी सन्देह है कि आज ज़मीदार वर्ग की जैसी दशा

है, वैसी दशा में वह अपर चेम्बर के उत्तरदायित्वों को पूरा करने के लिए वैसे ही यथेष्ट संख्या में सदस्य दे सकेगा जैसे कि दूसरे देशों में होते हैं। और न मुझे यही विश्वास है, जैसा कि सर मालकमहेली को प्रतीत होता है, कि व्यापारी-वर्ग या न्याय-विभाग से अवकाश-प्राप्त सदस्यों में से यथेष्ठ योग्य सदस्य मिल सकेंगे। यदि द्वितीय चेम्बर का कार्य एक संशोधक-संस्था के समान होगा, तो मैं भारत के प्रान्तों में यह आशा नहीं करता कि उनसे यह परिणाम निकलेगा। दूसरी ओर यदि द्वितीय चेम्बरों का कार्य है लोअर चेम्बरों द्वारा शीघ्रता से पास किये हुए क़ानूनों पर प्रतिबंध लगाना तो उस खतरे को, जो किसी तरह भी काल्पनिक नहीं है, न भूल जाना चाहिये कि द्वितीय चेम्बर प्रगतिशील सामाजिक नियमन व व्यवस्था के मार्ग में बड़े बाधक होंगे और इस प्रकार उनमें और लोअर हाउस एवंम लोकमत में विरोध होगा। इससे प्रान्त की आय पर भी बड़ा बजन आ जायगा।"❀

व्यवस्थापिका सभा के अधिवेशन

प्रत्येक प्रान्त की असेम्बली या असेम्बली एवं कौंसिल का अधिवेशन एक वर्ष में एक बार अवश्य होगा। एक अधिवेशन की अन्तिम बैठक और दूसरे अधिवेशन की प्रथम बैठक के बीच में १२ मास का अन्तर न होगा। गवर्नर चेम्बर या चेम्बरों के अधिवेशन आमंत्रित करेगा; चेम्बर या चेम्बरों को अनिश्चित काल के लिए स्थगित करेगा और असेम्बली को भंग करेगा।

गवर्नर असेम्बली, कौंसिल या दोनों के संयुक्त-अधिवेशन में भाषण देगा। और इस कार्य के लिए वह सदस्यों की उपस्थिति

❀ Records Vol. III p. 278-79; British India Delegation Memorandum p. 220.

के लिए आदेश करेगा। गवर्नर किसी बिल के साथ संदेश भी भेज सकता है। धारा ६३

मंत्री और एडवोकेट-जनरल

प्रत्येक मंत्री और एडवोकेट-जनरल को असेम्बली और कौंसिल में भाषण देने और कार्यवाही में भाग लेने का अधिकार होगा। वे व्यवस्थापिका सभा की किसी समिति के सदस्य बन जाने पर उसकी कार्यवाही में भाग ले सकेंगे। परन्तु इस कारण उनको मत देने का अधिकार न होगा।

अध्यक्ष और प्रधान

प्रत्येक प्रान्तीय असेम्बली अपने दो सदस्यों को अध्यक्ष (Speaker) और उपाध्यक्ष (Deputy Speaker) चुनेगी; जब-जब ये पदरिक्त हो जायँगे तब-तब असेम्बली रिक्त पदों की पूर्ति के लिए चुनाव करेगी।

यदि अध्यक्ष या उपाध्यक्ष असेम्बली के सदस्य न रहेंगे तो वे अपना पद-त्याग देंगे; वे किसी भी समय गवर्नर को त्याग-पत्र भेजकर अपना पद-त्याग सकेंगे; वे असेम्बली में उपस्थित सदस्यों के बहुमत द्वारा स्वीकृत अविश्वास के प्रस्ताव द्वारा अपने पद से हटाये जा सकेंगे। ऐसा प्रस्ताव उस समय तक प्रस्तुत नहीं किया जा सकेगा जब तक कि १४ दिन की सूचना पहले से न दी गयी हो। जब असेम्बली भंग हो जायगी तो अध्यक्ष पद-त्याग नहीं करेगा। असेम्बली के भंग हो जाने के बाद असेम्बली की प्रथम बैठक से पूर्व वह पद-त्याग करेगा। जब स्पीकर का पद रिक्त रहेगा, तो उस पद के कार्य उपाध्यक्ष द्वारा संपादन किये जायँगे। यदि डिप्टी स्पीकर का पद भी रिक्त होगा तो

गवर्नर द्वारा नियुक्त असेम्बली के सदस्य द्वारा उसके कार्य किये जायँगे। असेम्बली की किसी बैठक में स्पीकर की अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष और यदि वह भी उपास्थित न हो, तो वह व्यक्ति, जो असेम्बली की कार्यवाही के नियमों के अनुसार नियत किया गया हो, यदि ऐसा व्यक्ति भी उपास्थित न हो, तो वह व्यक्ति जो असेम्बली द्वारा निश्चित किया जायगा, अध्यक्ष के कार्यों का संपादन करेगा। अध्यक्ष और उपाध्यक्ष को वेतन मिलेगा जिसका निर्धारण असेम्बली करेगी। कौंसिल के लिये प्रधान (President) और उप-प्रधान (De-puty President) का चुनाव किया जायगा। इस संबंध में उपरोक्त नियम प्रयोग में लाये जायँगे।

कोरम—प्रत्येक चेम्बर या दोनों चेम्बरों के संयुक्त अधिवेशन में प्रत्येक प्रश्न का निर्णय चेम्बर में उपस्थित सदस्यों के बहुमत से होगा। अध्यक्ष या प्रधान अपनी सम्मति नहीं देंगे। किन्तु जब दोनों पक्षों की सम्मतियाँ समान होंगी तो अध्यक्ष या प्रधान को अपनी एक निर्णायक सम्मति देने का अधिकार होगा। यदि चेम्बर में किसी सदस्य का स्थान रिक्त होगा तो भी चेम्बर को अपनी कार्यवाही संचालन करने का अधिकार होगा। यदि बाद में जाँच करने पर यह ज्ञात हो जाय कि उसकी कार्यवाही में एक ऐसे व्यक्ति ने भाग लिया या सम्मति दी जिसे ऐसा करने का अधिकार न था, तो प्रान्तीय व्यवस्थापिका की कार्यवाही अवैध नहीं मानी जायगी। यदि असेम्बली और कौंसिल के अधिवेशनों में क्रमशः ? और १० सदस्य उपस्थित न होंगे तो अध्यक्ष और प्रधान को यह अधिकार होगा कि वे अधिवेशनों को स्थगित कर दें।

शपथ—असेम्बली या कौंसिल के प्रत्येक सदस्य को अपना स्थान ग्रहण करने से पूर्व गवर्नर या अन्य किसी अफ़सर के सामने चौथी परिशिष्ट के अनुसार शपथ लेनी होगी।

रिक्त-स्थान—कोई व्यक्ति असेम्बली और कौंसिल दोनों का सदस्य नहीं बन सकेगा। गवर्नर द्वारा बनाये हुए नियमानुसार उसे, यदि वह दोनों का सदस्य चुना गया हो, एक चेम्बर की सदस्यता से त्याग-पत्र देना होगा। कोई व्यक्ति प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा और संघीय व्यवस्थापिका सभा दोनों का सदस्य नहीं बन सकेगा। यदि कोई व्यक्ति दोनों का सदस्य चुन लिया जायगा और वह पहले से ही संघीय व्यवस्थापिका सभा की 'सीट' से त्याग-पत्र न देगा तो प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा में उसका स्थान रिक्त हो जायगा। यदि किसी चेम्बर का सदस्यः—

(१) ६९ धारा में वर्णित अयोग्यताओं के कारण अयोग्य हो जाय; या,

(२) सदस्यता से लिखित त्याग पत्र गवर्नर को दे दे, तो उसकी 'सीट' रिक्त हो जायगी।

यदि चेम्बर की आज्ञा के बिना उसका कोई सदस्य उसकी समस्त बैठकों से ६० दिनों तक अनुपस्थित रहेगा, तो उसकी सीट रिक्त हो जायगी। किन्तु उपरोक्त दिनों की गणना करते समय वह अवधि सम्मलित नहीं की जायगी जिसमें चार से अधिक दिन तक चेम्बर स्थगित रहा हो।

सदस्यता के लिए अयोग्यताएँ—निम्न लिखित व्यक्ति असेम्बली या कौंसिल के सदस्य नहीं चुने जा सकेंगेः—

(१) यदि कोई व्यक्ति भारत में सम्राट् (क्राउन) के अधीन किसी वैतनिक पद पर होगा; किन्तु यदि व्यवस्थापिका सभा ने अपने 'एक्ट' द्वारा ऐसी अयोग्यताओं को दूर कर दिया हो, तो वह सदस्य हो सकेगा।

(२) यदि वह पागल हो और उपयुक्त न्यायालय ने उसे ऐसा घोषित कर दिया हो।

(३) यदि वह ऐसा दिवालिया हो जिसे न्यायालय द्वारा मुक्त न किया गया हो।

(४) यदि उसे प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना से पूर्व या बाद में न्यायालय द्वारा अपराधी या चुनाव-संबंधी कार्यवाही में अपराधी घोषित कर दिया गया हो; यदि प्रान्तीय क़ानून या कौंसिल आर्डर में उल्लिखित अवधि व्यतीत होगयी हो, तो यह सदस्य बन सकेगा।

(५) यदि प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना से पूर्व या बाद में कोई व्यक्ति ब्रिटिश-भारत या किसी संघीय देशी राज्य में अपराधी घोषित कर दिया गया हो और कालेपानी या दो वर्ष के लिए क़ैद की सज़ा दी गयी हो। किन्तु उसकी मुक्ति के बाद पाँच साल या इससे कम (जिसे गवर्नर निश्चय करेगा) समय बीत गया हो, तो वह मेम्बर हो सकेगा।

(६) यदि कोई उम्मेदवार नामज़द कर लिया गया हो या इस प्रकार नामज़द उम्मेदवार का चुनाव-एजेंट हो जिसने नियत समय के भीतर नियमानुसार चुनाव के व्यय का विवरण दाख़िल न किया हो, तो वह उस समय से ५ वर्ष

तक अयोग्य माना जायगा और संघीय अथवा प्रान्तीय किसी भी चुनाव में भाग न ले सकेगा।

(७) कोई व्यक्ति प्रान्तीय व्यवस्थापिका के किसी चेम्बर का सदस्य उस समय नहीं हो सकता जब तक कि वह किसी फ़ौजदारी-अपराध के लिए क़ैद में हो या कालेपानी में।

(८) उपरोक्त पैरा (४) और (५) में वर्णित अयोग्यताओं के कारण चेम्बर के किसी सदस्य का स्थान उस समय रिक्त न समझा जायगा जब तक कि उस तिथि से तीन मास व्यतीत न हो गये हों और यदि इस बीच में उसने कोई अपील या अर्ज़ी दाखिल की हो, तो जब तक उसका निर्णय न हो जाय, वह बराबर सदस्यता का अधिकारी रहेगा। परन्तु वह चेम्बर के अधिवेशन में, इस काल में, न तो स्थान ग्रहण करेगा और न सम्मति ही देगा।

(९) संघीय या प्रान्तीय मंत्री वैतनिक-पद (office of profit) ग्रहण करने पर भी सदस्यता के अयोग्य न होगा।

(१०) यदि कोई उपरोक्त वर्णित अयोग्य व्यक्ति (Not qualified) प्रान्तीय असेम्बली या कौंसिल में सदस्य की हैसियत से बैठेगा या सम्मति देगा तो उसे प्रत्येक दिन के लिए ५००) पाँच सौ रुपये दंड देना पड़ेगा।

सदस्यों के विशेषाधिकार

नवीन शासन-विधान में सदस्य की भाषण स्वाधीनता की रक्षा के लिए स्पष्ट रूप से धारा ७१ में उल्लेख किया गया है। प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा के प्रत्येक सदस्य को व्यवस्थापिका सभा या उसकी किसी समिति (Committee) में

सामान्य व्यवस्थापक कार्यवाही १

आर्थिक क़ानूनी मसविदों को छोड़कर अन्य सब प्रकार के क़ानूनी मसविदे (Bills) प्रान्त के किसी भी चेम्बर में रक्खे जा सकते हैं; चेम्बर के स्थगित किये जाने से कोई प्रस्तुत बिल गिर (Lapse) नहीं सकेगा।

वह बिल जो कौंसिल में विचाराधीन हो और असेम्बली द्वारा स्वीकृत नहीं किया गया हो तो असेम्बली के भंग हो जाने का उस पर प्रभाव नहीं पड़ेगा। यदि कोई बिल असेम्बली में विचाराधीन हो या असेम्बली द्वारा स्वीकार कर लिया गया हो और कौंसिल में विचाराधीन हो, तो असेम्बली के भंग हो जाने से वह बिल गिर जायेगा।

बिल की स्वीकृति

जिस प्रान्त में दो चेम्बर हों, उस प्रान्त में बिल उसी समय स्वीकृत समझा जायगा जब कि वह ज्यों का त्यों या ऐसे संशोधनों के साथ जिनको दोनों चेम्बर स्वीकार करें, दोनों चेम्बरों द्वारा 'स्वीकृत' किया गया हो। यदि कोई बिल असेम्बली ने पास कर दिया हो और वह कौंसिल में भेज दिया गया हो और उसकी प्राप्ति के एक वर्ष की अवधि में वह गवर्नर के पास स्वीकृति के लिए न भेजा गया हो, तो गवर्नर दोनों चेम्बरों का संयुक्त अधिवेशन उपरोक्त बिल को पास कराने के लिए आमंत्रित करेगा। किन्तु यदि गवर्नर को यह प्रतीत हो कि इस बिल का सम्बन्ध राजस्व (Finance) अथवा विशेष उत्तररायित्वों से है, तो वह बिना उपरोक्त १२ मास की अवधि समाप्त हुए दोनों चेम्बरों का संयुक्त अधिवेशन आमंत्रित करेगा।

यदि संयुक्त अधिवेशन में उपरोक्त बिल बहुमत से पास हो गया तो यह समझा जायगा कि दोनों चेम्बरों ने बिल को पास किया है। संयुक्त-अधिवेशन का अध्यक्ष लेजिस्लेटिव कौंसिल का प्रधान (President) होगा उसकी अनुपस्थिति में वह व्यक्ति अध्यक्ष होगा जिसे कार्यवाही के नियमों के अनुसार निश्चय किया गया हो।

संयुक्त अधिवेशन

असेम्बली या दोनों चेम्बरों द्वारा स्वीकृत बिल गवर्नर की स्वीकृति के लिए भेजा जायगा। गवर्नर निज स्वेच्छा से यह घोषित करेगा कि वह (१) सम्राट के नाम से बिल को स्वीकार करता है, या (२) बिल पर अपनी स्वीकृति नहीं देगा या (३) बिल को गवर्नर-जनरल की स्वीकृति के लिए सुरक्षित रक्खेगा।

गवर्नर द्वारा स्वीकृति

जो बिल उपरोक्त रीति से गवर्नर-जनरल की स्वीकृति के लिए सुरक्षित रक्खा जायगा, उस पर गवर्नर जनरल अपनी (१) सम्मति देगा या (२) सम्मति नहीं देगा या (३) गवर्नर-जनरल उसे सम्राट की स्वीकृति के लिए सुरक्षित रक्खेगा।

गवर्नर जनरल द्वारा स्वीकृति

शासनादेश-पत्र (Instruments of Instructions to Governor's) के १७ वें पैरा में बिलों की स्वीकृति के संबंध में निम्नलिखित आदेश दिया गया है:—"गवर्नर निम्नलिखित श्रेणी के किसी भी बिल पर अपनी स्वीकृति नहीं देगा; किन्तु वह उसे गवर्नर-जनरल के विचार के लिए सुरक्षित रक्खेगा।

गवर्नर के लिए शासनादेश

(१) वह 'बिल' जो ब्रिटिश-भारत में प्रचलित पार्लिमैंट के किसी एक्ट के विरुद्ध हो या उसको रद्द करे;

(२) वह 'बिल' जो गवर्नर की सम्मति में हाईकोर्ट के अधिकारों को कम करे।

(३) वह 'बिल' जो स्थायी बन्दोवस्त (Permanent Settlement) में परिवर्तन करे;

(४) वह 'बिल' जिसका संबंध भेद-भाव (Discrimination) से हो;

सम्राट का विशेषाधिकार

गवर्नर या गवर्नर-जनरल द्वारा स्वीकृत किसी भी बिल को स्वीकृति देने के १२ मास की अवधि के भीतर सम्राट अस्वीकार कर सकता है; गवर्नर गजट में इस अस्वीकृति की शीघ्र ही सूचना प्रकाशित करेगा; और उसी समय से 'एक्ट' अवैध माना जायगा।

२—आर्थिक व्यवस्थापक कार्यवाही

गवर्नर की सिफ़ारिश के बिना नवीन कर लगाने वाला प्रस्ताव या सरकारी आय को ख़र्च करने वाला, तथा अर्थ-संबंधी अन्य प्रस्ताव प्रस्तुत नहीं किया जायगा।

बजट

गवर्नर प्रत्येक आर्थिक वर्ष के लिए प्रधान-मंत्री द्वारा बजट प्रस्तुत करायेगा। बजट में पृथक्-पृथक् निम्नलिखित बातें होंगीः—(१) वह व्यय जिस पर सम्मति नहीं ली जायगी; (२) वह व्यय जिस पर सम्मति ली जायगी; बजट में वह रक़म भी दिखलायी जायगी जिसे गवर्नर अपनी इच्छा से विशेष उत्तरदायित्वों

को पूरा करने में व्यय करेगा। प्रथम भाग पर प्रान्तीय व्यवस्थापिका-सभा को सम्मति देने का अधिकार न होगा। इसमें निम्न लिखित मद्दें सम्मिलित हैं :—

(१) गवर्नर का वेतन और वृतियाँ और उसके पद से संबंध रखने वाले अन्य व्यय।

(२) ऋण का वह भाग जो प्रान्तों से वसूल किया जायगा।

(३) मंत्रियों (Ministers) और एडवोकेट-जनरल का वेतन और वृतियाँ।

(४) हाईकोर्ट के जजों के वेतन और वृतियाँ।

(५) पृथक् प्रदेशों (Excluded areas) के राज्य-प्रबंध का व्यय।

(६) न्यायालय या पंचायत की किसी डिग्री को अदा करने के लिए धन।

उपरोक्त मद्दों में से (१) को छोड़कर अन्य सबों पर व्यवस्थापिका-सभा में विचार किया जा सकेगा, परंतु उन पर सम्मति नहीं ली जायगी। इसी श्रेणी के ख़र्चों का अनुमान-पत्र जिस पर असेम्बली सम्मति दे सकेगी, व्यवस्थापिका असेम्बली में सहायता के लिए माँगों के रूप में पेश किया जायगा। असेम्बली को यह अधिकार होगा कि वह उन्हें स्वीकार करे, अस्वीकार या उनमें कमी करे। गवर्नर की सिफ़ारिश के बिना ऐसा कोई बिल व्यवस्थापिका-सभा में पेश नहीं किया जायगा जो व्यय से संबंध रखेगा और निम्नलिखित मामलों में गवर्नर की सिफ़ारिश के बिना कोई बिल या संशोधन प्रस्तुत नहीं किया जायगा :—

(१) कोई टैक्स बढ़ाना या जारी करना।

(२) प्रान्त के ऋण या आर्थिक ज़िम्मेदारी (Obligations) के संबंध में नियम बनाना या बने हुये नियमों में संशोधन करना।

(३) बजट की किसी रक़म को वोट से सुरक्षित करने के लिये प्रस्ताव या संशोधन।

गवर्नर के व्यवस्थापक विशेषाधिकार

पार्लिमैंटरी संयुक्त-कमेटी की यह सम्मति है कि "गवर्नर के विशेष उत्तरदायित्वों (Special responsibilities) को उचित रीति से पूरा करने के लिए विशुद्ध कार्य-कारिणी का कार्य ही पर्याप्त न होगा; कुछ विशेष परिस्थितियों में यह आवश्यक होगा कि उसे विशेषाधिकार दिये जायँ।"

गवर्नर के 'एक्ट'

पहले शासन-विधान के अनुसार गवर्नर को, प्रान्तीय व्यवस्थापिका-सभा द्वारा किसी भी अस्वीकृत क़ानून को 'प्रमाणित' (Certified) करने का अधिकार था और इस प्रकार 'प्रमाणित बिल' व्यवस्थापिक सभा का 'एक्ट' माना जाता था। वर्त्तमान शासन-विधान में यह स्पष्ट उल्लेख है कि गवर्नर क़ानून (Act) बना सकेगा। गवर्नर किसी भी समय जब आवश्यकता प्रतीत हो तब असेम्बली या दोनों चेम्बरों को संदेश द्वारा उन परिस्थितियों की सूचना दे सकेगा जिनके कारण वह 'एक्ट' बनाने के लिए वाध्य हुआ है। गवर्नर

(१) शीघ्र ही विल को क़ानून (Act) का रूप देगा या

(२) संदेश के साथ क़ानून के मशविदे को भेज देगा।

यदि गवर्नर संदेश के साथ बिल का मशविदा भेजेगा, तो एक मास के बीत जाने पर वह उसे क़ानून (एक्ट) का रूप दे सकेगा।

दो प्रकार के 'आर्डीनेन्स'

प्रान्तीय सरकार दो प्रकार के आर्डीनेन्स-अस्थायी क़ानून—प्रचलित कर सकेगी। प्रथम प्रकार का 'आर्डीनेन्स' गवर्नर अपनी जिम्मेदारी पर अपने विशेष उत्तरदायित्वों को पूरा करने के लिए जारी करेगा; द्वितीय प्रकार के आर्डीनेन्स मंत्रियों की सलाह से जारी किये जायँगे।

१—गवर्नर किसी भी समय, जब प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा का अधिवेशन न हो रहा हो, यह समझे कि ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गयी हैं जिनके कारण यह आवश्यक हो गया है कि शीघ्र ही कार्य किया जाय तो वह आर्डीनेंस जारी कर सकेगा; किन्तुः—

(१) यदि इस शासन-विधान के अन्तर्गत किसी बिल की धाराएँ ऐसी हों कि जिनके कारण बिल को प्रस्तुत करने से पूर्व गवर्नर या गवर्नर-जनरल की स्वीकृति लेनी आवश्यक हो और ऐसी ही धाराएँ 'आर्डीनेंस' में भी हों, तो गवर्नर 'आर्डीनेंस' जारी करते समय आत्म-निर्णय का प्रयोग करेगा।

(२) यदि आर्डीनेंस में ऐसी धाराएँ हैं कि जो, यदि बिल के रूप में होतीं तो गवर्नर-जनरल की पूर्व स्वीकृति आवश्यक होती, तो गवर्नर गवर्नर-जनरल के आदेश के बिना आर्डीनेंस प्रचलित नहीं करेगा।

२—इस धारा के अनुसार जो आर्डीनेंस जारी किया जायगा उसका प्रभाव वैसा ही होगा जैसा कि प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा के क़ानून का; किन्तुः—

(१) वह प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा के समक्ष प्रस्तुत किया जायगा और व्यवस्थापिका सभा के पुनः अधिवेशन के प्रारम्भ से ६ सप्ताह की अवधि समाप्त हो जाने पर आर्डीनेंस का कोई प्रभाव न रहेगा या असेम्बली द्वारा आर्डीनेंस के विरुद्ध प्रस्ताव पास होने और कौंसिल द्वारा सहमति प्रकट करने पर वह तुरन्त ही कोई प्रभाव न रखेगा।

(२) सम्राट प्रान्तीय व्यवस्थापिका के क़ानून की तरह उसे रद्द कर सकेगा।

(३) गवर्नर उसे किसी भी समय वापस ले लेगा।

(४) यदि आर्डीनेंस में किसी ऐसी धारा का उल्लेख है जिसे यदि व्यवस्थापिका सभा के क़ानून का रूप दिया जाय तो वह क़ानून-विरुद्ध होगी, तो ऐसा आर्डीनेंस अवैध (Void) होगा।

यह आर्डीनेंस प्रथम श्रेणी के हैं। इनके अतिरिक्त गवर्नर भी अपने विशेष उत्तरदायित्वों की पूर्ति के लिए आर्डीनेंस जारी कर सकेगा। ऐसा आर्डीनेंस ६ मास तक जारी रह सकेगा। दूसरे आर्डीनेंस द्वारा यह आर्डीनेंस ६ मास के लिए पुनः जारी किया जा सकेगा। ऐसा आर्डीनेंस वही प्रभाव रखेगा जो प्रभाव प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा का एक्ट रखेगा। किन्तुः—

(१) सम्राट को यह अधिकार होगा कि वह उसे अस्वीकार कर दे।

(२) गवर्नर उसे किसी भी समय वापस ले लेगा।

(३) यदि कोई आर्डीनेंस किसी पूर्व—प्रचलित आर्डीनेंस की अवधि बढ़ाने के लिए जारी किया गया है, तो वह तुरंत ही गवर्नर-जनरल द्वारा भारत-मंत्री के पास भेज दिया जायगा और वह उसे पार्लिमेंट के दोनों चेम्बरों के सामने पेश करेगा।

गवर्नर-जनरल की सम्मति

उपरोक्त आर्डीनेंस जारी करते समय गवर्नर स्वेच्छा (his discretion) का प्रयोग करेगा; परंतु ऐसा कार्य वह गवर्नर-जनरल की सम्मति से करेगा। यदि समयाभाव से सम्मति प्राप्त न हो सकेगी तो वह आर्डीनेंस जारी कर देगा, किन्तु ऐसी स्थिति में गवर्नर-जनरल आर्डीनेंस को वापस लेने का आदेश कर सकता है और तदनुसार वह वापस कर लिया जायगा।

विधान की विफलता

गवर्नर का घोषणा प्रकाशित करने का अधिकार—शासन-विधान के विफल होने की दशा में किसी भी समय जब कि शासन-विधान के अनुसार प्रान्त का शासन संचालन नहीं हो सके, तब गवर्नर शासन-विधान की दशा ९३ के अनुसार घोषणा (Proclamation) द्वारा—

(१) यह घोषणा कर सकता है कि घोषणा में वर्णित कार्य गवर्नर की स्वेच्छानुसार किये जायँगे;

(२) प्रान्तीय सरकार की किसी भी संस्था के समस्त या कुछ अधिकारों या अधिकार को ग्रहण कर लेगा। किन्तु वह;

(i) हाईकोर्ट के अधिकारों को ग्रहण नहीं कर सकेगा।

(ii) इस प्रकार की घोषणा किसी अन्य घोषणा द्वारा रद्द या परिवर्तित की जा सकेगी।

(iii) ऐसी घोषणा शीघ्र भारत-मंत्री के पास भेज दी जायगी और वह उसे पार्लिमैंट के समक्ष रखेगा।

(iv) यह घोषणा ६ मास तक प्रभाव रख सकेगी।

(v) यदि पार्लिमैंट के दोनों चेम्बर उपरोक्त घोषणा को एक प्रस्ताव द्वारा स्वीकार कर लेंगे और प्रस्ताव द्वारा उसका जारी रखना पसंद करेंगे तो वह उसकी अवधि समाप्ति के बाद और १ साल तक अपना प्रभाव रखेगी।

(vi) ऐसी घोषणा ३ साल से अधिक किसी की दशा में अपना प्रभाव नहीं रखेगी।

(vii) यदि गवर्नर घोषणा के अनुसार व्यवस्थापक अधिकारों का प्रयोग क़ानून-निर्माण के लिए करेगा तो उसके द्वारा निर्मित क़ानून घोषणा की अवधि समाप्त होने के बाद दो वर्ष पर्यन्त जारी रहेंगे; किन्तु उपर्युक्त व्यवस्थापिका सभा द्वारा रद्द किये जाने पर उनका प्रभाव न रहेगा।

प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा के अधिकार

शासन-विधान (१९३५) की धारा ९९ (१) के अनुसार प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा प्रान्त या उसके किसी भाग के लिए क़ानून निर्माण कर सकेगी। कोई संघीय क़ानून केवल इस आधार पर अवैध (invalid) नहीं माना जायगा कि वह बाह्य प्रादेशिक (Extra territorial operation) प्रभाव रखेगा और निम्न-लिखित व्यक्तियों के संबंध में लागू होगाः—

(१) भारत के किसी भाग में ब्रिटिश प्रजा और 'क्राउन' के कर्मचारी; या

(२) ब्रिटिश प्रजा जो भारत के किसी भाग में रहती हो; या

(३) उन जलयान और वायुयान के व्यक्तियों पर जिनकी ब्रिटिश भारत या किसी संघीय राज्य में रजिष्ट्री की गयी हो; या

(४) संघीय देशी राज्यों की प्रजा पर; या

(५) जल, स्थल और आकाश सेना संबंधित व्यक्तियों पर;

प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा किन विषयों के संबंध में क़ानून निर्माण कर सकेगी, इसका उल्लेख शासन-विधान की धारा १०० में किया गया है:—

(१) संघीय व्यवस्थापिका सभा को शासन-विधान की सातवीं परिशिष्ट की सूची, सं० १ में वर्णित विषयों के संबंध में क़ानून बनाने का अधिकार होगा। यह **"संघीय व्यवस्थापक सूची"** के नाम से प्रसिद्ध है।

(२) प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा को भारतीय शासन-विधान की सातवीं परिशिष्ट की सूची सं० २ में वर्णित विषयों के संबंध में क़ानून बनाने का अधिकार होगा। यह **"प्रान्तीय व्यवस्थापक सूची"** के नाम से प्रसिद्ध है।

(३) संघीय और प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं को सातवीं परिशिष्ट की सूची सं० ३ में वर्णित विषयों के संबंध में क़ानून बनाने का अधिकार होगा। यह **"सामान्य व्यवस्थापक सूची"** कहलायेगी।

संघीय व्यवस्थापिका उपरोक्त पैरा २ में वर्णित विषयों के संबंध में क़ानून बना सकेगा, परन्तु प्रान्त या उसके किसी भाग के लिए नहीं।

जो विषय सामान्य राष्ट्रीय हित के हैं उनके संबंध में केवल संघीय व्यवस्थापिका को क़ानून बनाने का अधिकार है; किन्तु जो विषय केवल प्रान्तिक महत्व रखते हैं, उनके संबंध में क़ानून बनाने का अधिकार प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा को दिया गया है।

कुछ ऐसे सामान्य विषय हैं जिनका संघीय और प्रान्तीय दोनों हितों से संबंध है। उनके संबंध में दोनों व्यवस्थापिका-सभाओं को अधिकार दिये गये हैं; किन्तु शासन-विधान की धारा १०७ के अनुसार ही क़ानून बन सकेंगे। धारा १०७ इस प्रकार है:—

"(१) यदि प्रान्तीय क़ानून की कोई धारा उस संघीय क़ानून की धारा के विरुद्ध है जिसे संघीय व्यवस्थापिका को बनाने का पूरा अधिक़ार है, या वर्तमान भारतीय क़ानून (जो 'सामान्य व्यवस्थापक सूची' संख्या तीन से संबंध रखने वाले विषयों के संबंध में) के विरुद्ध है, तो संघीय क़ानून या भारतीय क़ानून ही जारी रहेगा और प्रान्तीय क़ानून का वह प्रतिकूल भाग अवैध माना जायगा।"

"(२) यदि 'सामान्य व्यवस्थापक सूची' (Concurrent legislative List) में दिये किसी विषय के संबंध में प्रान्तीय क़ानून की कोई धारा पूर्व संघीय क़ानून या वर्तमान भारतीय क़ानून के विरुद्ध है, तो, यदि प्रान्तीय क़ानून गवर्नर-जनरल के विचार के लिए सुरक्षित किया

गया है या सम्राट की स्वीकृति के लिए सुरक्षित है, और गवर्नर-जनरल या सम्राट ने अपनी स्वीकृति (assent) दे दी है, तो उस प्रान्त में प्रान्तीय क़ानून माना जायगा। परंतु संघीय व्यवस्थापिका किसी भी समय इस विषय में क़ानून बना सकेगा। किन्तु गवर्नर-जनरल की पूर्व-स्वीकृति के बिना संघीय व्यवस्थापिका के किसी भी चेम्बर में कोई ऐसा बिल या संशोधन प्रस्तुत नहीं किया जायगा जो किसी प्रान्तीय क़ानून के प्रतिकूल होगा।"

"(३) यदि संघीय देशी राज्य के क़ानून की कोई धारा उस संघीय क़ानून के प्रतिकूल होगी, जो संघीय देशी राज्य में जारी होगा, संघीय क़ानून, चाहे वह देशी राज्य के क़ानून से पहले या बाद में बना हो, जारी रहेगा और देशी राज्य का क़ानून जितना उसके प्रतिकूल होगा अवैध माना जायगा।"

आवश्यक घोषणा

नवीन शासन-विधान (१९३५) की धारा १०२ के अनुसार गवर्नर-जनरल आवश्यक घोषणा (Proclamation of Emergency) प्रकाशित करके संघीय व्यवस्थापिका-सभा को यह अधिकार दे सकता है कि वह "प्रान्तीय व्यवस्थापक-सूची" में उल्लिखित विषयों से संबंधित क़ानून प्रान्त या उसके किसी भाग के लिए बनावे। किन्तु इस आशय का कोई बिल या संशोधन गवर्नर-जनरल की पूर्व स्वीकृति के बिना प्रस्तुत नहीं किया जायगा।

प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा भी क़ानून बना सकेगी। किन्तु यदि प्रान्तीय क़ानून की कोई धारा संघीय क़ानून के प्रतिकूल होगी तो संघीय क़ानून ही प्रचलित होगा।

'आवश्यक घोषणा':—

(१) किसी दूसरी घोषणा द्वारा रद्द की जा सकेगी।

(२) भारत-मंत्री के पास भेज दी जायगी और वह उसे पार्लिमैंट के समक्ष प्रस्तुत करेगा।

(३) आवश्यक घोषणा ६ मास तक जारी रहेगी। किन्तु यदि इस अवधि की समाप्ति के पूर्व पार्लिमैंट के दोनों चेम्बर उसे स्वीकार कर लेंगे तो अधिक दिनों तक भी जारी रहेगी।

(४) 'आवश्यक घोषणा' के अन्तर्गत जो क़ानून संघीय व्यवस्थापिका सभा द्वारा बनाये जावेंगे, वे घोषणा की अवधि समाप्त हो जाने के बाद ६ मास तक जारी रहेंगे।

संघीय व्यवस्थापिका सभा दो या अधिक प्रान्तों के लिए क़ानून बना सकेगा

यदि दो या अधिक प्रान्तों के लिए एक-सा क़ानून बनाना वांछनीय हो और उन प्रान्तों की व्यवस्थापिका सभाएँ इस आशय के प्रस्ताव पास करें कि संघीय व्यवस्थापक सभा उनके लिए क़ानून बनावे, तो संघीय व्यवस्थापिका सभा उपरोक्त प्रान्तों के लिए क़ानून बना सकेगी; किन्तु ऐसा क़ानून उस प्रान्त की व्यवस्थापिका सभा द्वारा रद्द किया जा सकेगा या उसमें संशोधन किया जा सकेगा, जिसके संबंध में वह बनाया गया होगा।

अतिरिक्त अधिकार

गवर्नर-जनरल को यह अधिकार प्रदान किया गया है कि वह संघीय व्यवस्थापिका सभा या प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा को उन विषयों के संबंध में क़ानून बनाने का अधिकार दे सकेगा जिनका उल्लेख विधान की सातवीं परिशिष्ट की किसी

भी सूची में नहीं होगा। वह नवीन कर लगाने के लिए भी अधिकार दे सकेगा जिसका उल्लेख तीनों में से किसी भी सूची में न होगा। इस धारा का प्रयोग गवर्नर-जनरल स्वेच्छानुसार करेगा।

भारतीय व्यवस्थापिका सभा की मर्यादाएँ

१—पार्लिमैंट के सुरक्षित अधिकारः—

(१) पार्लिमैंट को ब्रिटिश भारत या उसके किसी भाग के लिए क़ानून बनाने का अधिकार होगा।

(२) शासन-विधान निम्न लिखित मामलों में संघीय या प्रान्तीय व्यवस्थापिका को क़ानून बनाने का अधिकार नहीं देता—

(i) प्रभु (Sovereign) या राजकुल या सम्राट के उत्तराधिकार या भारत के किसी भाग में सम्राट के प्रभुत्व ब्रिटिश नागरिकता के क़ानून या फ़ौजी क़ानून आकाश-सेना-क़ानून, नाविक अनुशासन क़ानून अथवा प्राइज़कोर्ट के संबंध में; क़ानून बनाना या

(ii) इस शासन विधान (१९३५) या उसके अन्तर्गत किसी कौंसिल-आर्डर, या शासन-विधान के अन्तर्गत भारत-मंत्री द्वारा निर्मित किसी नियम या गवर्नर-जनरल या गवर्नर द्वारा निर्मित किसी नियम में उस समय तक संशोधन करने का अधिकार नहीं है जब तक कि शासन-विधान की कोई धारा स्पष्ट रूप से उसे अधिकार न दे; या

(iii) किसी भी न्यायालय से अपील के लिए विशेष आज्ञा प्रदान करने के सम्राट के विशेषाधिकार को कम करने के संबंध में क़ानून बनाना।

गवर्नर-जनरल या गवर्नर की पूर्व स्वीकृति

• ब्रिटिश भारत में व्यवस्थापिका-क्षेत्र में पार्लिमैंट तो सबसे ऊपर और शक्तिशालिनी व्यवस्थापिका सभा है ही। किन्तु पार्लिमैंट के विशेषाधिकार के अतिरिक्त गवर्नर-जनरल और गवर्नर को भी व्यवस्थापिका-क्षेत्र में हस्तक्षेप करने के लिए बड़े शक्तिशाली अधिकार प्रदान किये गये हैं। शासन-विधान की धारा १०८ के अनुसार यह आवश्यक है कि कुछ विशेष प्रकार के बिलों को संघीय या प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं में पेश करने से पूर्व गवर्नर-जनरल या गवर्नर की स्वीकृति प्राप्त कर ली जाय। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि गवर्नर-जनरल या गवर्नर उन विषयों के संबंध में क़ानून बनाने से रोक सकेगा। वे विषय इस प्रकार हैं:—

(१) ब्रिटिश भारत में प्रचलित पार्लिमैंट के किसी क़ानून की धाराओं के प्रतिकूल; या

(२) गवर्नर-जनरल या गवर्नर के 'एक्ट' या उनके द्वारा स्वेच्छा से जारी किये हुए आर्डीनेंस में परिवर्तन या संशोधन आदि; या

(३) उन मामलों के संबंध में जिनमें गवर्नर-जनरल अपने विशेषाधिकारों का प्रयोग कर सकेगा; या

(४) पुलिस के संबंध में किसी नियम में संशोधन; या

(५) यूरोपियन ब्रिटिश प्रजा के संबंध में जाब्ता फौजदारी में परिवर्तन; या

(६) ब्रिटिश-भारत में न रहने वाले व्यक्तियों पर और ब्रिटिश-भारत में रहने वाले व्यक्तियों पर अधिक कर लगाना या उन

कम्पनियों पर अधिक कर लगाना जो ब्रिटिश भारत के नियंत्रण या प्रबंध में नहीं हैं। या

(७) ब्रिटेन में कर-योग्य आयके संबंध में किसी संघीय आयकर से मुक्ति प्रदान करने के लिए प्रभावित करना।

इसी प्रकार प्रान्तीय क्षेत्र में गवर्नर से पूर्व स्वीकृति प्राप्त करना आवश्यक है।

व्यवस्थापिका सभाओं का संगठन

प्रान्तीय व्यवस्थापिका के संगठन पर यहाँ विचार करना आवश्यक है। प्रान्तीय असेम्बलियों का संगठन ४ अगस्त १६३२ को प्रकाशित 'साम्प्रदायिक निर्णय' (Communal award) के अनुसार किया गया है। उपरोक्त 'निर्णय' में प्रान्तीय कौंसिलों के संगठन के संबंध में कोई प्रस्ताव नहीं किया गया है। इस 'निर्णय' में दो परिवर्तन हो गये हैं:—(१) उड़ीसा-प्रान्त का निर्माण (२) २५ सितम्बर १६३२ ई० का पूना-पेक्ट।

असेम्बलियों का आकार—प्रान्तीय असेम्बलियों का आकार भिन्न-भिन्न है। मद्रास में २१५, बंबई में १७५, बंगाल में २५०, संयुक्त-प्रान्त में २२८, पंजाब में १७५, बिहार में १५२, मध्य प्रान्त में ११२, आसाम में १०८, सीमा प्रान्त में ५०, उड़ीसा में ६० और सिन्ध में ६० सीटें हैं। इन समस्त सीटों की पूर्ति निर्वाचन द्वारा होगी।

कौंसिलों का आकार—मद्रास, बम्बई, बंगाल, संयुक्त-प्रान्त, बिहार और आसाम में अपर चेम्बर (कौंसिल) स्थापित की गयी हैं; मद्रास में ५६, बम्बई में ३०, बंगाल में ६५, संयुक्त-प्रान्त में ६०, बिहार में ३० और आसाम में २२ सीटें हैं। बंगाल

कौंसिल की २७ सीटों और बिहार-कौंसिल की १२ सीटों का चुनाव उन प्रान्तों की असेम्बली द्वारा होगा। उपरोक्त प्रान्तों में क्रमशः १०, ४, ८, ८, ४ व ४ सदस्य गवर्नर द्वारा मनोनीत किये जायँगे।

प्रान्तीय असेम्बलियों के लिए निर्वाचक—पूर्व शासन-विधान के अन्तर्गत मताधिकार ७० लाख स्त्री-पुरुषों को प्राप्त था। अर्थात् ब्रिटिश भारत की जन-संख्या का ३% प्रतिशत भाग ही मताधिकार का अधिकारी था। इनमें से ३१५,००० स्त्रियाँ मतदाता थीं।

मताधिकार की योग्यताएँ—मताधिकार की योजना लोथियन-कमेटी (मताधिकार-समिति) की रिपोर्ट के आधार पर तैयार की गयी है। मताधिकार का मूल आधार साम्पत्तिक योग्यता है—(लगान, मालगुजारी, आयकर, म्यूनिस्पल-कर इत्यादि)। शिक्षा-संबंधी योग्यता भी एक आधार है। कुछ विशेष योग्यताएँ महिलाओं और परिगणित जातियों के प्रतिनिधित्व की सुरक्षा के लिए रखी गयी हैं। अवकाश-प्राप्त कर्मचारियों के लिये भी मताधिकार दिया गया है। सम्राट की नियमित सेना के नान-कमीशन अफ़सरों व व्यक्तियों को भी मताधिकार दिया गया है। मज़दूर, वाणिज्य और ज़मीदारों को भी विशेष मताधिकार दिया गया है।

यह अनुमान किया गया है कि इस नवीन योजना के अनुसार २६,०००,०००, पुरुष और ६,०००,००० महिलाएँ मताधिकार की अधिकारिणी हैं।

निर्वाचन-क्षेत्र—प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाएँ निम्नलिखित प्रथक् निर्वाचन-क्षेत्रों द्वारा चुने हुए सदस्यों द्वारा निर्मित होंगीः—

(१) सामान्य निर्वाचन क्षेत्र (इसमें अधिकांश में हिंदू सम्मिलित हैं) ।

(२) सामान्य निर्वाचन क्षेत्र (इसमें परिगणित जातियों के लिये स्थान सुरक्षित हैं) ।

(३) मुसलिम-निर्वाचन-क्षेत्र ।

(४) यूरोपियन ।

(५) एंग्लोइंडियन ।

(६) भारतीय ईसाई ।

(७) सिक्ख ।

(८) महिलाएँ—सामान्य—क्षेत्र ।

(९) ,, सिक्ख ।

(१०) ,, मुसलिम ।

(११) ,, एंग्लो इंडियन ।

(१२) ,, भारतीय ईसाई ।

(१३) ब्रिटिश व्यापार वाणिज्य व उद्योग ।

(१४) भारतीय व्यापार व उद्योग ।

(१५) ज़मीदार ।

(१६) मजदूर ।

(१७) विश्वविद्यालय ।

(१८) पिछड़े प्रदेश ।

प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा के संगठन की आलोचना

साम्प्रदायिक निर्णय के आधार पर प्रान्तीय असेम्बलियों का संगठन किया गया है। यह तो हम ऊपर ही लिख चुके हैं और पाठकों से यह भी छिपा नहीं है कि इस साम्प्रदायिक

निर्णय के परिणाम स्वरूप प्रान्तीय असेम्बली को १८ ऐसे भागों में बाँट दिया गया है कि वे सब मिलकर राजनीतिक-दलों का विकास नहीं कर सकते। पार्लिमैंटरी शासन-प्रणाली के लिए २ या ३ बड़ी राजनीतिक पार्टियों का अस्तित्व अनिवार्य है। इसमें सन्देह नहीं कि यह साम्प्रदायिक निर्णय बहुत ही अराष्ट्रीय और प्रजातंत्र सिद्धान्त के प्रतिकूल है। काँग्रेस ने इसका शुरू से विरोध किया है।

१—प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाएँ जाति-गत चुनाव के आधार पर बनी हैं। अनेकों ऐसी जातियों को प्रथक् चुनाव दिया गया है, जो बहुत ही अगण्य अल्पमत कही जा सकती हैं। इन्हें जाति-गत प्रतिनिधित्व भी धन, सम्पत्ति, सभ्यता, संस्कृति और जन-संख्या के अनुपात से अधिक दिया गया है। एंग्लो-इंडियन, भारतीय ईसाई, यूरोपियन प्रत्येक प्रान्त में हैं, परंतु प्रान्त की जनसंख्या की दृष्टि से ये बहुत ही छोटी जातियाँ हैं। इस विभाजन से अनेकों अल्प-संख्यक वर्ग बन गये हैं जिनकी संरक्षा का भार गवर्नर पर है। इस प्रकार गवर्नर को हस्तक्षेप करने के लिए यथेष्ट अवसर मिलेंगे।

२—प्रथक् साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के अतिरिक्त प्रथक् वर्ग प्रतिनिधित्व भी दिया गया है—ज़मींदार, व्यापार, मज़दूर इत्यादि। कहना न होगा कि इन दोनों प्रतिनिधित्वों में पारस्परिक विरोध है। इस प्रकार गवर्नर इनमें सन्तुलन पैदा करने के लिए हस्तक्षेप करेगा।

३—केवल जाति-गत और वर्ग-गत प्रतिनिधित्व ही नहीं दिया गया है, प्रत्युत स्त्री-समाज में भी ४ दल खड़े कर दिये गये

हैं। सभी स्त्रियों की समस्याएँ और हित समान हैं। परंतु हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, ऐंग्लो-इंडियन महिलाओं के प्रथक निर्वाचन-क्षेत्र बना कर उनमें भी कृत्रिम भेद-भाव पैदा करने का प्रयत्न किया गया है।

४—विश्वविद्यालयों को विशेष प्रथक् प्रतिनिधित्व प्रदान करना सर्वथा अनुचित है। प्रान्तीय व्यवस्थापिका में जो व्यक्ति सदस्य चुन कर जायँगे उनमें से अधिकांश इन्हीं विश्व-विद्यालयों में शिक्षा पाये हुए विद्वान होंगे। वे अवश्य ही राष्ट्रीय शिक्षा की उन्नति के लिए यत्नशील रहेंगे। ऐसी दशा में प्रथक् प्रतिनिधित्व देना उचित नहीं है।

५—इस प्रथक् निर्वाचन पद्धति का सबसे बड़ा दोष तो यह है कि यह उत्तरदायी शासन के विकास में बाधक है।

प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं में भाषा-प्रयोग—शासन-विधान (१९३५) की धारा ८५ में यह लिखा है कि—"प्रान्त की व्यवस्थापिका सभाओं में समस्त कार्यवाही अँगरेज़ी भाषा में होगी।" किन्तु "चेम्बर या चेम्बरों की कार्यवाही के नियमों में इसका विधान होगा कि जो व्यक्ति अंगरेज़ी भाषा से अनभिज्ञ या यथेष्ठ रूप से परिचित नहीं हैं, वे दूसरी भाषा का प्रयोग कर सकेंगे।"

नवीन शासन-विधान के अनुसार विगत फर्वरी १९३७ में भारत के प्रान्तों में जो सामान्य निर्वाचन हुए थे उनमें कांग्रेस दल का बहुमत था। और अन्त में यह दल ही विजयी हुआ। अतः इस समय भारत के सात प्रान्तों में कांग्रेसी सरकार स्थापित है। विगत सितम्बर मास में प्रान्तीय असेम्बलियों में भाषा के प्रश्न पर बड़ी बहस और वाद-विवाद रहा। इन

प्रान्तीय असेम्बलियों में हिन्दी-भाषा-भाषी सदस्यों की संख्या कम नहीं है और कांग्रेस-दल में ऐसे सदस्यों की संख्या भी कम नहीं है जो हिन्दी और अँगरेज़ी दोनों से परिचित तो हैं; किन्तु अपने विचार पहली भाषा में ही प्रकट करना चाहते हैं। जो सदस्य हिन्दी से परिचित हैं वे अँगरेज़ी न जानने के कारण असेम्बली में, अँगरेज़ी में कार्यवाही से लाभ नहीं उठा सकते।

हाल में संयुक्त-प्रान्त की असेम्बली के स्पीकर स्वनामधन्य राष्ट्र-भाषा हिन्दी के प्रबल समर्थक माननीय बा० पुरुषोत्तमदास टंडन ने अपनी रूलिङ्ग के द्वारा जिसमें उन्होंने प्रत्येक मेम्बर को अपने भाषण करने की भाषा का चुनाव स्वयं करने की स्वतंत्रता दी है, एक बहुत बड़ा परिवर्तन उपस्थित हो गया है। स्पीकर की इस रूलिङ्ग को कई प्रसिद्ध पत्रों ने, जिनमें हमारे प्रान्त का अँगरेज़ी दैनिक 'लीडर' भी सम्मिलित है, क़ानून-विरुद्ध और अवैध बतलाया। इस पर स्पीकर ने इस प्रश्न को असेम्बली के सदस्यों के सामने रक्खा और मेम्बरों के एक भारी बहुमत ने स्पीकर की रूलिङ्ग का समर्थन किया और उसके अर्थ को न्याय-संगत बतलाया।

माननीय बा० पुरुषोत्तमदास टंडन का यह कार्य बहुत प्रशंसनीय है। अन्य कांग्रेसी प्रान्तों को भी इसका अनुकरण करना चाहिये। यह वास्तव में एक बड़ी महत्वपूर्ण वैधानिक परम्परा (Constitutional Convention) स्थापित की गयी है।

अध्याय ५

चीफ कमिश्नरों के प्रान्त

और

प्रथक्-प्रदेश

पूर्व शासन-विधान के अन्तर्गत प्रथक् प्रदेश

पूर्व शासन-विधान (१९१९) के अन्तर्गत कुछ प्रदेशों को प्रान्तीय-शासन से प्रथक् कर दिया गया था। पहले ये प्रदेश पिछड़े हुए प्रदेश कहलाते थे और सपरिषद् गवर्नर-जनरल को यह अधिकार दिया गया था कि वह किसी भी प्रदेश को 'पिछड़ा हुआ प्रदेश' घोषित कर दे। वह यह भी आदेश कर सकता था कि शासन विधान उस प्रदेश में परिवर्तित रूप से जारी होगा।❀

इन पिछड़े हुये प्रदेशों की ओर से व्यवस्थापिका-सभा में कोई प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व नहीं था और न व्यवस्थापिका-सभा का उन पर कोई नियंत्रण था। सपरिषद् गवर्नर को उसके शासन-प्रबंध का अधिकार था।

❀Government of India Act 1919 Sec. 52 A (2)

सायमन कमीशन की सिफ़ारिश—सायमन कमीशन (१६३०) की यह सिफ़ारिश थी कि इन प्रदेशों का शासन भारत-सरकार को सौंप दिया जाय। किन्तु पार्लिमैंटरी कमेटी (१६३४) ने निश्चय-पूर्वक यह शिफ़ारिश की कि इन प्रदेशों का शासन गवर्नर के हाथों में दे दिया जाय और "इनके संबंध में मंत्रियों को सम्मति देने का वैधानिक अधिकार न होगा।" नवीन शासन-विधान की धारा ५२ (१) के अनुसार अर्द्ध प्रथक् प्रदेशों के सुशासन का विशेष उत्तरदायित्व गवर्नर पर है।

प्रथक् प्रदेशों की घोषणा—शासन-विधान की धारा ६१ (१) के अनुसार प्रथक् प्रदेश और अर्द्ध प्रथक् प्रदेश (partially excluded area) वही प्रदेश कहलायेंगे जिन्हें सम्राट कौंसिल आर्डर द्वारा प्रथक् घोषित कर देगा। शासन-विधान के पास हो जाने के छः मास के भीतर भारत-मंत्री 'आर्डर' का मशविदा पार्लिमैंट के सामने पेश करेगा। सम्राट "कौंसिल-आर्डर' द्वारा किसी भी समय—

(१) यह आदेश कर सकता है कि प्रथक् प्रदेश का समस्त भाग या कुछ भाग अर्द्ध प्रथक्-प्रदेश या उसका एक भाग बन जायगा।

(२) अर्द्ध प्रथक् प्रदेश या उसका कोई भाग अर्द्ध प्रथक् प्रदेश नहीं रहेगा।

(३) प्रथक् या अर्द्ध प्रथक् प्रदेशों की सीमाओं के संबंध में परिवर्तन किया जा सकेगा।

(४) प्रान्तों की सीमाओं के परिवर्तन या नवीन प्रान्त के निर्माण के बाद यह घोषित किया जा सकेगा कि जो प्रदेश पहले किसी प्रान्त में सम्मिलित नहीं था, वह अब प्रथक् या अर्द्ध प्रथक् प्रदेश है।

पृथक् प्रदेशों का शासन-प्रबन्ध—प्रान्त का गवर्नर अपने प्रान्त के ऐसे किसी भी प्रदेश की शान्ति और सुशासन के लिए नियम बना सकेगा और इस प्रकार बने हुए नियम संघीय या प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं के उन क़ानूनों को रद्द कर देंगे या उनमें संशोधन कर देंगे जो उस समय प्रदेश में प्रचलित होंगे। ऐसे नियम तुरन्त गवर्नर-जनरल को भेज दिये जाँयगे और जब तक वह स्वीकृति नहीं देगा, तब तक उन नियमों का कोई प्रभाव न होगा। पृथक् प्रदेश प्रान्त की कार्य-कारिणी सभा के अधीन हैं। प्रान्तीय या संघीय व्यवस्थापिका सभाओं का कोई भी क़ानून इन प्रदेशों में उस समय तक जारी न होगा जब तक कि गवर्नर स्पष्टतः यह आदेश न कर दे कि क़ानून इन प्रदेशों में जारी होगा।

गवर्नर स्वेच्छापूर्वक इन प्रदेशों का शासन करेगा। इन प्रदेशों के शासन-प्रबन्ध के लिए जो धन व्यय होगा उस पर प्रान्तीय असेम्बली सम्मति नहीं दे सकेगी।

कौंसिल-आर्डर—३१ जनवरी सन् १९३६ को 'कौंसिल-आर्डर' का ड्राफ्ट प्रकाशित हुआ है। उससे यह ज्ञात होता है कि कौंसिल-आर्डर में भारत-सरकार के प्रस्तावों को बिना किसी परिवर्तन के सम्मिलित कर लिया गया है। इन प्रदेशों में भारत के आदिम-निवासियों का अर्द्ध भाग बसा हुआ है। ८ पृथक् प्रदेश और २८ अर्द्ध पृथक् प्रदेश हैं।

पृथक् प्रदेशों और अर्द्ध पृथक् प्रदेशों के चुनाव में जिन सिद्धान्तों के आधार पर कार्य किया गया है, वे इस प्रकार हैं:—

१—पृथक् प्रदेशों के लिए सिफ़ारिशें सीमा-प्रान्त और आसाम में सीमा-प्रदेश तक सीमित हैं; और इनमें मद्रास के

पच्छिमी समुद्र तट पर स्थित लकाडिवे और मिनी-कोय द्वीप एवं उत्तरी पंजाब में सपिती, लाहौल सम्मिलित हैं जिनकी भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि वे प्रान्त के राज्य प्रबंध से अलग-से हो गये हैं।

२—अर्द्ध प्रथक् प्रदेशों में वे प्रदेश सम्मिलित हैं जिनमें आदिम-निवासी रहते हैं।

डा० जे. एच. हट्टन के विचार—डा० जे. एच. हट्टन (जो भारतीय जन-संख्या-रिपोर्ट के सम्पादक और केन्द्रिय असेम्बली में आसाम की ओर से सरकारी सदस्य हैं) ने अपने भाषण में भारत-सरकार की नीति को निम्नलिखित ढंग से प्रकट किया:—

डा० हट्टन ने कहा:—"आसाम में प्रथक्करण शिक्षा-संबंधी पिछड़ी दशा के आधार पर नहीं किया गया है। कारण यह है कि वहाँ मैदान और पहाड़ों की जनता के हितों में परस्पर विरोध है; पहाड़ियों को यह भय है कि मालगुज़ारी, जंगलों और मछली के व्यवसाय के संबंध में क़ानून-निर्माण के मामलों में बहु-मत की सम्मति का उनके आर्थिक हितों पर बुरा प्रभाव पड़ेगा।

"दक्षिणी भारत के द्वीपों के संबंध में यह कहा जा सकता है कि कोई भी निर्वाचित प्रतिनिधि समुद्र में १२५ मील से २५० मील के निर्वाचन-क्षेत्र से सम्पर्क रखने के योग्य न होगा, जहाँ कलक्टर तक दो वर्ष में एक बार भ्रमण करता है। भाषा और बोली की कठिनाइयाँ और भी अधिक हैं। कुछ गाँवों में एक सड़क से दूसरी सड़क के लोगों में भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोली जाती हैं। इसके अतिरिक्त पहाड़ी जातियों की प्राचीन रीति-रिवाजों के खिलाफ़ क़ानून बनाना विद्रोह का आवाहन करना

है, जो इन प्रदेशों में आसानी से हो सकता है। नागा पहाड़ियों में, जहाँ मैं २० वर्ष तक रहा हूँ, एक बार ऐसे विद्रोह के दमन के लिए २० लाख रुपये खर्च करने पड़े थे। आर्थिक पहलू से सभ्य-शासन-प्रबंध कीमती होगा।"❀

केन्द्रिय असेम्बली का प्रस्ताव—केन्द्रिय असेम्बली के अधिवेशन में ११ और १८ फरवरी सन् १९३६ ई० को प्रथक् प्रदेश-संबंध ड्राफ्ट-कौंसिल-आर्डर पर विचार किया गया। भारतीय लोकमत भारत को इस प्रकार विभाजित करने के विरुद्ध है। असेम्बली ने निम्न लिखित प्रस्ताव सर्व सम्मति से पास किया:—"यह असेम्बली सपरिषद् गवर्नर-जनरल से यह सिफारिश करती है कि गवर्नर-जनरल प्रथक् प्रदेशों और अर्द्ध प्रथक् प्रदेशों की जनता में शासन-प्रबंध का आदर्श वैसा ही रखने की कृपा करेंगे (जैसा कि ब्रिटिश प्रान्तों में है) और इस उद्देश से तत्संबंधी कौंसिल-आर्डर में उपयुक्त संशोधन कराने का प्रयत्न करेंगे।"

निम्न लिखित प्रान्त चीफ कमिश्नर के प्रान्त कहलायेंगे:—

चीफ कमिश्नर के प्रान्त — (१) ब्रिटिश बिलोचिस्तान (२) देहली (३) अजमेर-मेरवाड़ (४) कुर्ग (५) अन्दमान, निकोबर द्वीप और (६) पन्थ पिपलोदा।

गवर्नर-जनरल का राज्य-प्रबंध—इन समस्त चीफ-कमिश्नरों के प्रान्त का शासन-प्रबंध प्रत्यक्षतः गवर्नर-जनरल के अधीन होगा, किन्तु वह स्वेच्छा से नियुक्त चीफ कमिश्नर द्वारा शासन-प्रबंध करेगा।

❀ New Constitution of India: S. K. Lahiri. pp. 168 (1931).

अध्याय ६

प्रान्तीय न्याय-प्रबंध

ब्रिटिश-भारत में निम्न लिखित न्यायालय। हाईकोर्ट होंगेः--

हाईकोर्ट — (१) कलकत्ता (२) मद्रास (३) बम्बई (४) इलाहाबाद (५) लाहौर (६) पटना (७) अवध-चीफ़-कोर्ट (८) मध्य-प्रान्त की जुडिशल कमिश्नर कोर्ट (९) सिन्ध की जुडिशल कमिश्नर कोर्ट (१०) सीमा प्रान्त की जुडिशल कोर्ट। इनके अतिरिक्त शासन-विधान के अन्तर्गत जो अन्य हाईकोर्ट स्थापित की जायँगी; वे भी 'हाईकोर्ट' कहलायँगी। आसाम और उड़ीसा प्रान्तों में कोई हाईकोर्ट नहीं है।

हाईकोर्ट के जज—प्रत्येक हाईकोर्ट में चीफ जस्टिस और दूसरे जज होंगे, जिनकी संख्या समय-समय पर सम्राट निश्चित करेंगे। हाईकोर्ट के जजों की संख्या का निर्धारण कौंसिल-आर्डर द्वारा होगा। हाईकोर्ट के जज ६० वर्ष की आयु तक अपने पद पर रह सकेंगे।

जजों की पद से प्रथकता धारा २२० के अनुसार—हाईकोर्ट के जज निम्न लिखित आधारों पर अपने पद से हटाये जा सकेंगेः—

(१) जज द्वारा लिखित त्यागपत्र जो गवर्नर को भेजा गया हो।

(२) दुराचरण (misbehaviour) के आधार पर सम्राट द्वारा।

(३) यदि प्रिवी-कौंसिल की न्याय-समिति (Judicial Committee) यह रिपोर्ट दे कि किसी जज को शारीरिक या मानसिक दुर्बलता के कारण पद से हटा दिया जाय, तो सम्राट उसे पद से हटा देगा।

उपरोक्त धाराओं से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि पार्लिमेंट को जो इन धाराओं के बनाने के लिए जिम्मेदार है, भारतीय व्यवस्थापिका-सभा और राजनीतिज्ञों पर तनिक भी विश्वास नहीं है। प्रत्येक स्वतंत्र-राज्य में व्यवस्थापिका-सभा को यह अधिकार है कि वह जज के दुराचरण के संबंध में प्रस्ताव पास कर उसे पद से हटा देने की प्रार्थना करे। यह कितनी विचित्र बात है कि 'प्रान्तीय स्वराज्य' के अन्तर्गत प्रान्तीय व्यवस्थापिका-सभा को इतना भी अधिकार नहीं दिया गया है कि वह अपने प्रान्त के न्याय-बिभाग के किसी जज के दुराचरण के संबंध में कोई प्रस्ताव पास कर सके। प्रान्तीय व्यवस्थापिका-सभा को यह भी अधिकार नहीं दिया गया है कि वह दुराचरण के अपराधी जज को पद से हटाने के संबंध में सम्राट से सिफ़ारिश कर सके। दूसरी ओर प्रिवी कौंसिल की न्याय-समिति को जज के दुराचरण की रिपोर्ट देने का अधिकार देकर न्याय की उपेक्षा की गई है। सातहज़ार मील की दूरी पर बैठे समिति के वे जज भारतीय जज के भारत में किये हुए अपराध के संबंध में अपनी रिपोर्ट देंगे, जिन्हें भारतीय समाज-विज्ञान और परिस्थितियों का कोई स्पष्ट ज्ञान नहीं। विधान में इसका कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है कि कमेटी रिपोर्ट देने से पूर्व कोई जाँच करेगी और जिस जज

के विरुद्ध दोषारोपण किया गया है, उसे अपनी रक्षा करने के लिए कोई सुअवसर दिया जायगा अथवा नहीं। यह भी स्पष्ट नहीं है कि जज के दुराचरण की शिकायत कौन करेगा।

जजों की योग्यताएँ शासन-विधान की धारा २२० (३) में हाईकोर्ट के जजों की योग्यताओं का उल्लेख इस प्रकार किया गया है:—

(१) इङ्गलैंड या उत्तरी आयरलैंड का बैरिस्टर जिसने १० वर्ष तक वकालत की हो या स्काटलैंड की 'फेकल्टी आफ एडवोकेट्स' का सदस्य जिसने १० वर्ष तक वकालत की हो; या

(२) 'इंडियन सिविल सर्विस' का वह सदस्य जो १० वर्ष तक 'सर्विस' में रहा हो और उसने कम से कम तीन साल तक ज़िला जज के पद पर कार्य किया हो; या

(३) जो पाँच वर्ष तक ब्रिटिश भारत में जुडीशल आफ़िस में रहा हो; किन्तु यह जुडीशल-पद सब-आर्डीनेट जज या खफ़ीफा जज के पद से निम्न न हो; या

(४) जो १० वर्ष तक किसी हाईकोर्ट का वकील या ऐसी ही दो या अधिक कोर्टों का वकील रहा हो।

चीफ जस्टिस में उपरोक्त योग्यताओं के अतिरिक्त यह योग्यता भी होनी चाहिये कि उसने कम से कम तीन वर्ष तक बहैसियत हाईकोर्ट के जज के कार्य किया हो। श्रीयुत के० टी० शाह की यह सम्मति है कि—"हाईकोर्ट की बेंचों में इंडियन सिविल सर्विस के सदस्यों की नियुक्ति के प्रति भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में सदैव से संदेह रहा है; क्योंकि ये सदस्य हाईकोर्ट के जजों

की हैसियत से अपने दृष्टि-कोण और विचार-कोण को वैसा ही बना लेते हैं, जैसा कि 'सर्विस' के समय रहा होता है।" यह खेद-जनक है कि नवीन शासन-विधान ने भी इस दोष को दूर करने का प्रयत्न नहीं किया। संयुक्त-कमेटी ने यह सिफारिश की है कि आजकल की भाँति आगे भी हाईकोर्ट के एक तिहाई जज 'इंडियन सिविल सर्विस' में से नियुक्त किये जाँय।

वेतन वृति आदि—जजों की वृति व वेतनादि कौंसिल-आर्डर द्वारा नियत किये जावेंगे।

'सिविलियनों' की हाईकोर्ट के जज के पद पर नियुक्ति—पार्लिमैंटरी संयुक्त कमेटी रिपोर्ट में लिखा है कि:—"इस विषय में हमारा यह स्पष्ट मत है कि·······'इंडियन-सर्विस' जज न्याय विभाग में एक महत्वपूर्ण और मूल्यवान् तत्व है और उसकी उपस्थिति से हाईकोर्ट की क्षमता बढ़ती है। ऐसा कहा जाता है कि वे अपने पूर्व अनुभव के कारण प्रजा के विरुद्ध अपनी मनोवृत्ति शासन के पक्ष में रखते हैं; परंतु इस तर्क का हम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। हमें यह सन्तोष है कि वे बेंच में भारतीय ग्राम्य-जीवन और दशाओं का ऐसा ज्ञान लेकर आते हैं जो शहरों के वकीलों और बैरिस्टरों में सदैव नहीं पाया जाता।"

यह कथन सत्य का उपहास है कि एक आई. सी. एस. को उस वकील या बैरिस्टर की अपेक्षा ग्राम्य-जीवन और भारतीय दशाओं का अधिक परिज्ञान होता है, जिसका जन्म ही ग्राम में हुआ है, जिसका सम्पर्क दैनिक जीवन में ग्राम-वासियों से रहता है।

कलकत्ता बार असोसियसन (Bar Association) ने अपने आवेदन-पत्र में (जो पार्लिमैंट को भेजा गया था) यह लिखा है— "'इंडियन सिविल सर्विस जज' ज़िले में अपने कार्य-काल के समय, मुख्य रूप से फ़ौजदारी के कार्यों में लगे रहते हैं; उन्हें दीवानी क़ानून का अनुभव बिलकुल नहीं होता।........'हाई-कोर्ट के मामलों में ऐसे प्रश्न उलझे रहते हैं जिनका विविधि क़ानूनों से संबंध होता है, जैसे— कम्पनी क़ानून, व्यापारिक क़ानून, सामुद्रिक क़ानून, आय कर क़ानून, न्याय (Equity) और शासन-विधान-क़ानून।...... ऐसे प्रश्नों का निर्णय करने के लिए सिविल सर्विस के जज की योग्यता बिलकुल अपर्याप्त होती है।"❀

अस्थायी जजों की नियुक्तियाँ—यदि किसी कारण से हाईकोर्ट के जज या चीफ़ जस्टिस का पद रिक्त हो जाय तो गवर्नर-जनरल स्वेच्छापूर्वक उपयुक्त योग्य व्यक्ति को जज नियुक्त करेगा।

अङ्गरेज़ी बार-कौंसिल के विचार—अङ्गरेज़ी बार की जनरल-कौंसिल की विशेष समिति ने बड़े अनुसन्धान के पश्चात् अपनी रिपोर्ट में यह लिखा है कि न्याय-विभाग संबंधी प्रस्तावित धाराओं में दो परिवर्तन हैं जिन पर बार-कौंसिल को गम्भीरता से विचार करना चाहिये। पहला परिवर्तन चीफ़ जस्टिस के पद से संबंध रखता है। कौंसिल रिपोर्ट में यह लिखा है कि यह "एक अत्यधिक बुद्धिहीनता-पूर्ण और अनावश्यक परिवर्तन है" कि चीफ़ जस्टिस के पद के लिए 'इंडियन सिविल सर्विस' के सदस्य योग्य समझे जाँय और शिक्षण-प्राप्त एवं अनुभवी वकील की योग्यताएँ कुछ भी न मानी जाँय।

❀ Amrit Bazar Patrika January 30, 1935.

कौंसिल की यह भी राय है कि भारत में हाईकोर्ट स्वतंत्र न्याय-संस्थाएँ हों और उसका देश की कार्य-कारिणी से कुछ भी संबंध न होना चाहिये।

दूसरा परिवर्तन ज़जों की योग्यताओं से संबंध रखता है। कौंसिल की यह राय है कि भारत में हाईकोर्टों में जनता का विश्वास उत्पन्न करने और उन्हें स्वतंत्र न्याय-संस्थाओं का रूप देने के लिए यह ज़रूरी है कि सन् १८६१ के क़ानून में परिवर्तन किया जाय। (१) सिविल सर्विस के मेम्बरों का अनुपात कम कर दिया जाय; (२) शिक्षण-प्राप्त वकीलों का अनुपात बढ़ा दिया जाय।

अधीनस्थ न्याय-विभाग

हाईकोर्ट के अन्तर्गत समस्त न्यायालयों पर उसका सामान्य नियंत्रण रहेगा, किन्तु जजों की नियुक्ति का उसे अधिकार नहीं है। संयुक्त पार्लिमेंटरी कमेटी की यह सम्मति है कि अधीनस्थ न्याय-विभाग को स्वतंत्र बनाना चाहिये। शासन-विधान में यह स्पष्ट रूप से विधान है कि ज़िला जज❀ की नियुक्ति गवर्नर स्वेच्छापूर्वक करेगा; किन्तु नियुक्ति करने से पूर्व हाईकोर्ट से परामर्श किया जायगा। पार्लिमेंटरी कमेटी ने यह सिफारिश की है कि ज़िला जज की नियुक्ति के लिए यदि उम्मीदवार 'इंडियन सिविल सर्विस' का मेम्बर है, तो गवर्नर मंत्रियों की सिफारिश पर हाईकोर्ट से परामर्श करने के बाद नियुक्ति करेगा। ज़िला जज की पदोन्नति मंत्रियों की सिफारिश

❀ 'ज़िला जज' में एडीसनल ज़िला जज, ज्वाइंट ज़िला जज, असिस्टेंट ज़िला जज, खफीफा जज, चीफ प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रेट, सैसन्स जज, एडीशनल सैसन्स जज और असिस्टेंट सैसन्स जज सम्मिलित हैं।

और हाईकोर्ट के परामर्श से की जायगी। यदि गवर्नर इस सिफारिश से सहमत नहीं होगा, तो वह उसे स्वीकार नहीं करेगा।

प्रान्तीय 'जुडीशल सर्विस'—सब-आर्डिनेट जज और मुन्सिफी के संबंध में गवर्नर हाईकोर्ट और पब्लिक सर्विस कमीशन से परामर्श करके, अपने व्यक्तिगत निर्णय से जुडीशल सर्विस में भर्ती होनेवाले उम्मीदवारों की योग्यताओं के विषय में नियम बनायेगा। पब्लिक सर्विस कमीशन नियुक्ति के लिए उम्मीदवारों का चुनाव करेगा। पब्लिक सर्विस कमीशन केवल परामर्श देगा, किन्तु मंत्री उनकी राय को अस्वीकार नहीं करेगा और न उसके बिना सिफारिश ही करेगा।

शासन तथा न्याय विभाग का पृथक्करण

कांग्रेस के पद-ग्रहण के वाद प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं में जिन विषयों पर महत्वपूर्ण वाद-विवाद हुये हैं, शासन और न्याय-विभाग का पृथक्करण भी उनमें से एक है। सन् १८८१ में जब कांग्रेस की स्थापना हुई थी, तब से वह यह माँग सरकार के सामने पेश करती आयी है। किन्तु इस दशा में कोई सुधार नहीं हुआ। यह तो एक प्रकट रहस्य है कि कलेक्टर ज़िले का अधिकारी होता है; वह पुलिस का सबसे बड़ा अफ़सर है और साथ-साथ ज़िले का मजिस्ट्रेट भी होता है। डिप्टी कलेक्टर उसके अधीन होते हैं; मजिस्ट्रेट, जिनमें आनरेरी मजिस्ट्रेट भी सम्मिलित हैं, उसके अधीन होते हैं। कलेक्टर पुलिस-विभाग का प्रमुख होने के कारण फ़ौजदारी के मुकद्दमों का चलाने वाला (Prosecutor) भी होता है। जो मुकद्दमे (जैसे चोरी, डकैती, हत्या, नारी-अपहरण, राजद्रोह इत्यादि) पुलिस द्वारा चलाये जाते हैं, उनका

संचालन और देख-भाल कलेक्टर के हाथों में है। इसलिए यह बात न्याय के विरुद्ध है कि जो व्यक्ति मुस्तगीस (वादी) बन कर मुक़द्दमा दायर करे, वही व्यक्ति मजिस्ट्रेट की कुर्सी पर बैठ कर उसी मुक़द्दमे का फ़ैसला भी करे। संयुक्त-प्रान्त के न्याय-विभाग के मंत्री माननीय डा० कैलाशनाथ काटजू ने एक लेख में लिखा है कि—यह आवश्यक प्रतीत होता है कि फ़ौजदारी का मुक़द्दमा ऐसे मजिस्ट्रेट की अदालत में चलाया जाय, जिसे मुक़द्दमे के संबंध में पहले से किसी प्रकार की भी जानकारी न हो। साथ ही उस मुक़द्दमे के संबंध में किसी प्रकार की व्यक्तिगत इच्छा या रुचि भी न हो। इस प्रकार का मजिस्ट्रेट किसी प्रकार के पक्षपात या ईर्षा द्वेष से अपने हृदय को रिक्त करके गवाहियों के आधार पर ही अपनी तजवीज देगा। मुक़द्दमा करते समय वह मजिस्ट्रेट राज्य तथा अभियुक्त दोनों की ओर समान दृष्टि रखेगा।"

आगे इसी लेख में माननीय डा० काटजू ने लिखा है—"हमें तो न्याय-विभाग की इस प्रकार की व्यवस्था करने की आवश्यकता है कि न्याय का जहाँ तक संबंध हो, हमारे मजिस्ट्रेट या जज संसार के किसी भी व्यक्ति से प्रभावित न हो सकें, चाहे वह व्यक्ति कलेक्टर हो, कमिश्नर हो, मिनिस्टर हो, व्यवस्थापिका-सभा का सदस्य हो या सारी की सारी असेम्बली ही क्यों न हो ?

"न्याय-विभाग के संबंध में पवित्रता रखना राज्य का पुण्यतम कर्त्तव्य है। अपने कर्त्तव्य का पालन करने में जज या मजिस्ट्रेट को पूर्ण स्वाधीनता होनी चाहिये।"❀

❀ 'शासन और न्याय का पृथक्करण' लेखक माननीय डा० काटजू कांग्रेस-मिनिस्टरी-अंक सरस्वती नवम्बर १९३७ पृष्ठ ४६७

संयुक्त प्रान्त के प्रधान-मंत्री माननीय पं० गोविन्द बल्लभ पन्त ने १४ सितम्बर १६३७ को प्रान्तीय असेम्बली के अधिवेशन में, अपने भाषण में इस प्रश्न के संबंध में यह कहाः—

"मेरे विचारों में बिलकुल परिवर्त्तन नहीं हुआ है। इन वर्षों में मेरा यह विश्वास और भी दृढ़ हो गया है कि इन दोनों कार्यों का पूर्ण पृथक्करण आवश्यक है। किन्तु हमें इस प्रश्न की जाँच करनी है और अर्थ के प्रश्न पर भी विचार करना है।"†

---

† The Hindustan Times 15 September 1937.

अध्याय ७

प्रान्तीय शासन-प्रबंध

पबलिक सार्विस का संगठन

सायमन-कमीशन रिपोर्ट के शब्दों में भारत में 'शासन ही राज्य-प्रबंध है।' देश का सुशासन और व्यवस्था कार्य-कुशल पबलिक सर्विस के सदस्यों पर निर्भर है। भारतीय लोकमत सदैव इस बात पर जोर देता रहा है कि भारतीय 'सर्विसों' में शीघ्र ही 'भारतीय-करण किया जाय; परन्तु ब्रिटिश सरकार और पार्लिमेंट इस संबंध में सदैव उदासीन रहे हैं। शासन-प्रबंध का उत्तरदायित्व सरकारी कर्मचारियों (Public Servants) पर है। भारत में सरकारी-कर्मचारी ६ भागों में बँटे हुये हैं:—

(१) अखिल भारतीय (२) केन्द्रिय (प्रथम श्रेणी) (३) केन्द्रिय (द्वितीय श्रेणी) (४) रेलवे (प्रथम श्रेणी) (५) रेलवे (द्वितीय श्रेणी) (६) प्रान्तीय।

उपरोक्त 'नौकरियों' के लिए नियुक्तियाँ भारत-मंत्री, गवर्नर जनरल, रेलवे अधिकारियों और प्रान्तीय सरकार या गवर्नर द्वारा होती हैं। इन सर्विसों की नियुक्ति के लिए प्रान्तों में 'पबलिक

सर्विस' कमीशन स्थापित किये गये हैं, जो उम्मीदवारों का चुनाव (Selection) और प्रतियोगिताओं का प्रबंध करते हैं। 'अखिल भारतीय सर्विस' में निम्न लिखित नौकरियाँ सम्मिलित हैं:—

(१) इंडियन सिविल सर्विस (२) इंडियन पुलिस सर्विस (३)इंडियन जंगल सर्विस (४)इंजीनियर सर्विस (५) मेडीकल सर्विस (सिविल) (६) शिक्षा-सर्विस (७) कृषि सर्विस (८) पशु-चिकित्सा सर्विस। पहले भारत-मंत्री इन सर्विसों के लिए नियुक्तियाँ करता था। परन्तु सन् १९२४ से रोड और बिल्डिंग ब्राँच सर्विस आफ़ इंजीनियर, एजुकेशनल सर्विस, कृषि-सर्विस और पशुचिकित्सा सर्विस के लिए वह नियुक्तियाँ नहीं करता।

अखिल भारतीय सर्विस

उपरोक्त 'सर्विसों' में १ जनवरी सन् १९३३ ई० को भारतीयों और यूरोपियनों की संख्या निम्न प्रकार थी:—

१	२	३	४
नौकरी का नाम	यूरोपियन	भारतीय	योग
सिविल सर्विस	८१९	४७८	१२९७
पुलिस ,,	५०५	१५२	६६५
जंगल ,,	२०३	९६	२९९
इंजीनियर ,,	३०४	२९२	५९६
मेडीकल सिविल ,,	२००	९८	२९८
शिक्षा ,,	९६	७९	१७५
कृषि ,,	४६	३०	७६
पशु चिकित्सा ,,	२०	२	२२
	२१९३	१२२७	३४२८

सर जार्ज शुष्टर ने सन् १९३०-३१ के भारतीय सरकार के बजट पर अपने भाषण में इन 'सर्विसों' के व्यय पर जो प्रकाश डाला है उससे यह स्पष्ट हो जायगा कि भारत में शासन-प्रबंध अन्य स्वतंत्र राष्ट्रों से कितना अधिक महँगा और खर्चीला है:—

"रेलवे-विभाग को छोड़कर, सिविल विभागों में समस्त अफसरों, यूरोपियन, भारतीय, प्रान्तीय और केन्द्रिय अधिक व कम वेतन पाने वालों के वेतन प्रायः ५७ करोड़ रुपये सालाना हैं। इस व्यय के लिए १६ करोड़ केन्द्रिय सरकार और ४१ करोड़ रुपये प्रान्तीय सरकारें देती हैं। यह धन 'गज़टेड' अफसरों और आफ़िसों पर व्यय होता है। आफिसों में समस्त क्लर्क और कम वेतन वाले स्टाफ सम्मिलित हैं। इनके अधिक से अधिक वेतन ५००) रुपये मासिक तक हैं। इन पर १६ करोड़ रुपये व्यय होते हैं जिनमें से चार करोड़ केन्द्रिय सरकार और १२ करोड़ रुपये प्रान्तीय सरकारें देती हैं। साथ-साथ यह भी उल्लेख कर दें कि इन कुल रुपयों में से अंगरेज़ अफसरों पर ६½ करोड़ रुपये ख़र्च किये जाते हैं।" (बजट-भाषण १९३०-३१)

अखिल भारतीय सर्विस के सदस्य प्रान्तीय सरकारों के अधीन कार्य करते हैं; परंतु उनकी नियुक्तियाँ भारत मंत्री द्वारा होती हैं। उनके हितों की रक्षा के लिए वह सबसे अन्तिम अधिकारी है। प्रत्येक अखिल भारतीय सर्विस के मेम्बर भारत के किसी भी भाग में नियुक्त किये जा सकते हैं। यदि उन्हें केन्द्रिय सरकार के अधीन हस्तान्तरित न किया जाय, तो उनका सारा कार्य-काल उस प्रान्त में ही बीतता है जिसमें उनकी नियुक्तियाँ की जाती हैं।

केन्द्रिय सर्विस—जो सर्विसें भारत-सरकार के अधीन हैं, वे केन्द्रिय सर्विस कहलाती हैं। केन्द्रिय सर्विस के अन्तर्गत (१) केन्द्रिय सेक्रेट्रियेट (२) रेलवे सर्विस, डाक-तार सर्विस, इम्पीरियल कस्टम सर्विस सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं। इनमें से बहुत कम सर्विसों की नियुक्तियाँ भारत-मंत्री द्वारा की जाती हैं, शेष सर्विसों की नियुक्तियाँ भारत-सरकार के हाथों में हैं। उपरोक्त सर्विसों के वेतनों में २० करोड़ रुपये और रेलवे सर्विस के वेतनों में २० करोड़ रुपये व्यय होते हैं। इस प्रकार १०० करोड़ रुपये सालाना वेतनों में ख़र्च किया जाता है, जो कुल सरकारी ख़र्च का ३०% प्रतिशत से अधिक भाग है।

प्रान्तीय सर्विस—प्रान्तीय सर्विसों (इनमें अखिल भारतीय सर्विसों के वह मेम्बर सम्मिलित नहीं हैं जो प्रान्तीय सरकारों के अधीन प्रान्तों में कार्य करते हैं और अधिकांश अधीनस्थ सर्विसें भी सम्मिलित नहीं हैं) में प्रायः सब भारतीय हैं और मिडिल ग्रेड में प्रान्तीय शासन प्रबंध के समस्त क्षेत्र पर उनका अधिकार है। इन सर्विसों के लिये नियुक्तियाँ प्रान्तीय सरकारों द्वारा होती हैं और यह प्रवृति अब बढ़ती जा रही है कि 'सर्विस' में अपने प्रान्त के उम्मीदवारों को ही जगहें दी जाती हैं; दूसरे प्रान्तों के उम्मीदवारों को नहीं। शासन-प्रबंध के अधिकांश विभागों में अखिल भारतीय और प्रान्तीय सर्विसों के मेम्बर साथ-साथ कार्य करते हैं; किन्तु पहली सर्विस के मेम्बर उच्च पदों पर हैं।

सिविल सर्विस

प्रत्येक सिविल सर्विस का सदस्य सम्राट की इच्छानुसार अपने पद पर रहेगा। सम्राट की सर्विस का कोई भी सदस्य उस अफ़सर से नीचे पद वाले अफ़सर द्वारा पद-च्युत नहीं किया जायगा

जिसने उसकी नियुक्ति की है। किसी भी सदस्य को उसे अपनी रक्षा के लिये अवसर दिये बिना, न तो पद-च्युत किया जायगा और न उसे उसके पद से निम्न पद दिया जायगा। किन्तु यह नियम निम्नलिखित दशाओं में प्रयोग में नहीं लाया जायगाः—

(१) यदि सदस्य अपने पद से इसलिए पद-च्युत किया गया है कि उसके आचरण के कारण वह फ़ौजदारी क़ानून के अनुसार अपराधी है; याः—

(२) पदच्युत करने वाला अधिकारी यह उचित समझे कि कारणों को प्रकट करना उचित न होगा। धारा २४०

सर्विसों की शर्तें और भर्ती—१—नवीन शासन-विधान के अन्तर्गत 'प्रान्तीय स्वराज्य' की स्थापना हो जाने के उपरान्त सिविल सर्विसों में नियुक्तियाँ निम्न प्रकार होंगीः—

(१) संघ-शासन की सर्विसों की नियुक्तियाँ गवर्नर-जनरल या ऐसे व्यक्ति द्वारा होंगी जिसे वह नियुक्त करेगा।

(२) प्रान्तीय शासन के संबंध में सिविल सर्विसों में भर्ती गवर्नर द्वारा की जायगी।

(३) सर्विसों के नियम व शर्तें वे होंगी जो संघ-शासन-सर्विस के संबंध में गवर्नर जनरल और प्रान्तीय सर्विस के संबंध में गवर्नर निर्धारित करेगा।

भारत-मंत्री द्वारा नियुक्ति

१—नवीन शासन-विधान की धारा २४४ के अनुसार 'प्रान्तीय स्वराज्य' की स्थापना के बाद (१) इंडियन सिविल सर्विस, (२) इंडिमन मेडीकल (सिविल) सर्विस और (३) इंडियन पुलिस सर्विस की नियुक्तियाँ, जब तक पार्लिमेंट अन्यथा निश्चय न करे, भारत-मंत्री द्वारा की जायँगीं।

२—यदि किसी समय गवर्नर-जनरल को अपने विशेषाधिकारों के प्रयोग के लिए किसी नवीन सर्विस के निर्माण की आवश्यकता हुई तो उसकी नियुक्तियाँ भारत-मंत्री करेगा।

३—उपरोक्त सर्विसों में मेम्बरों की संख्या कितनी होनी चाहिये इसका निर्णय भारत-मंत्री करेगा।

४—इस धारा के अधीन गवर्नर-जनरल का यह कर्तव्य होगा कि वह भारत-मंत्री के लिए सूचनाएँ देता रहे और सिफ़ारिशें भेजे। वह यह कार्य स्वेच्छानुसार करेगा।

धारा २४५ के अनुसार भारत-मंत्री आबपाशी-विभाग के लिए भी नियुक्तियाँ करेगा। धारा २४६ (१) के अनुसार भारत मंत्री को यह अधिकार है कि वह उन 'सिविल' पदों के लिए नियम बनावे जो उन व्यक्तियों द्वारा नियुक्त किये जायँगे जिन्हें भारत-मंत्री नियत करेगा। भारत-मंत्री की पूर्व स्वीकृति के बिना ऐसा पद तीन मास से अधिक समय के लिए रिक्त नहीं होगा। साथ-साथ उसको कोई और पद नहीं दिया जायगा। इन सुरक्षित स्थानों के लिए नियुक्ति और पदोन्नति अपने-अपने क्षेत्र में गवर्नर-जनरल या गवर्नर द्वारा की जायगी।

पेंशन, वेतन, वृत्ति—१—जिन व्यक्तियों की नियुक्ति भारत-मंत्री द्वारा होगी, उनके वेतन, अवकाश, पेंशन और अधिकारों के संबंध में भारत-मंत्री नियम बनायेगा।

२—भारत-मंत्री द्वारा नियुक्त सिविल सर्विस के किसी भी सदस्य की पदोन्नति या ऐसे व्यक्ति के लिए तीन मास के अवकाश के संबंध में कोई आज्ञा या ऐसे व्यक्ति के उस पद से, जिस पर

वह नियुक्त है, मुअत्तिल करने के लिए आज्ञा, गवर्नर-जनरल द्वारा अपने व्यक्तिगत निर्णय से दी जायगी। यदि वह व्यक्ति संघ-शासन के कार्यों के संबंध में नियुक्त किया गया है; और यदि वह प्रान्तीय स्वराज्य संबंधी कार्यों के लिए नियुक्त किया गया है तो ऐसी आज्ञा गवर्नर अपने व्यक्तिगत निर्णय से करेगा।

३—मुअत्तिली की अवधि में उसका वेतन गवर्नर-जनरल या गवर्नर की आज्ञा से कम हो सकेगा।

४—ऐसे व्यक्तियों का वेतन संघ या प्रान्त की आय से लिया जायगा।

भारत-मंत्री से अपील—१—भारत-मंत्री द्वारा नियुक्त सिविल नौकरी या पद पर नियुक्त किसी सदस्य को किसी 'आर्डर' से हानि पहुँचे और उसकी सर्विस की शर्तों पर प्रभाव पड़े तो यदि वह संघ की सर्विस में है, तो गवर्नर-जनरल से अथवा प्रान्तीय सर्विस में है तो गवर्नर से अपनी शिकायत कर सकेगा और वे अपने व्यक्तिगत निर्णय से उसकी जाँचें करेंगे तथा सत्य प्रमाणित होने पर न्याय करेंगे।

२—ऐसे व्यक्ति को दंड देने वाला, या उस पर दोषारोप करने वाला, या उसकी वृति या पेंशन के अधिकार पर आक्रमण करने वाला कोई आर्डर गवर्नर-जनरल या गवर्नर के सिवा और कोई व्यक्ति जारी नहीं कर सकेगा।

३—भारत में किसी भी अधिकारी द्वारा उसके विरुद्ध उपरोक्त प्रकार के किसी भी आर्डर के खिलाफ वह व्यक्ति भारत-मंत्री से अपील कर सकेगा।

पबलिक सर्विस कमीशन

नवीन शासन-विधान की धारा २६४ (१) (२) के अनुसार एक पबलिक सर्विस कमीशन संघ के लिए और एक पबलिक सर्विस कमीशन प्रत्येक प्रान्त के लिए होगा।

दो या इससे अधिक प्रान्त यह निश्चय कर सकते हैं कि:—

(१) उनके लिए केवल एक कमीशन होगा या

(२) एक पबलिक सर्विस कमीशन समस्त प्रान्तों की आवश्यकताओं की पूर्ति करेगा।

यदि प्रान्त का गवर्नर संघ के कमीशन से यह प्रार्थना करे कि वह प्रान्त की समस्त या किसी आवश्यकता की पूर्ति करे, तो गवर्नर-जनरल की सम्मति से संघ का कमीशन ऐसा कर सकेगा।

कमीशनों का संगठन—प्रान्तीय पबलिक सर्विस कमीशन के अध्यक्ष और मेम्बरों की नियुक्ति गवर्नर स्वेच्छापूर्वक करेगा। कमीशन के आधे सदस्य ऐसे होंगे जिन्होंने दस वर्ष तक भारत में सम्राट की सर्विस में रह कर कार्य किया हो।

गवर्नर स्वेच्छानुसार नियम बनाकर निम्नलिखित नियम निर्धारित करेगाः—

(१) कमीशन के सदस्यों की संख्या, उनका कार्य-काल और सर्विस की शर्तें; और:—

(२) स्टाफ के सदस्यों की संख्या और उनकी सर्विस की शर्तें।

अवकाश-प्राप्त करने पर—प्रान्तीय कमीशन का अध्यक्ष संघीय कमीशन का सदस्य या अध्यक्ष बनने के योग्य होगा अथवा किसी अन्य प्रान्तीय कमीशन का अध्यक्ष बन सकेगा।

किन्तु वह सम्राट के अधीन भारत में कोई दूसरी सर्विस न कर सकेगा।

पबलिक सर्विस कमीशन के कार्य—धारा २६६ के अन्तर्गत पबलिक सर्विस कमीशन के कार्य निम्नलिखित होंगेः—

१—प्रान्तीय सर्विस के लिए नियुक्तियाँ करने के लिए परीक्षाओं का प्रबंध करना।

२—भारत-मंत्री, गवर्नर-जनरल और भारत-मंत्री क्रमशः उन नियुक्तियों के संबंध में स्वेच्छापूर्वक नियम बनायेंगे, जिनके विषय में उन्हें शासन-विधान द्वारा अधिकार प्राप्त है। इन नियमों के अनुसार कमीशनों से राय ली जायगी।

(१) सिविल सर्विस या नयी भर्ती की प्रणाली के संबंध में सब मामलों पर;

(२) उन सिद्धान्तों के विषय में जिनके आधार पर सिविल सर्विस के लिए नियुक्तियाँ की जायँगीं; पदोन्नति या हस्तान्तरित किये जायँगे; उम्मीदवारों की उपयुक्तता के संबंध में।

(३) सिविल सर्विस के अनुशासन संबंधी मामलों में।

(४) किसी अफ़सर के विरुद्ध पदाधिकारी की हैसियत से कोई क़ानूनी कार्यवाही की गयी हो और उसने उसकी पैरवी में धन व्यय किया हो, तो उसके दावे के संबंध में।

(५) किसी अफ़सर के अपने पद पर कार्य करते समय शारीरिक आघात होने पर पेंशन के संबंध में।

(६) विविधि जातियों के लिए नियुक्तियों के अनुपात के संबंध में कमीशन से राय नहीं ली जायगी।

प्रान्तीय व्यवस्थापिका और कमीशन—प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा के 'एक्ट' द्वारा कमीशन के कार्यों में वृद्धि की जा सकेगी; परंतु इसके लिए दो शर्तें हैं।

(१) पहली शर्त यह है कि उपरोक्त उद्देश की पूर्ति के लिए गवर्नर की **स्वेच्छापूर्वक पूर्व स्वीकृति** के बिना उपरोक्त प्रकार का कोई बिल या संशोधन पेश नहीं किया जायगा।

(२) ऐसे प्रत्येक एक्ट की यह शर्त होगी कि वह **भारत-मंत्री की सम्मति के बिना** उन व्यक्तियों के संबंध में प्रयोग में नहीं लाया जायगा जिनकी नियुक्तियाँ भारत-मंत्री या सपरिषद् भारत-मंत्री द्वारा होगीं अथवा सम्राट की सेना के किसी व्यक्ति या सुरक्षित पद के किसी व्यक्ति के संबंध में।

३—यदि 'एक्ट' प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा का होगा, तो वह गवर्नर-जनरल की सम्मति के बिना, उन व्यक्तियों के संबंध में प्रयोग में नहीं लाया जायगा जो किसी प्रान्तीय सर्विस के सदस्य न होंगे।

पबलिक सर्विस कमीशन का व्यय—प्रान्तीय पबलिक सर्विस कमीशन का खर्च, जिसमें मेम्बरों के वेतन, वृत्तियाँ पेंशन और कमीशन के स्टाफ़ के खर्च सम्मिलित हैं, प्रान्तीय राज्य-कोष से लिया जायगा। प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा को कमीशन के व्यय पर बजट अधिवेशन में राय देने का अधिकार न होगा।

अध्याय ८

प्रान्तीय राजस्व

१—प्रान्तीय राजस्व का विकास

जब से ब्रिटिश-सरकार ने भारतीय शासन को अपने नियंत्रण में ले लिया तब से अखिल ब्रिटिश भारत के लिए एक बजट तैयार किया जाता था। प्रान्तों में उत्पन्न होने वाली आय और प्रान्तों में व्यय होने वाले खर्च भारत-सरकार के बजट में सम्मिल्लित रहते थे। यह व्यवस्था प्रान्तों के लिए अधिक हितकर नहीं थी। करों को एकत्र करना बड़ा दुरूह कार्य था और प्रान्तों का प्रान्तीय व्यय पर कोई नियंत्रण नहीं था। अतः सन् १८७० में पहली बार प्रथक् प्रान्तीय राजस्व की व्यवस्था की गयी। छोटे-छोटे विभागों का शासन-प्रबंध प्रान्तों को दे दिया गया और उनसे जो आय होने लगी वह प्रान्त को ही व्यय करने के लिए नियत कर दी गयी। सन् १९१९ ई० में जब शासन-विधान के अनुसार प्रान्तों में द्वैध-शासन-पद्धति की स्थापना करके उत्तरदायी शासन का शिलान्यास किया गया तब प्रान्तीय राजस्व अर्द्ध-स्थायी रूप प्राप्त कर चुका था। इसके अनुसार कुछ विभागों का प्रबंध प्रान्तीय सरकारों के अधीन था और

भारत-सरकार का उन पर साधारण नियंत्रण था। कुछेक मुख्य कर भारत-सरकार और प्रान्तीय सरकारों में विभाजित कर दिये गये। प्रान्तीय सरकारों को भारत-सरकार कुछ धन सहायता के रूप में देने लगी। राष्ट्रीय ऋण लेने का कार्य भारत-सरकार को सौंपा गया। उसका कार्य यह था कि वह ऋण को प्रान्तों में बाँट दे। मोन्टेग्यू-चेम्सफोर्ड की शासन-सुधार-योजना ने प्रान्तीय राजस्व को भारत-सरकार के राजस्व से पूर्णरीत्या अलग कर दिया।

२—नवीन शासन-विधान के अन्तर्गत प्रान्तीय राजस्व

नवीन शासन-विधान ने प्रान्तों और भारत-सरकार की आय के साधनों को बिल्कुल प्रथक्-प्रथक् कर दिया है, जो निम्न-प्रकार हैं:—

शासन-विधान की परिशिष्ट ७ के अनुसार प्रान्तों और संघ के आय के साधन निम्न प्रकार हैं:—

प्रान्तीय-आय—(१) मालगुज़ारी

(२) आबकारी कर (शराब, अफ़ीम, गाँजा, भंग, तथा अन्य मादक द्रव्यों पर जो प्रान्त में पैदा किये जाते हों)

(३) कृषि-संबंधी आय-कर

(४) भूमि और भवन-कर

(५) कृषि-भूमि के संबंध में उत्तराधिकारी-कर

(६) खनिज अधिकार-कर

(७) केपीटेसन-कर (poll-tax)

(८) व्यापार, व्यवसाय, आदि पर टैक्स

(९) पशुओं और नौकाओं पर कर

(१०) माल की बिक्री और विज्ञापनों पर कर

(११) चुंगी

(१२) आमोद-प्रमोद, मनोरंजन (जिनमें जुआ और सट्टा सम्मलित है) कर

(१३) स्टाम्प-कर

(१४) जल-मार्ग का प्रयोग करने वाले यात्रियों और उसके असबाबों पर टैक्स

(१५) टोल-टैक्स

(१६) सूची २ परिशिष्टि ७ में उल्लखित मामलों में फ़ीस

संघीय आय—(१) आयात-निर्यात कर (Customs)

(२) स्वदेशी माल पर (तम्बाखू तथा देश में उत्पन्न होने वाले अन्य माल पर मादक द्रव्य सम्मलित नहीं हैं)।

(३) कारपोरेशन

(४) नमक-कर

(५) आय-कर (Income Tax)

(६) कम्पनी या व्यक्तियों की पूंजी पर कर

(७) उत्तराधिकार-ड्यूटी

(८) हुंडी, चेक, तमस्सुक, बिल आफ लेडिंग, बीमा-पोलिसी, रसीद आदि पर स्टांप ड्यूटी

(९) रेलवे या वायुयान द्वारा यात्रा करने वाले व्यक्तियों और माल पर (Terminal Tax.)

(१०) रेल-किराया और भाड़े पर टैक्स

(११) संघीय व्यवस्थापक सूची में दिये हुये मामले के संबंध में फ़ीस ।

इस विभाजन में वर्गीकरण के उपयुक्त सिद्धान्त का आश्रय नहीं लिया गया है । न तो समस्त प्रत्यक्ष-कर प्रान्तों को दिये गये हैं और न सब अप्रत्यक्ष-कर संघ को ही दिये गये हैं । यह वर्गीकरण किसी युक्ति-संगत संघीय योजना के आधार पर नहीं किया गया है । कुछेक प्रान्त तो इतने छोटे हैं कि वे अपने खर्चों को अल्प आय से पूरा नहीं कर सकते और दूसरे प्रान्तों के पास इतना रुपया भी नहीं बचता जिससे कि वे राष्ट्र-निर्माण में सहायक कार्यों को कर सकें ।

केन्द्रिय कर-संग्रह की प्रणाली—कुछ आय के साधन ऐसे हैं कि जिनकी दरों का नियमन प्रान्तीय सरकारों को सौंप दिया गया है; कुछेक आय के साधन ऐसे हैं, जो संघ के राज्यों (Units) में विभाजित कर दिये जायँगे; किन्तु वे संघीय-सरकार द्वारा संग्रह किये जायँगे । धारा १३७ में यह लिखा है कि:—

१—उत्तरधिकार-कर ।

२—संघीय व्यवस्थापिका सूची की ५७ वीं संख्या में वर्णित स्टांप-ड्यूटी ।

३—टरमीनल टैक्स—रेलवे या वायुमान से जाने वाले यात्रियों व माल पर ।

४—रेलवे किराये पर टैक्स ।

उपरोक्त करों से जो आय प्राप्त होगी व प्रान्तों और संघीय राज्यों में बाँट दी जायगी; विभाजन का अनुपात संघीय व्यवस्थापिका सभा के क़ानून द्वारा निश्चय किया जायगा।

धारा १३७ की शर्त के अनुसार संघीय व्यवस्थापिका सभा किसी भी समय उपरोक्त करों में वृद्धि कर सकेगी और उससे जो आय होगी वह संघ की आय होगी।

आयकर—१—कृषि-संबंधी आय-कर को छोड़ कर, आय-कर संघ द्वारा लगाया जायगा और संघ ही उसका संग्रह करेगा; किन्तु आय-कर की असली आय का एक निश्चित भाग संघ की आय का भाग नहीं होगा। किन्तु वह उन प्रान्तों और संघ के राज्यों में बाँट दिया जायगा जिनमें कर लगाया गया है; किन्तु संघीय पेंशन आदि एवं चीफ कमिश्नर के प्रान्तों में जो आयकर प्राप्त होगा, उसे छोड़कर एक नियत भाग निश्चित किया जायगा।

(१) जो प्रतिशत इस धारा के अन्तर्गत नियत किया जायगा वह बाद में किसी कौंसिल आर्डर द्वारा बढ़ाया नहीं जायगा।

(२) संघीय व्यवस्थापिका सभा किसी भी समय उपरोक्त आय-कर में वृद्धि कर सकेगी और उससे जो आय प्राप्त होगी वह सब संघ की आय होगी।

कृषि संबंधी आय-कर—प्रान्तों को अधिकार दिया गया है कि वे कृषि-संबंधी आय पर कर लगा सकेंगे, यह कर मालगुजारी के अतिरिक्त लगाया जायगा। जिन प्रान्तों में भूमि का बन्दोवस्त स्थायी रूप से मौजूद है और जो नियत परिमाण में

मालगुज़ारी देते हैं, उन पर उनकी आय पर कर लगाया जायगा। इस कर से प्रान्तों को कोई विशेष आय नहीं हो सकती। स्थायी बन्दोबस्त जहाँ है, वहाँ कुछ आय हो सकेगी; परन्तु दूसरे प्रान्तों को कोई लाभ नहीं हो सकता।

उत्तराधिकार-कर—कृषि-सम्पति के उत्तराधिकार पर कर लगाया जाता है। भूमि और भवन पर भी कर लगाया जाता है। व्यवसायों, व्यापारों और काम-धन्धों पर भी कर लगाया जाता है। परन्तु ये सब कर प्रान्तों ने म्यूनिस्पल व ज़िला बोर्डों को सौंप दिये हैं। इसलिए प्रान्तों को इनसे भी कोई लाभ नहीं हो सकता।

नमक कर, स्वदेशी माल पर कर, निर्यात-कर—शासन-विधान की धारा १४० (१) के अनुसार नमक-कर और स्वदेशी माल पर संघीय कर और संघीय निर्यात-कर संघ द्वारा लगाये एवं संग्रह किये जायँगे; किन्तु यदि संघीय व्यवस्थापिका सभा का कोई क़ानून (Act) यह व्यवस्था करे, तो संघ की आय में से प्रान्तों और संघीय देशी राज्यों को, कर की समस्त असल आमदनी या उसके किसी भाग के बराबर धन, दे दिया जायगा और व्यवस्थापिका सभा के क़ानून द्वारा निर्धारित सिद्धान्तों के अनुसार प्रान्तों और राज्यों में बाँट दिया जायगा। धारा १४० (२) के अनुसार प्रत्येक वर्ष की जूट या जूट के माल पर निर्यात-कर (Export duty) की असल आमदनी का आधा भाग या अधिक भाग जो कौंसिल-आर्डर द्वारा तै किया जायगा, संघ की आय का भाग न होगा; किन्तु वह जूट पैदा करने वाले प्रान्तों व राज्यों में जूट के उत्पादन के अनुपात से बाँट दिया जायगा।

संघीय सरकार-द्वारा प्रान्तों को आर्थिक सहायता— शासन-विधान की धारा १४२ के अनुसार प्रान्तों को संघीय सरकार द्वारा सहायता देने की व्यवस्था की गयी है। १४२-(१) "सम्राट के कौंसिल-आर्डर द्वारा जो धन प्रति वर्ष प्रान्तों को सहायता के रूप में देना निश्चित किया जायगा वह सम्राट द्वारा प्रान्त की आवश्यकता के अनुसार निश्चय किया जायगा। विविधि प्रान्तों के लिए भिन्न-भिन्न रक़में निश्चित की जायँगीं।

किन्तु इस धारा के अनुसार, किसी बाद में जारी किये हुए कौंसिल आर्डर द्वारा, ग्रांट में उस समय तक वृद्धि नहीं की जायगी जब तक कि संघीय व्यवस्थापिका-सभा के दोनों चेम्बर गवर्नर-जनरल से इस प्रकार की सिफ़ारिश न करें कि ग्रांट बढ़ा दी जाय।

प्रान्तों को राष्ट्रीय ऋण प्राप्त करने का अधिकार— शासन-विधान की धारा १६३ (१) के अनुसार प्रान्तों की सरकारों को राष्ट्रीय-ऋण लेने का अधिकार दिया गया है। किन्तु यह ऋण उन मर्यादाओं के अनुसार ही लिया जायगा जिन्हें प्रान्तीय व्यवस्थापिका-सभाएँ क़ानून द्वारा निश्चय करेंगीं। कुछ शर्तों के साथ जिन्हें संघ निश्चय करेगा संघ प्रान्तों को ऋण दे सकेगा और जो रक़म प्रान्तों को ऋण में दी जायगी वह संघ की आय से ली जायगी। कोई प्रान्त संघ की सम्मति के बिना भारत से, बाहर से ऋण ग्रहण नहीं करेगा और न संघ की सम्मति के बिना उस दशा में ऋण ही लेगा जब कि संघ द्वारा या सपरिषद् गवर्नर-जनरल द्वारा दिया गया ऋण अभी चुकाया नहीं गया हो या जिसके विषय में संघ ने गारन्टी दी हो। इस धारा के अनुसार सम्मति उन शर्तों के साथ दी जा सकेगी जिन्हें संघ

निश्चय करेगा। इस समय सर ओटो नीमियर के निर्णय (Award) के अनुसार प्रान्तों पर क़र्ज़ा इस प्रकार है:—

नाम प्रान्त	ऋण (करोड़ों में)
मद्रास	६·७८१
बम्बई	२३·२५३
सिन्ध	४·५५२
संयुक्त-प्रान्त	२६·४७१
पंजाब	१७·८१४
मध्य प्रान्त	३·७८६

नीमियर का निर्णय

ब्रिटिश-सरकार ने निम्नलिखित विषयों में निर्णय देने के के लिए ब्रिटेन के सुप्रसिद्ध अर्थ-शास्त्री सर ओटो नीमियर को नियुक्त किया था। सर नीमियर ने प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना से पूर्व भारत में इस विषय पर जाँच की। निम्न-लिखित विषयों के संबंध में उन्होंने निर्णय दिया है:—

(१) अवधि जिसके भीतर संघ-शासन द्वारा संग्रहीत आयकर का बटवारा प्रान्तीय सरकारों में किया जायगा और इस विभाजन का अनुपात।

(२) जूट उत्पादन करने वाले प्रान्तों के लिए जूट के निर्यात-कर का अनुपात।

(३) संघीय साधनों से प्राप्त आय द्वारा उन प्रान्तों के लिए आर्थिक सहायता की रक़म और ढंग का निश्चय जो घाटे में हों।

सर नीमियर का उद्देश यह था कि प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना के समय प्रत्येक प्रान्त की दशा ऐसी हो कि वह राजस्व

साम्य स्थापित कर सके और विशेष रूप से उनके वजट घाटे के वजट न रहें। इसलिए उन्होंने प्रान्तों की पूर्व राजस्व-संबंधिनी दशा की जाँच की। प्रान्तों के राजस्व की स्थिति इस प्रकार रिपोर्ट में की हुई है:—

(यह अङ्क लाख रुपयों में दिये गये हैं)

प्रान्त	सन् १९३५–३६ ई०			सन् १९३६–३७ ई०		
	१ आय	२ व्यय	३ लाभ या हानि	आय	व्यय	लाभ या हानि
मद्रास	१५७२	१६०४	—३२	१५९०	१५९०	
बंबई	१३८०	१५०८	—१८	१२०४	१२०३	+ २
बंगाल	११४३	११५८	—१५	११४९	११९१	—४२
यू० पी०	११७९	११८४	— ५	११७१	१२४५	—७४
पंजाब	१०४६	१०५७	—११	१०८०	१०७८	+ २
बिहार उड़ीसा	५५४	५६१	— ७	४७०	४८२	—१२
सी० पी०	४५६	४८१	—२५	४८१	४९०	— ९
आसाम	२३६	२८३	—४७	२३७	३००	६३
सीमा प्रान्त ❀	१७०	१७६	— ६	१७०	१८०	—१०
उड़ीसा ❀	...	...	...	१६३	१६३	...
सिन्ध ❀	...	...	...	३१३	३१३	...

❀ इन तीन प्रान्तों का निर्माण नवीन-शासन विधान के अन्तर्गत हुआ है। इनकी आय में भारत-सरकार द्वारा प्रदत्त आर्थिक सहायता सम्मिलित है।

— घाटा सूचित करता है।

+ यह लाभ सूचित करता है।

इस जाँच के परिणाम स्वरूप यह स्पष्ट हो गया कि प्रायः प्रत्येक प्रान्त का बजट घाटे का रहता है; सर नीमियर की राय में यह कुल घाटा ४५० लाख रुपयों का है; इसी आधार पर उन्होंने प्रत्येक प्रान्त को आर्थिक सहायता देने को निर्णय किया है:—

	लाख रुपयों में
बंगाल	७५
बिहार	२५
सी० पी०	१५
आसाम	४५ + ७ आसाम रायफल के लिए
सीमा प्रान्त	१००
उड़ीसा	५० + १९ एक मुश्त
सिंध	१०५ + ५ एक मुश्त
यू० पी०	२५ पाँच साल तक
	योग ४५० लाख

प्रान्तों के लिए ४५० लाख रुपये कहाँ से आयँगे? इस पर विचार करने के लिए यह आवश्यक है कि प्रान्तों के अतिरिक्त केन्द्रिय बजट पर भी विचार किया जायः—

(लाख रुपयों में)

आर्थिक वर्ष	आय	व्यय	लाभ या घाटा
१९३०–३१	१२४६०	१३६१८	—११५८
१९३१–३२	१२१६४	१३३३९	—११७५

१६३४–३५	१२५१०	१२०१५	+ ४६५
१६३५–३६	१२४३७	१२१६५	+ २४२
१६३६–३७	१२२७७	१२२७०	— ७

सन् १६३४–३५ के अंक ग्राम-सुधार के लिए २८१ लाख रुपये ग्रान्ट तथा १७८ लाख रुपये दूसरी विशेष ग्रान्ट देने से पूर्व के हैं; सन् १६३५–३६ के अंक ४५ लाख रुपये सिन्ध और उड़ीसा के लिए भवनों के निर्माण के लिए देने से पूर्व के हैं। सन् १६३५–३६ और १६३६–३७ के व्यय में ११० लाख की ग्रान्ट जूट-उत्पादक प्रान्तों और १०० लाख रुपयों की आर्थिक सहायता सीमाप्रान्त के लिए सम्मिलित है, सन् १६३६–३७ के व्यय में १०८ लाख की ग्रान्ट सिन्ध और ५० लाख की ग्रान्ट उड़ीसा के लिए भी सम्मिलित है।

इससे भी यह प्रतीत होता है कि केन्द्रिय सरकार की आय के साधन और स्त्रोत भी अधिक व्यापक नहीं हैं।

प्रान्तों में आयकर विभाजन—नीमियर-निर्णय के अनुसार प्रान्तों में आय-कर से प्राप्त आय इस प्रकार विभाजित की जायगी।

प्रान्त	आयकर का अनुपात जो प्रान्त को दिया जायगा।
मद्रास	— १५
बम्बई	— २०
बंगाल	— २०
यू. पी.	— १५
पंजाब	— ८
बिहार	— १०

मध्यप्रान्त	—	५
आसाम	—	२
सीमाप्रान्त	—	१
उड़ीसा	—	२
सिन्ध	—	२
		१००

सर ओटो नीमियर ने यह अनुपात प्रान्तों की जनसंख्या और आय-कर दाताओं की संख्या के आधार पर निश्चय किया है।

प्रान्तीय ऋणों की छूट—निम्नलिखित ५ प्रान्तों ने १ अप्रेल १९३६ से पूर्व जो ऋण केन्द्रिय सरकार से लिया था वह छोड़ दिया जायगा; इस प्रकार वे प्रान्त निम्न प्रकार से लाभ में रहेंगेः—

बंगाल	—	३२	लाख वार्षिक
बिहार	—	२२	,, ,,
आसाम	—	१५½	,, ,,
सीमा प्रान्त	—	१२	,, ,,
उड़ीसा	—	९½	,, ,,
मध्यप्रान्त	—	१५	,, ,,

जूट कर की आय का विभाजन—निम्नलिखित प्रान्तों को संघीय जूट-कर की आय से निम्न प्रकार धन प्राप्त होगाः—

बंगाल	—	४२	लाख रुपये
बिहार	—	२½	लाख ,,
आसाम	—	२¼	लाख ,,
उड़ीसा	—	¼	लाख ,,

विशेष आर्थिक सहायता—शासन-विधान की धारा १४२ के अनुसार नीमियर-निर्णय के अन्तर्गत निम्नलिखित प्रान्तों को विशेष सहायता दी गयी है:—

संयुक्त-प्रान्त—२५ लाख रुपये (५ वर्ष तक)

आसाम—३० लाख रुपये + ७ लाख रुपये आसाम रायफल के लिए।

सीमा-प्रान्त—१०० लाख रुपये ५ साल के बाद पुर्नविचार किया जायगा।

उड़ीसा—४० लाख रुपये इनके अतिरिक्त ७ लाख प्रथम् वर्ष में और ३ लाख आगामी चार वर्षों में प्रति वर्ष।

सिन्ध—१०५ लाख रुपये १० साल तक; प्रथम् वर्ष में ५ लाख अतिरिक्त सहायता।

प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना के बाद प्रान्तीय बजट

सर ओटो नीमियर की राजस्व-संबंधिनी रिपोर्ट अत्यन्त दोष-पूर्ण है। उसने प्रान्तों के साथ बड़ा अन्याय किया है; जिस आधार पर उन्होंने निर्णय दिया है, वह उपयुक्त नहीं कहा जा सकता। शासन-प्रबंध का जो स्टैंडर्ड इस समय मौजूद है उसी के

आधार पर अपने सिद्धान्त स्थिर किये हैं। प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना के बाद यह स्वाभाविक है कि प्रान्त की लोकप्रिय सरकारें राष्ट्र-निर्माण के कार्यों की ओर अपनी शक्ति का व्यय करें; परंतु उनके पास अर्थ का अभाव रहेगा।

प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना के बाद ११ प्रान्तों में अर्द्ध-वर्ष (अक्टूबर १९३७ से मार्च १९३८) के लिए जो वजट बनाये गये हैं उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रान्तों में आर्थिक-संकट मौजूद है:—

वजट १९३७-३८

नाम प्रान्त	आय	व्यय	लाभ या घाटा
आसाम—	२८४७४०००	२८२४८०००	+ २२६०००
बंगाल—	१२५५०३०००	१२२१०५०००	+ ३३९८०००
बिहार—	५०६०००००	५०३३४०००	+ २६६०००
बंबई—	११९९५५०००	१२१७२२०००	— १७६७०००
मध्य प्रान्त—	४७४८४०००	४७४५३०००	+ ३१०००
सीमा प्रान्त—	१७९६९०००	१८५३१०००	— ५६२०००
मद्रास—	१५९३७३०००	१५९३६७०००	+ ६०००
उड़ीसा—	१८९५७०००	१८४३७०००	— ५००००
			{ यथार्थ दशा से घाटा प्रकट होता है।
पंजाब—	१०९०३९०००	१०८८६७०००	+ १७२०००
सिंध—	३४७५००००	३४७०१०००	+ ४९०००
यू० पी०—	१२५४०७०००	१२६६७५०००	— १२६८०००

संयुक्त-प्रान्त, उड़ीसा, बंबई और सीमा-प्रान्त के बजट घाटे के बजट हैं। इन प्रान्तों में प्रायः ३४½ लाख रुपयों का घाटा है।

संयुक्त-प्रान्तीय सरकार के प्रधान-मंत्री माननीय पं० गोविन्द बल्लभ पन्त ने ६ सितम्बर १९३७ को संयुक्त-प्रान्तीय असेम्बली के अधिवेशन में सन् १९३७-३८ का बजट पेश करते हुये अपने भाषण में सर आटोनीमियर के निर्णय की बड़े-कड़े शब्दों में आलोचना की है; माननीय प्रधान-मंत्री ने कहाः—

"जहाँ तक इस प्रान्त से संबंध है सर ओटो नीमियर का निर्णय लार्ड मेस्टन के निर्णय की अपेक्षा अधिक अनुचित और अन्यायपूर्ण है। सर ओटो नीमियर ने उन तमाम ऋणों को छोड़ दिया है जो भारत-सरकार का बंगाल, बिहार, आसाम, सीमाप्रान्त, उड़ीसा और मध्य प्रान्त पर हैं। शासन-विधान की समूची योजना दोषपूर्ण तो है ही किन्तु उसका राजस्व संबंधी भाग तो सबसे अधिक दोषपूर्ण है; केन्द्र और प्रान्तों के बीच में आय के साधनों का बटवारा बड़ा अन्याय पूर्ण है।..... अतएवतः जब तक हमें केन्द्र में आर्थिक स्वराज्य प्राप्त न हो जाय तब तक हमारे आर्थिक व राजस्व-संबंधी रोगों का कोई उपाय नहीं किया जा सकता।" ❀ सर ओटो नीमियर के निर्णय (Award) की संयुक्त-प्रान्त के उत्तरदायी शासन के प्रधान-मंत्री जैसे उत्तरदायी अधिकारी द्वारा जैसी आलोचना की गयी है, उस पर अब कोई टीका करना वांछनीय न होगा।

❀ संयुक्त प्रान्तीय सरकार के बजट (सन् १९३७–३८) पर प्रधान मंत्री माननीय पं० गोविन्द वल्लभ पन्त का भाषण।

प्रान्तीय स्वराज्य की सफलता

इसमें सन्देह नहीं कि नवीन-शासन-विधान की जैसी पेचीदा योजना निर्मित की गयी है, उसके कारण प्रान्तों को अधिकांश में केन्द्रिय-शासन पर निर्भर रहना पड़ेगा। यदि केन्द्रिय सरकार ने प्रान्तों को यथेष्ट सहायता—आर्थिक सहायता (Financial aid) और शासन तथा व्यवस्था (Legislation) के क्षेत्रों में पूरी स्वाधीनता न दी, तो इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि 'प्रान्तीय-स्वराज्य' का विनाश अवश्यम्भावी है। विगत सितम्बर १९३७ में केन्द्रिय (भारतीय) व्यवस्थापिका सभा के शिमला-अधिवेशन में सरदार सन्तसिंह ने इस आशय का एक प्रस्ताव रक्खा था कि केन्द्रिय-शासन के व्यय (Expenditure) में कमी करके धन बचाया जाय और वह धन प्रान्तोंकी आर्थिक सहायता में ख़र्च किया जाय। यह प्रस्ताव ५१ के विरुद्ध ७० के बहुमत से असेम्बली द्वारा पास किया गया। श्रीयुत सत्यमूर्ति तथा श्री आसफ़अली ने अपने भाषणों में बड़े तर्कपूर्ण और प्रभावशाली ढंग से यह बतलाया कि भारत-सरकार अपने ख़र्च से १२ करोड़ रुपये बचा कर प्रान्तों को आसानी से दे सकती है। इस प्रस्ताव पर बहस में यह भी बतलाया गया कि यह धन सेना के व्यय में कमी करने से आसानी से मिल सकेगा। यदि ब्रिटिश अफ़सरों की जगह भारतीय अफ़सरों को नियुक्त किया जाय तो १२ करोड़ की बचत हो सकती है। अर्थ-सदस्य सर जेम्स ग्रिग ने यह तो स्वीकार कर लिया कि ब्रिटिश अफ़सरों के स्थान में भारतीय अफ़सरों की नियुक्ति करने से १२ करोड़ रुपये की बचत हो जायगी; परंतु इस बचत को प्राप्त करने में एक लम्बा असो लगेगा।❀

❀ हिन्दोस्तान टाइम्स ५-९-३७

राज्य-परिषद् (Council of State) के विगत अधिवेशन में कमान्डर-इन-चीफ़ ने यह कहा था कि भारतीय-सेना में ब्रिटिश अफसरों को इसलिए रक्खा गया है कि प्रान्त स्वयं यह चाहते हैं कि आन्तरिक रक्षा व शान्ति के लिए उन्हें रक्खा जाय। श्री आसफ़अली ने यह बतलाया कि मैंने ११ प्रान्तों के प्रधान-मंत्रियों के पास पत्र भेज कर इस विषय में उनके विचार पूछे हैं और उनके आधारों पर यह घोषित किया जा सकता है कि प्रान्तों में से अधिकांश आज भारत में ब्रिटिश फौज को नहीं चाहते। श्री सत्यमूर्ति ने यह बिलकुल सत्य कहा है कि:—"कांग्रेस-मंत्रि-मंडल 'डैडलाक' पैदा करने के लिए ही डैडलाक पैदा नहीं करेंगे; किन्तु मैं अर्थ-सदस्य से यह कहूँगा कि यदि प्रान्तीय सरकारें राष्ट्रीय-निर्माण के कार्यों के लिए धन प्राप्त न कर सकेंगीं तो यह आप समझ लें कि चाहे कांग्रेस-मंत्रि-मंडल हो चाहे ग़ैर-कांग्रेसी-मंत्रि-मंडल तुम्हारे तथा-कथित प्रान्तीय स्वराज्य की मृत्यु हो जायगी।"

※ प्रथम् भाग समाप्त ※

द्वितीय भाग

संघ-शासन

अध्याय १

भारतीय संघ

नवीन-शासन-विधान (१६३५) में अखिल भारत, जिसमें ब्रिटिश भारत और देशी राज्य सम्मलित हैं, के लिए संघ-शासन का विधान है। सायमन-कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में भारत के लिए संघ-शासन प्रदान करने की सिफारिश सन् १६३० ई० में की थी। परन्तु सायमन कमीशन का ध्येय यह नहीं था कि एक दम ब्रिटिश-भारत और देशी राज्यों का संघ स्थापित करने के लिए प्रयत्न किया जाय। सायमन कमीशन की यह सिफ़ारिश थी कि ब्रिटिश भारत के शासन-विधान की रचना संघीय आधार पर की जाय और देशी रियासत या देशी रियासतों के समूह को उसमें सम्मिलित होने के लिए सुयोग दिया जाय। इसी आधार पर सामयन कमीशन ने ब्रिटिश भारत के लिए संघ-शासन की सिफ़ारिश की; परन्तु प्रथम गोलमेज-परिषद् (लन्दन) में अखिल भारतीय संघ की योजना पर विचार किया गया। इसमें देशी राज्यों के और ब्रिटिश भारत के मनोनीति सदस्य सम्मिलित हुए। सर तेजबहादुर सप्रू ने संघ-शासन के विकास में योग दिया और इस योजना को इस प्रकार जन्म मिला। इस प्रथम गोलमेज-परिषद् ने दो राजनीतिक भावनाओं के विकास में योग

दिया; वे हैं अखिल भारतीय संघ-शासन और केन्द्रिय-उत्तरदायित्व।

ब्रिटिश प्रान्तों में प्रान्तीय-स्वराज्य का स्वाभाविक परिणाम ब्रिटिश-भारत में संघ-शासन की स्थापना है। किन्तु ब्रिटिश भारत के संघ का प्रश्न देशी राज्यों के संघ के साथ इतना मिल गया कि संघ के लिए प्रस्ताव का अर्थ ही यह समझा जाने लगा कि अखिल भारत में संघ की स्थापना की जाय; और इसमें योग दिया नरेशों ने।

संयुक्त पार्लिमैंटरी कमेटी की रिपोर्ट में यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है कि:—"संघों की उत्पत्ति, साधारणतया स्वाधीन राज्यों या शासनों के समझौते से होती है, जिसके अनुसार वे प्रभुत्व का एक निश्चित अंश नवीन केन्द्रिय-शासन को समर्पित कर देते हैं।" अब प्रश्न यह है कि प्रस्तावित भारतीय संघ में सम्मिलित होने वाले प्रान्तों में प्रभुत्व है ही कहाँ जिसे या जिसके एक अंश को केन्द्रिय सरकार को सौंपा जाय; ब्रिटिश भारत का प्रभुत्व ब्रिटिश पार्लिमेंट में है इसके अतिरिक्त संघ-शासन में सम्मलित होने के लिए प्रान्तों से कोई समझौता भी नहीं किया गया है। दूसरी ओर देशी राज्यों के लिए यह शर्त है कि वे स्वेच्छानुसार संघ में सम्मलित हो सकते हैं।

नवीन भारतीय शासन-विधान (सन् १६३५) की धारा ५ (१) में यह लिखा है कि ब्रिटिश सम्राट के लिए यह वैध होगा कि वह 'घोषणा' (Proclamation) द्वारा नियत दिवस से भारत में संघ-शासन की घोषणा करें; किन्तु इस प्रकार की घोषणा करने से पूर्व दो शर्तें पूरी हो जानी चाहिए।

१—प्रथम शर्त यह है कि इस विषय में संघ-शासन की स्थापना की स्वीकृति पार्लिमैंट के दोनों चेम्बरों द्वारा दी जाय।

२—दूसरी शर्त यह है किः—

(१) उन देशी राज्यों ने संघ में सम्मिलित होना स्वीकार कर लिया हो जिनके नरेशों को राज्य-परिषद् (Council of State) के लिए ५२ सदस्य भेजने का अधिकार हो; और

(२) उन देशी राज्यों की कुल मिला कर जनसंख्या समस्त देशी राज्यों की जन-संख्या का आधा भाग हो।

इस प्रकार भारतीय-संघ की स्थापना का प्रश्न देशी राज्यों के नरेशों, पार्लिमैंट और सम्राट की स्वेच्छा पर निर्भर है। इस चित्र में स्वायत्त प्रान्तों को कोई भी स्थान नहीं दिया गया है। परन्तु सत्य तो यह है कि ब्रिटिश भारत के प्रान्तों की जनता शासन-विधान (१६३५) द्वारा निर्मित संघ-शासन को स्वीकार नहीं करती।

अध्याय २

संघ और देशी राज्य

——:०:❀:०:——

१—प्रवेश-पत्र

जो देशी राज्य संघ में सम्मिलित होना चाहें उनके लिए यह आवश्यक है कि वे प्रवेश-पत्र पर हस्ताक्षर करें। शासन-विधान की धारा ६ के अनुसारः—

१—"कोई भी राज्य संघ में सम्मिलित उसी समय माना जायगा जब कि सम्राट उसके नरेश द्वारा हस्ताक्षर किये हुए प्रवेश-पत्र को स्वीकार कर ले। इस प्रवेश-पत्र द्वारा वह स्वयं अपनी और अपने उत्तराधिकारियों की ओर से—(१) यह घोषणा करेगा कि वह इस मन्तव्य से शासन-विधान के अन्तर्गत संघ में सम्मिलित होता है कि सम्राट, भारत का गवर्नर-जनरल, संघीय व्यवस्थापिका सभा, संघीय-न्यायालय और दूसरी संघीय-संस्थाएँ जो संघ के लिए स्थापित होंगी, इस प्रवेश-पत्र के कारण, किन्तु उसकी शर्तों के अनुसार और केवल संघ के उद्देश्यों के लिए, उसके राज्य (State) के संबंध में उन कार्यों को करेंगे जिनके लिए शासन-विधान ने उन्हें अधिकार दिये हैं। (२) इस प्रवेश-पत्र द्वारा शासन-विधान की जिन

धाराओं को स्वीकार किया है, उनके यथोचित रीत्यानुसार अपने राज्य में पालन करवाने के उत्तरदायित्व को स्वीकार करता है।" किन्तु इस उपधारा के साथ एक बड़ी महत्वपूर्ण शर्त है और वह यह है कि प्रवेश-पत्र पर हस्ताक्षर इस शर्त पर भी किये जा सकते हैं कि किसी नियत तिथि को या उससे पूर्व संघ की स्थापना की जायगी और ऐसी दशा में यदि उपरोक्त नियत तिथि तक संघ की स्थापना न हुई तो वह राज्य संघ में सम्मिलित नहीं समझा जायगा।

२—प्रवेश-पत्र में इस बात का स्पष्ट उल्लेख होगा कि संघीय व्यवस्थापिका उसके राज्य के संबंध में किन-किन विषयों में क़ानून बना सकेगा; इस प्रवेश-पत्र में संघ की कार्य कारिणी सत्ता और संघीय व्यवस्थापिका सभा पर आरोपित मर्यादाओं का भी उल्लेख होगा।

३—देशी राज्य का नरेश एक पूरक प्रवेश-पत्र द्वारा, जिस पर उसने हस्ताक्षर किये हों और सम्राट ने स्वीकार कर लिया हो, अपने राज्य के प्रवेश-पत्र में परिवर्त्तन भी कर सकेगा और संघ के लिए सम्राट या किसी संघीय संस्था द्वारा किये जाने योग्य कार्यों में वृद्धि कर सकेगा।

४—प्रत्येक प्रवेश-पत्र की यह शर्त होगी कि द्वितीय परिशिष्ट में दी हुयी धाराओं में पार्लिमैंट द्वारा संशोधन हो सकेगा।

५—भारत में संघ की स्थापना के बाद यदि कोई नरेश यह प्रार्थना करेगा कि उसका राज्य संघ में सम्मिलित कर लिया जाय, तो गवर्नर-जनरल उसकी इस प्रार्थना को सम्राट के पास भेज देगा। किन्तु संघ की स्थापना के २० वर्ष पश्चात् गवर्नर-जनरल ऐसी प्रार्थना को सम्राट के पास उस समय तक नहीं भेजेगा

जब तक कि संघीय व्यवस्थापिका सभा के दोनों चेम्बर सम्राट से इस प्रकार की सिफ़ारिश न करें।

६—जो देशी राज्य संघ में सम्मिलित हो जायगा वह संघीय राज्य (Federated State) और जिस पत्र द्वारा प्रवेश होगा वह प्रवेश-पत्र (Instrument of Accession) कहलायगा।

७—धारा ६ के अनुसार सम्राट द्वारा प्रवेश-पत्र स्वीकार किया जायगा और उसके बाद वह पार्लिमैंट के सामने पेश होगा। समस्त न्यायालय ऐसे प्रत्येक प्रवेश-पत्र को क़ानूनी रूप से स्वीकार करेंगे।

उपरोक्त धारा में "देशी राज्य के नरेश और उसके उत्तराधिकारी" इन शब्दों का उल्लेख है। नरेश अपने राज्य के लिए प्रवेश-पत्र पर हस्ताक्षर करेगा। किन्तु देशी राज्यों की ८ करोड़ प्रजा का कहीं भी नाम नहीं है। यदि आगे चल कर किसी समय देशी राज्यों में प्रजातंत्र-शासन की स्थापना हो गयी तो ब्रिटिश-सरकार उनकी प्रतिनिधि-संस्थाओं के निर्णय का कोई विचार न करते हुए नरेशों के प्रवेश-पत्र को ही स्वीकार करेगी। इस प्रकार नरेशों को स्वेच्छा-पूर्ण बनाने में यह शासन-विधान योग देगा। किसी भी राज्य को संघ में सम्मिलित करने का पूरा अधिकार सम्राट को दिया गया है। सम्राट के लिए किसी भी प्रवेश-पत्र का स्वीकार कर लेना अनिवार्य नहीं है। यदि कोई प्रवेश-पत्र शासन-विधान की संघ-योजना के अनुकूल नहीं है तो सम्राट उसे स्वीकार नहीं कर सकता।

इसका तात्पर्य यह है कि समस्त राज्यों के प्रवेश-पत्र जिनके द्वारा वे संघ-शासन को स्वीकार करें सामान्यतया एक-से होने चाहिये। संयुक्त कमेटी ने यह स्पष्ट रूप से अपनी रिपोर्ट में

लिखा है कि:--"हमारा यह विचार है कि यह अत्यन्त वाँछनीय होगा कि प्रवेश-पत्र सब दशाओं में समान रूप के हों; यद्यपि हम यह मानते हैं कि प्रत्येक राज्य के संबंध में संघीय विषय-सूची जिसे नरेश स्वीकार करेगा एक-सी नहीं हो सकती।" इसलिए देशी राज्यों के नरेश प्रवेश-पत्रों में ऐसी शर्तें लिखना चाहते हैं जिससे उनको विशेषाधिकारों की रक्षा हो सके।

प्रवेश-पत्र सन्धि है या समय? यह प्रवेश-पत्र क्या है? क्या यह सन्धि-पत्र है या समय (Contract); क्या यह दो समान राज्यों के मध्य में सन्धि है? भारत, ब्रिटिश और भारतीय, एक परतंत्र राज्य है। ब्रिटिश प्रान्तों में प्रभुत्व नहीं हैं और अन्तर्राष्ट्रीय भाव में देशी-राज्यों में भी प्रभुत्व नहीं है। कारण कि वे ब्रिटिश 'सम्राट' के अधीन हैं। तब यह प्रवेश-पत्र संघ में सम्मलित होने के लिए विशेषाधिकारों के लिए एक प्रकार का आवेदन-पत्र मात्र रह जाता है। यह समय (Contract) तो इसलिए नहीं कहा जा सकता कि प्रवेश-पत्र को वैध या अवैध घोषित करने का अधिकार न्यायालय को नहीं है।

२—प्रवेश-पत्र का विषय

धारा ६ (२) में यह स्पष्ट लिखा हुआ है कि प्रवेश-पत्र में "उन विषयों का उल्लेख होगा जिनके संबंध में संघीय व्यवस्थापिका सभा" देशी राज्य के लिए क़ानून बना सकेगी। संघीय विषयों की सूची में वे सब विषय सम्मिलित नहीं हैं जिनका किसी देशी राज्य या उसके नरेश के हितों से संबंध है। इसलिए देशी नरेशों के विशेषाधिकारों, विशेष हितों, देशी राज्यों के सन्धि या अन्य अधिकारों की सुरक्षा संघ या संघीय व्यवस्थापिका सभा के अधीन नहीं है। ये विषय संघ के क्षेत्र से बाहर

हैं और इनकी सुरक्षा या नियमन सर्वोच्च-शक्ति ब्रिटिश राज्य की सद्-भावना और इच्छा पर निर्भर है।

३—प्रवेश-पत्र का स्वरूप

भारत-सरकार ने प्रवेश पत्र का मशविदा प्रकाशित कर दिया है और देशी राज्यों ने उसके संबंध में अपने प्रस्ताव भी प्रकट कर दिये हैं। प्रवेश-पत्र का मशविदा इतना बड़ा है कि इसकी धाराओं पर विशद् रूप से विचार करना यहाँ संभव नहीं। इसमें जो मुख्य-मुख्य धाराएँ हैं उनके विषय में ही विचार किया जायगा। प्रवेश-पत्र के मशविदे में संघ का उद्देश बतलाया गया है, "भारत के हितों और उनकी उन्नति के लिए सहयोग।" देशी राज्य प्रवेश-पत्र में इस प्रकार के उद्देश का उल्लेख नहीं चाहते। वे यह चाहते हैं कि संघीय शासन को जो अधिकार दिये जायँ उनका स्पष्ट रूप से उल्लेख किया जाना चाहिये। जो अधिकार देशी राज्यों के संबंध में ब्रिटिश सम्राट के हैं उनका भी स्पष्ट रूप से उल्लेख आवश्यक है। जो धाराएँ संघीय व्यवस्थापिका सभा को अधिकार देती हैं, उनके विषय में भी वे बहुत सचेत हैं; वे यह नहीं चाहते कि उनके नरेशों के प्रभुत्व पर कोई आघात पहुँचे। वे गवर्नर-जनरल और वायसराय❀ के अधिकारों में भी स्पष्ट रूप से भेद चाहते हैं। प्रवेश-पत्र में उन विषयों के संबंध में भी संरक्षण हैं जिनके संबंध में संघीय व्यवस्थापिका

❀ नवीन-शासन-विधान के अनुसार गवर्नर-जनरल संघ की कार्यकारिणी (Executive) का प्रमुख और वायसराय देशी राज्यों की सर्वोच्च-शक्ति-सम्राट (Paramontcy) का प्रतिनिधि होगा। दोनों पदों के अधिकार एक ही व्यक्ति के अधीन होंगे—लेखक

सभा क़ानून बना सकेगी। वास्तव में वस्तुस्थिति यह है कि देशी राज्य अपने स्थानीय प्रभुत्व की सुरक्षा के लिए अधिक चिंतित प्रतीत होते हैं और इसके अतिरिक्त वे यह भी चाहते हैं कि प्रवेश-पत्र में ऐसी शर्तें भी रक्खी जायँ जिनसे संघीय-व्यवस्थापिका सभा के नियमन और संघ-शासन के कार्यों का राज्यों के आन्तरिक राज्य-प्रबंध पर कोई दूषित प्रभाव न पड़े। श्री के० टी० शाह ने लिखा है:—"इस समय जैसी परिस्थिति है, उसके अनुकूल सामान्यतया सभी देशी राज्यों द्वारा स्वीकार्य प्रवेश-पत्र की तैयारी के लिए जो पारस्परिक विचार-विनिमय हो रहा है उससे ऐसा प्रतीत होता है कि भारत-सरकार के राजनीतिक-विभाग और देशी राज्यों के मंत्रियों को सबसे अधिक चिन्ता है।"

प्रथम गोलमेज-परिषद् (लंदन) के समय देशी राज्यों के नरेशों में संघ-शासन के लिए जैसा उत्साह और उससे लाभ की जो आशाएँ थीं, वे उसके एक वर्ष बाद ही निराशा और निरुत्साह में परिणत हो गयीं। ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है त्यों-त्यों देशी राज्यों के नरेशों को यह अनुभव होता जा रहा है कि संघ में सम्मिलित होना अपने प्रभुत्व से हाथ धो बैठना है। इस लिए अब भारतीय नरेश संघ में प्रवेश करने के लिए पहले जैसे उत्सुक दिखलायी नहीं देते।

अध्याय ३

संघीय कार्यकारिणी

—:⁂:○:⁂:—

१—गवर्नर-जनरल

गवर्नर-जनरल की नियुक्ति—नवीन शासन-विधान (१९३५) की धारा ३ के अनुसार सम्राट द्वारा गवर्नर-जनरल की नियुक्ति की जायगी। शासन-विधान के अन्तर्गत उसे जो अधिकार और कर्त्तव्य सौंपे गये हैं, वह उनको पूरा करेगा और प्रयोग करेगा। इनके अतिरिक्त वह उन अधिकारों का भी प्रयोग करेगा जिन्हें सम्राट उसे प्रदान करेगा। सम्राट अपना एक प्रतिनिधि भारत में देशी राज्यों के संबंध में अपने कार्यों व कर्त्तव्यों को पूरा करने के लिए नियुक्त करेगा। और उसके कर्त्तव्य और अधिकार (वे नहीं होंगे जो इस शासन-विधान द्वारा उसको प्रदान किये गये हैं) वे होंगे जो सम्राट द्वारा प्रदान किये जायँगे। जब वह शासन-विधान के अन्तर्गत अपने अधिकारों का प्रयोग करेगा अथवा उत्तरदायित्वों का पालन करेगा, तो वह गवर्नर-जनरल के नाम से प्रसिद्ध होगा और जब वह सम्राट के प्रतिनिधि की हैसियत से देशी राज्यों के संबंध में अधिकारों को पूरा करेगा तब वह वायसराय कहलायेगा। सम्राट को यह अधिकार है कि वह इन दोनों पदों के लिए एक ही व्यक्ति को नियुक्त करे।

भारत के गवर्नर-जनरल की नियुक्ति सम्राट द्वारा ब्रिटिश प्रधान-मंत्री की सम्मति से की जाती है और शासन विधान के अन्तर्गत संघ की स्थापना के बाद भी ऐसा ही होगा। किन्तु ब्रिटिश उपनिवेशों (कनाड़ा व आस्ट्रिलिया आदि) में गवर्नर-जनरल सम्राट द्वारा उन उपनिवेशों के प्रधान-मंत्री की सम्मति से नियुक्त किये जाते या पद से हटाये जाते हैं। इस प्रकार उपनिवेशों का गवर्नर-जनरल की नियुक्ति में पूरा हाथ रहता है। परन्तु भारत में प्रधान-मंत्री को ऐसा अधिकार ही नहीं दिया गया है।

गवर्नर-जनरल की योग्यता—गवर्नर-जनरल का पद भारत में सबसे अधिक महत्व का है। अब तक इस पद पर ब्रिटिश राजनीतिज्ञ, ब्रिटिश उपनिवेशों में अनुभव प्राप्त गवर्नर जनरल या गवर्नर नियुक्त किये जाते रहे हैं। नियुक्ति के समय इस बात का ध्यान रक्खा जाता है कि भावी गवर्नर-जनरल को भारतीय दशाओं का विशेष ज्ञान हो। गवर्नर-जनरल अधिकांश में कुलीन-वंशों के होते हैं।

गवर्नर-जनरल का वेतन-वृत्ति—शासन-विधान की तीसरी परिशिष्ट में गवर्नर-जनरल का वार्षिक वेतन २५०,८०० रुपये सालाना है। किन्तु उसकी वृत्तियों (Allowances) का निश्चय कौंसिल आर्डर द्वारा होगा। सन् १६३७-३८ के भारत-सरकार के बजट में गवर्नर-जनरल के वेतनादि के लिए जो धन स्वीकार किया गया था, वह निम्न प्रकार है:—

	रुपयों में
वेतन	२,५०,८००
स्टम्पचुअरी वृत्ति	४०,०००

समय-वृत्ति से व्यय	१४४३००
मोटरकार	४३०००
प्रायवेट-मंत्री व विभाग	२६३०००
सेना-मंत्रि व विभाग	३२२४००
भ्रमण व्यय, स्पेशल ट्रेन	४७०७००
	१५,५४,०००
बैंड और बॉडीगार्ड का व्यय	१८४,६००
योग	१७,३८,६००

उपरोक्त ख़र्च में वायसराय के भवन का व्यय, अवकाश-वृत्ति और ५००० पौंड का भवन के लिए सामानादि सम्मिलित नहीं है। इन सबों को मिलाकर भारत के राजस्व से १७ लाख ६२ हज़ार रुपये सालाना गवर्नर-जनरल पर ख़र्च होते हैं अर्थात् प्रति दिन ४५५४ रुपये वायसराय की भेंट किये जाते हैं। यह उल्लेख करना अनावश्यक है कि १७ लाख ६२ हज़ार की यह विपुल धन-राशि भारतीयों की पराधीन और आर्थिक दुरावस्था को देखते हुए दूसरे सम्पन्न देशों के वेतनों से बहुत अधिक है।❀

* ब्रिटिश प्रधान-मंत्री (Premier) का वेतन	१०००० पौंड सा०		
संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के प्रेसीडेन्ट का वेतन	१५००० पौंड सा०		
दक्षिणी अफ्रीका के गवर्नर-जनरल का वेतन	१००००	,,	,,
कनाडा के ,, ,,	१००००	,,	,,
फ्रान्स के प्रेसीडेन्ट ,,	२८०००	,,	,,

नोट—१ पौंड = १३।–)।

गवर्नर-जनरल के कार्य—शासन-विधान की धारा ७ में गवर्नर-जनरल के अधिकारों का उल्लेख है:—शासन-विधान की धाराओं के अनुसार संघ की कार्य-कारिणी-सत्ता का आदि-स्रोत गवर्नर-जनरल है। वह सम्राट की ओर से स्वयं या दूसरे अधीनस्थ अफ़सरों द्वारा अपने अधिकारों का प्रयोग करेगा।

कार्य-कारिणी सत्ता का क्षेत्र—शासन-विधान की धारा ८ में कार्य-कारिणी-सत्ता के क्षेत्र का उल्लेख है – शासन-विधान की धाराओं के अनुसार संघ की कार्य-कारिणी-सत्ता निम्न लिखित मामलों में प्रयोग में लायी जायगी:—

(१) उन मामलों में जिनके संबंध में संघीय व्यवस्थापिका सभा को क़ानून बनाने का अधिकार होगा।

(२) सम्राट की ओर से ब्रिटिश भारत में सामुद्रिक, स्थल-सेना और आकाश-सेना का संगठन और नियंत्रण,

(३) असभ्य प्रदेशों के संबंध में उन अधिकारों का प्रयोग जिन्हें सम्राट सन्धि, ग्रांट या प्रथा के अनुसार कर सकता है।

संघीय राज्य के शासन की कार्य-कारिणी-सत्ता, उस राज्य में उन मामलों के संबंध में जारी रहेगी जिन मामलों में संघीय व्यवस्थापिका सभा को उस राज्य के संबंध में क़ानून बनाने का अधिकार है। किन्तु यदि संघीय-क़ानून द्वारा यह निश्चय हो जायगा तो गवर्नर-जनरल की कार्य-कारिणी-सत्ता उन मामलों में होगी।

गवर्नर-जनरल ने पाँच प्रकार के अधिकार—गवर्नर-जनरल के समस्त अधिकारों को स्थूल रूप से निम्न लिखित ५ श्रेणियों में बाँटा जा सकता है:—

१—सुरक्षित विभागों के संबंध में अधिकार व कार्य।

२—स्वेच्छा-पूर्वक कार्य व अधिकार।

३—व्यक्तिगत-निर्णय से किये गये कार्य।

४—मंत्री-मंडल के परामर्श से किये गये कार्य व अधिकार।

५—विशेषाधिकार (१) व्यवस्थापक (२) प्रान्तीय शासन पर नियंत्रण (३) देशी राज्यों संबंधी।

२—सुरक्षित विभाग

जिस प्रकार पहले शासन-विधान के अन्तर्गत भारत के प्रान्तों में द्वैध शासन-प्रणाली (Dyarchy) प्रचलित थी और प्रान्तों में जिसका अब अन्त कर दिया है, उसी प्रणाली को अब केन्द्र में जारी किया जायगा। स्पष्ट शब्दों में इसका यह मतलब है कि संघीय-शासन दो भागों में बट जायगा। एक भाग सुरक्षित होगा और उसका उत्तरदायित्व गवर्नर-जनरल पर होगा; और दूसरा भाग हस्तान्तरित होगा; इसका प्रबंध और दायित्व मंत्रियों (ministers) पर होगा। निम्न लिखित चार विभाग सुरक्षित हैं:—(१) सेना-विभाग। (२) ईसाई-धर्म-विभाग। (३) वैदेशिक विभाग। (४) प्रथक् प्रदेश।

१ सेना-विभाग—इसका विवेचन विशद् और महत्वपूर्ण होने के कारण प्रथक् अध्याय में किया गया है।

२ ईसाई-धर्म विभाग—केन्द्रिय-सरकार का यह विभाग ईसाई धर्म (प्रोस्टेस्टेंट चर्च) से संबंध रखता है। इस विभाग की स्थापना इसलिए की गयी थी कि भारत में सरकारी ईसाई कर्मचारी ईसाई धर्म से आध्यात्मिक लाभ उठा सकें। शासन-

विधान की धारा २६६ (१) के अनुसार भारत में पादरियों का एक विभाग होगा। इन पादरियों की नियुक्तियाँ भारत-मंत्री द्वारा होंगी। यह विभाग अखिल भारतीय-सर्विस की तरह माना जायगा। धारा ३३-(३) (vi) के अनुसार इस विभाग का ख़र्च ४२ लाख रुपये सालाना से अधिक न होगा। किन्तु इसमें पेंशन का व्यय सम्मिलित नहीं है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि यह विभाग भारत के हित के लिए नहीं है; यह तो उन गिने-चुने ईसाई कर्म-चारियों के लाभ के लिए है जो सरकार के नौकर हैं और बड़े-बड़े वेतन पाते हैं। भारत की जनता पर यह ४२ लाख रुपये का बोझ व्यर्थ में लादा गया है। क्या न्यायप्रिय सरकार इस भूमि के निवासियों की आध्यात्मिक उन्नति के लिए भी कुछ व्यय करती है ? हाँ, जब यह प्रश्न रक्खा जाता है तो ब्रिटिश सरकार अपनी धार्मिक तटस्थता की दुहाई देती है। भारत की ग़रीब जनता का लाखों रुपया इन कर्म-चारियों की धर्म-पिपासा के शान्त करने के लिए व्यय किया जाता, जब कि भारत की अधिकांश जनता को एक समय भी भर-पेट साधारण भोजन भी नहीं मिलता। क्या यही ब्रिटिश न्याय है ?

३—वैदेशिक-विभाग (External affairs) इस विभाग का संबंध भारत के बाहर दूसरे राष्ट्रों से है। यह विभाग गवर्नर-जनरल के अधीन रहेगा। परन्तु ब्रिटिश उपनिवेशों और कोलोनी के संबंध इसके अन्तर्गत नहीं हैं। उनके संबंध में मंत्रियों के परामर्शसे कार्य किया जायगा। आर्थिक और राजनीतिक दोनों पहलुओं से यह बहुत ही महत्वपूर्ण विभाग है; भारत का अन्य देशों से सम्पर्क होना स्वाभाविक है; ऐसी दशा में उसके दूसरे राज्यों के साथ जो संबंध होंगे, उनका नियंत्रण सुरक्षित विभाग

द्वारा होगा। संघीय-व्यवस्थापिका का इस पर कोई नियंत्रण न होगा। संघ के उत्तरदायी मंत्रियों के कार्य-क्षेत्र से इस विभाग को अलग कर ब्रिटिश-सरकार के एजेंट—गवर्नर-जनरल के हाथों में सौंप देना यह सिद्ध करता है कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद भारत का आर्थिक शोषण करने में कितना अधिक आगे बढ़ गया है। यह वास्तव में भारत की पराधीनता का सबसे बड़ा लक्षण है कि आज वह राष्ट्रसंघ का सदस्य होते हुए और राष्ट्रसंघ की असेम्बली का एक भारतीय❀ अध्यक्ष होते हुए भी भारत दूसरे राष्ट्रों के संबंधों पर कोई नियंत्रण करने में अशक्त है। सर तेज-बहादुर सप्रू ने अपने उस मेमोरेंडम में जो उन्होंने पार्लिमेंटरी कमेटी के सामने पेश किया था ब्रिटिश-सरकार की उपरोक्त नीति को भारत के लिए बड़ा हानिकार बतलाया है। सर सप्रू लिखते हैं:—"टैरिफ़ या विदेशों में भारतवासियों की दशा संबंधी प्रश्नों का वैदेशिक मामलों से इतना घनिष्ट सम्पर्क है कि यदि व्यवस्थापिका सभा को वैदेशिक मामलों के संबंध में बहस करने से बिलकुल अलग रक्खा जाय तो वह उन प्रश्नों का समाधान करने में असमर्थ होगी। भारतीय लोकमत, ... प्रवासी भारतीयों की दशा और टैरिफ़ के संबंध में बड़ी दिलचस्पी लेता है, वास्तव में इस प्रकार के प्रश्नों पर वर्त्तमान् शासन-विधान के अन्तर्गत व्यवस्थापिक सभा में बहस की जा सकती है, और मेरी सम्मति में होने दें नवीन शासन-विधान के अधीन इस प्रकार बहस करना रोक दिया गया तो यह प्रगति नहीं होगी।"

कौंसलर—गवर्नर-जनरल के उपरोक्त सुरक्षित विभागों के कार्यों में सहायता देने के लिए तीन कौंसलर होंगे। इनकी नियुक्ति

❀ हिज हाई-नेस आग़ा खां।

गवर्नर-जनरल द्वारा की जायगी। कौंसलर गवर्नर-जनरल के प्रति उत्तरदायी होंगे। कौंसलर संघीय व्यवस्थापिका सभा के दोनों चेम्बरों के मेम्बर होंगे; परन्तु उन्हें वोट देने का अधिकार न होगा।

३—गवर्नर-जनरल के स्वेच्छापूर्ण विशेषाधिकार

शासन-विधान की धारा ६ (१) से यह स्पष्ट है कि गवर्नर-जनरल के स्वेच्छापूर्ण अधिकारों से तात्पर्य ऐसे अधिकारों से है जिनके संबंध में उसे मंत्रियों से परामर्श करने की आवश्यकता नहीं है। श्री के० टी० शाह ने अपनी पुस्तक 'संघ-शासन' में शासन-विधान से ऐसी धाराओं का संग्रह किया है जिनके विषय में वह स्वेच्छापूर्ण अधिकारों का प्रयोग कर सकता है। यहाँ उनमें से कुछ महत्वपूर्ण धाराएँ देते हैं:—

१—मंत्रि-मंडल के अधिवेशनों की अध्यक्षता (६) २

२—कोई विषय गवर्नर-जनरल की स्वेच्छा या व्यक्तिगत निर्णय के अन्तर्गत है या नहीं—इसका निर्णय। (६) ३

३—मंत्रियों की नियुक्ति एवं पद-च्युति। (१०) १०

४—सेना-विभाग, ईसाई धर्म-विभाग, वैदेशिक-नीति एक प्रथक् क्षेत्रों का नियंत्रण एवं प्रबंध। (११) १

५—आर्थिक परामर्श-कर्ता की नियुक्ति, एवं पद-च्युति। उसके वेतन आदि का निर्णय; उसके स्टाफ की संख्या। (१५) ४

६—सरकारी आज्ञाओं को प्रमाणित करने के नियम बनाना। (१७) २

७—सरकारी कार्य-विभाजन के लिए नियम बनाना। (१७) ३

८—गवर्नर-जनरल को विभागों द्वारा सूचना देने के लिए नियम बनाना। (१७) ४

९—संघीय व्यवस्थापिका-सभा के मेम्बरों का आमंत्रण; उनको स्थगित एवं भंग करना। (१९) २

१०—संघीय व्यवस्थापिका-सभा में भाषण देना। (२०) १

११—संघीय व्यवस्थापिका-सभा के लिए संदेश भेजना। (२०) २

१२—कारावास या कालेपानी दंड-जनित अयोग्यता के निवारण के लिए अवधि का निर्धारण। (२६) (१)

१३—बिल को अस्वीकार करना, स्वीकार करना या सम्राट् की स्वीकृति के लिए सुरक्षित रखना। (३२) (१)

१४—इस प्रश्न का निर्णय कि कोई संघ का खर्च ऐसा है या नहीं कि जिस पर संघीय व्यवस्थापिका सम्मति दे सके।

१५—संघीय असेम्बली और कौंसिल आफ़ स्टेट की कार्यवाही के लिए नियम बनाना। (३८) १

१६—आर्डीनेंस जारी करना। (४३)

१७—'गवर्नर-जनरल के क़ानून' बनाना। (४४)

१८—शासन-विधान को स्थगित करने के लिए घोषणा करना (४५)

१९—गवर्नरों पर नियंत्रण। (५४) १

२०—प्रान्तीय गवर्नरों के लिए आर्डीनेंस जारी करने के लिए आदेश देना। (८८) १

२१—चीफ़ कमिश्नरों की नियुक्ति करना। (९४)

२२—बिलोचिस्तान (ब्रिटिश) का प्रबंध व नियंत्रण। ९५ (१)

२३—संघीय व्यवस्थापिका में सात प्रकार के बिलों के लिए पूर्व स्वीकृति देना। (१०८) १

२४—प्रान्तीय व्यवस्थापिका-सभा में चार प्रकार के बिलों के लिए पूर्व स्वीकृति देना। (१०८) २

२५—(१) रिजर्व बैंक के गवर्नर और डिप्टी गवर्नर की नियुक्ति और पद-च्युति; उनके वेतन तथा वृत्ति आदि की स्वीकृति; तथा उनके कार्य-काल का निर्णय। (२) स्थानापन्न रिजर्व बैंक गवर्नर और स्थानापन्न डिप्टी गवर्नर की नियुक्ति। (३) केन्द्रिय बोर्ड को स्थगित करना। (४) रिजर्व बैंक के कर्ज़ की अदायगी। (१५२)

२६—रेलवे 'अधिकारी' के $\frac{३}{७}$ सदस्यों व उसके अध्यक्ष की नियुक्ति। (१८२)

२७—संघीय पब्लिक सर्विस कमीशन के सदस्यों व अध्यक्ष की नियुक्ति। (२६५) १

❀२८-प्रान्तीय गवर्नरों के लिए शान्ति-व्यवस्था के संबंध में आदेश देना। १२६ (५)

इन विशेषाधिकारों पर यहाँ आलोचना करना उचित न होगा। यथा-स्थान प्रसंगानुकूल इनका विवेचन किया जायगा। यह गवर्नर-जनरल के विशेषाधिकारों की सम्पूर्ण सूची नहीं है। किन्तु इससे पाठक यह सहज ही अनुमान लगा सकते हैं कि गवर्नर-जनरल को डिक्टेटर के पूरे अधिकार दे दिये गये हैं।

❀ संयुक्त प्रान्त और बिहार की कांग्रेसी सरकारों ने राजबन्दियों की रिहाई के संबंध में आज्ञाएँ जारी कीं परन्तु प्रान्तीय गवर्नरों ने १२६ (५) धारा के अन्तर्गत गवर्नर-जनरल द्वारा प्राप्त आदेशानुसार मंत्रि-मंडलों की आज्ञाओं को स्वीकार नहीं किया। फलतः बिहार व संयुक्त प्रान्त के मंत्रि-मंडलों ने १५ फर्वरी १९३८ को त्याग-पत्र दे दिये।

४—गवर्नर-जनरल के वे विशेषाधिकार जिन्हें वह व्यक्तिगत निर्णय से प्रयोग में ला सकेगा।

वह निम्न लिखित अधिकारों का प्रयोग मंत्रियों के परामर्श के बाद करेगा। परन्तु यह अनिवार्य नहीं है कि वह मंत्रियों के परामर्श या निर्णय को स्वीकार करे।

१—गवर्नर-जनरल के विशेष उत्तरदायित्वः— (१२)

(१) भारत की शान्ति-रक्षा। (२) संघीय सरकार की आर्थिक स्थिरता की रक्षा। (३) अल्प-संख्यक-जातियों के वैध हितों की रक्षा। (४) पब्लिक सर्विस के वैध हितों की रक्षा। (५) शासन-विधान की व्यापारिक भेद-भाव विरोधी धाराओं का प्रयोग। (६) भारत में जो माल इंगलैंड या ब्रह्मा से आयगा उसके लिए भेद-भाव का अवरोध। (७) देशी रियासतों के अधिकारों व उनके नरेशों के गौरव की रक्षा। (८) अपने विशेष उत्तरदायित्वों को पूरा करने के लिए यथेष्ट धन प्राप्त करना।

२—एडवोकेट-जनरल के नियुक्ति, पद-च्युति और वेतन। (१६) १

३—यदि कोई व्यक्ति दोनों चेम्बरों का सदस्य चुन लिया जाय तो एक चेम्बर की सदस्यता त्यागने के लिए नियम। (२५) १

४—विशेष आवश्यक परिस्थिति में आर्डीनेंस जारी करना। (४२) १ (६)

५—'टेकनीकल' योग्यता आदि के संबंध में नियमों को अस्वीकार करना। (११६) ३

६—रिजर्व बैंक के डाइरेक्टरों को मनोनीत करना और पद से हटाना। (१५२) २

७—संघ शासन और रेलवे-अधिकारी के बीच जो कार्यवाही होगी उसके संबंध में नियम बनाना। (१८४) १

८—सुरक्षित पदों के लिए नियुक्तियाँ (२४६) २

९—सिविल कर्मचारी के दण्ड, दोषरोप या वेतन आदि के संबंध में आज्ञा (२४८) २

१०—हाई कमिश्नर की नियुक्ति, वेतन आदि।

उपरोक्त विशेषाधिकारों की सूची भी सम्पूर्ण नहीं है। इससे यह ज्ञात हो जायगा कि गवर्नर-जनरल न केवल संघीय-कार्यकारिणी का ही प्रमुख है; किन्तु वह शासन के प्रत्येक क्षेत्र,—कार्यकारिणी, व्यवस्थापिका और न्याय-विभाग सभी का प्रमुख है। द्वैध-शासन पद्धति की स्थापना करके केन्द्र में अनुत्तरदायित्व को और भी अधिक प्रोत्साहन दिया गया है। विशेषाधिकारों से विभूषित गवर्नर-जनरल कहाँ तक उत्तरदायित्व के विकास में सहायक होगा, इसमें सन्देह है। प्रान्तों के गवर्नरों को जो, विशेष उत्तरदायित्वों के रूप में विशेषाधिकार दिये गये हैं, उनकी विवेचना प्रथम भाग में की गयी है। परन्तु यह बड़े आश्चर्य की बात है कि गवर्नर-जनरल के विशेष उत्तरदायित्वों का क्षेत्र उनके क्षेत्र से कहीं अधिक व्यापक है।

गवर्नर-जनरल के लिए शासनादेश-पत्र—शासन-विधान की धारा १३ (१) के अनुसार भारत-मंत्री पार्लिमैंट के सामने गवर्नर-जनरल के लिए शासनादेश-पत्र का समावेश रखेगा।

गवर्नर-जनरल द्वारा किये गये किसी भी कार्य की वैधानिकता पर केवल इस कारण सन्देह नहीं किया जायगा कि गवर्नर-जनरल का कोई कार्य शासनादेश-पत्र के अनुसार नहीं किया

है। यद्यपि शासनादेश-पत्र शासन-विधान के अनुसार प्रकाशित किया जायगा; किन्तु गवर्नर-जनरल उसके अनुसार कार्य करने के लिए वाध्य नहीं है। यदि वह उसके प्रतिकूल कोई कार्य करे तो संघीय न्यायालय उसके कार्य को अवैधानिक घोषित नहीं कर सकता। शासनादेश-पत्र द्वारा गवर्नर-जनरल को निम्न प्रकार आदेश दिया गया है:—"ऐसे कार्य का निवारण करना चाहिये जो उसकी सरकार और संघीय व्यवस्थापिका सभा को अपनी आर्थिक नीति के विकास करने की योग्यता पर दुष्प्रभाव डाले अथवा दूसरे देशों के साथ पारस्परिक टैरिफ़ की रियायतें प्राप्त करने में या इंगलैंड के साथ व्यापारिक समझौता करने की उनकी स्वाधीनता पर प्रतिबंध लगावे; उसे उसी दशा में टैरिफ़ नीति या टैरिफ़-समझौते के प्रयत्न में हस्तक्षेप करना चाहिये जब कि उसकी राय में प्रस्तावित नीति का प्रमुख उद्देश भारत के आर्थिक हितों को उतना लाभ पहुँचाना नहीं है जितना कि इंगलैंड के हितों को आघात पहुँचाना है।"

यह आदेश इतना अस्पष्ट है कि जब मंत्री किसी टैरिफ़ नीति का निश्चय करेंगे या व्यापारिक समझौता करेंगे, तो उनमें और गवनर-जनरल में मतभेद अवश्य ही पैदा होंगे। मंत्री जब तक ऐसा कार्य करेंगे जिससे भारत में ब्रिटिश आर्थिक हितों को कोई भी क्षति न पहुँचे, तब तक गवर्नर-जनरल हस्तक्षेप नहीं करेगा और उसे ऐसा करने की जरूरत भी नहीं है। परन्तु यह सदैव याद रखना चाहिये कि भारत के व्यापारिक या आर्थिक हितों और ब्रिटिश-हितों में परस्पर-विरोध है। ब्रिटिश-सरकार भारत में अपने आर्थिक साम्राज्यवाद के जाल को बड़ी मजबूती के साथ बिछाये हुये है और जब भारतीय-मंत्री उसे नष्ट करने

का प्रयत्न करेंगे तभी गवर्नर-जनरल को उनकी टैरिफ़ नीति या व्यापारिक समझौते में ब्रिटेन के हितों की क्षति की गंध आयगी।

सेना के संबंध में शासनादेश-पत्र में लिखा है:—"गवर्नर-जनरल अपने मंत्रियों और कौंसलरों के बीच से सम्मिलित विचार विनिमय की प्रथा को प्रोत्साहन देगा।

"और यह अनुभव करते हुये कि भारत की सेना एक बढ़ती हुयी सीमा तक भारत की प्रजा से संबंध रखती है, यह हमारी इच्छा है कि सेना-विभाग का प्रबंध करते समय हमारे गवर्नर-जनरल को इस आदेश का ध्यान रखना चाहिये। विशेष रूप से हमारी भारतीय सेनाओं में भारतीय अफ़सरों की नियुक्ति के संबंध में सामान्य नीति से संबंधित मामलों में अपने मंत्रियों के विचारों का निश्चय करने की वाञ्छनीयता को सदैव याद रखना चाहिये।" यह आदेश सद्-भावना के साथ कार्य-रूप में परिणत किया गया तो इससे उन प्रश्नों और मामलों के संबंध में सम्मिलित विचार किया जा सकेगा जिनका सुरक्षित विभागों से संबंध है। परन्तु इसकी क्रियात्मक उपयोगिता में सन्देह है।

५—गवर्नर-जनरल के विशेषाधिकार

इस श्रेणी में गवर्नर-जनरल के वे अधिकार सम्मिलित हैं जिनका प्रयोग मंत्रियों के परामर्श के अनुसार ही किया जा सकेगा। इसमें संदेह नहीं कि इन अधिकारों का क्षेत्र अत्यन्त सीमित है-। सुरक्षित-विभाग संबंधी मामलों में मंत्रि-मंडल गवर्नर-जनरल को क़ानूनी तौर पर कोई सलाह देने का अधिकारी नहीं है और जब गवर्नर-जनरल किसी कार्य में स्वेच्छा का प्रयोग करेगा तब भी मंत्री उसे सलाह देने के क़ानूनी अधिकारी न

होंगे। केवल संघीय व्यवस्थापिका सभा का क्षेत्र ही ऐसा है जिसमें मंत्रि-मंडल गवर्नर-जनरल को सलाह दे सकेगा। जिन विषयों के सबंध में संघीय व्यवस्थापिका सभा क़ानून निर्माण करेगी उनके संबंध में मंत्रि-मंडल गवर्नर-जनरल को सलाह देंगे और उसे मंत्रि-मंडल की सलाह पर ही कार्य करना होगा। परन्तु व्यवस्थापिका सभा के संबंध में भी गवर्नर-जनरल को इतने अधिक विशेषाधिकार दिये गये हैं कि वह (व्यवस्थापिका सभा) वास्तविक सत्ता से बंचित कर दी गयी है। गवर्नर-जनरल के व्यवस्थापक अधिकार निम्न प्रकार हैं:—

(१) व्यवस्थापिका-सभाओं का आमंत्रित करना व चेम्बर या चेम्बरों के संयुक्त अधिवेशन में भाषण करना। (२) व्यवस्थापिका-सभा की कार्यवाही के नियमों की रचना। ३—कुछ विशेष श्रेणी के बिलों को प्रस्तुत या संशोधन पेश करने से पहले पूर्व स्वीकृति देना। (४) कुछेक श्रेणी के बिलों की सिफ़ारिश करना। (५) व्यवस्थापिका-सभा में किसी 'बिल' के संबंध में सन्देश भेजना। (६) दोनों चेम्बरों के संयुक्त अधिवेशन की आज्ञा देना। (७) सम्राट् के विचारार्थ व स्वीकृति के लिए बिलों को सुरक्षित रखना या व्यवस्थापिका-सभा द्वारा स्वीकृत 'बिल' को स्वीकृति देना। (८) स्वेच्छा से अथवा मंत्रियों की सम्मति से आर्डिनेंस जारी करने का अधिकार। (९) 'गवर्नर-जनरल के क़ानून' बनाने का अधिकार। (१०) शासन-विधान को स्थगित करने का अधिकार।

६—प्रान्तीय-सरकारों पर नियंत्रण

यद्यपि भारत के प्रान्तों में प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना हो चुकी है तथापि प्रान्तों में पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त नहीं है। उनके

ऊपर का नियंत्रण (Control) पहले की अपेक्षा और भी अधिक व्यापक और पूर्ण है।❀ प्रान्तीय सरकारों पर गवर्नर-जनरल का नियंत्रण और आदेशात्मक अधिकार इतने अधिक हैं कि प्रान्तीय स्वराज्य सच्चे अर्थों में 'स्वराज्य' नहीं रहता। प्रान्तों में व्यवस्थापिका-सभा, न्यायालय और शासन इन तीनों पर गवर्नर-जनरल का फ़ौलादी नियंत्रण है।

❀ हाल में संयुक्त-प्रान्त और विहार में कांग्रेसी मन्त्रि-मंडलों के पद-त्याग के कारण यह स्पष्टतः सिद्ध करते हैं कि प्रान्तीय शासन-मंत्रि-मंडल और गवर्नर—पर गवर्नर-जनरल ही नहीं भारत-मंत्री का भी व्यापक नियंत्रण है। —लेखक।

अध्याय ४

संघीय मंत्रि-मंडल

विगत अध्याय का अध्ययन करने के बाद पाठकों को यह जानने में कोई कठिनाई न होगी कि गवर्नर-जनरल के विशेषाधिकारों के कारण मंत्रि-मंडल वास्तविक सत्ता से हीन होगया है। मंत्रि-मंडल के अधिकार बहुत ही कम हैं। गवर्नर-जनरल के विशेषाधिकारों के सामने तो वे बिल्कुल ही नगण्य हैं।

तीन सुरक्षित विभागों सेना, वैदेशिक विभाग, ईसाईधर्म-विभाग के संबंध में मंत्री गवर्नर-जनरल को कोई भी सलाह नहीं दे सकेंगे। इन तीनों विभागों को छोड़ कर अन्य दूसरे विभागों में मंत्रि-मंडल का उत्तरदायित्व होगा। किन्तु गवर्नर-जनरल को जो विशेषाधिकार और विशेष उत्तरदायित्व दिये गये हैं उनके कारण मंत्रि-मंडल का कोई विशेष महत्व नहीं है।

मंत्रि-मंडल की नियुक्ति—शासन-विधान की धारा ६ के अनुसार एक मंत्रि-मंडल होगा जिसमें १० से अधिक मंत्री न होंगे। इन मंत्रियों का कार्य गवर्नर-जनरल को परामर्श देना व उसके कार्य में मदद देना होगा। किन्तु उसे जिन कार्यों के करने

का स्वेच्छा-पूर्वक अधिकार होगा, उन मामलों में मंत्री कोई सलाह देने के अधिकारी न होंगे। इनके अतिरिक्त सुरक्षित विभागों के लिए तीन कौंसलर, एक आर्थिक-परामर्शदाता और एक एडवोकेट-जनरल, होंगे। इस प्रकार सामान्यतया इन सबों को मिलाकर संघीय मंत्रि-मंडल में १५ सदस्य होंगे।❀

पार्लिमैंटरी सेक्रेटरी—नवीन-शासन-विधान में मंत्रियों की सहायता के लिए पार्लिमैंटरी सेक्रेटरी की नियुक्ति का कोई विधान नहीं है। पार्लिमैंटरी सेक्रेटरी मंत्रियों को कार्यों में बहुत सहायता देते हैं; ब्रिटेन में मंत्रियों की सहायता के लिए पार्लिमैंटरी सेक्रेटरी (Under Secretary) नियुक्ति किये जाते हैं। प्रान्तों में मंत्रियों के अधीन पार्लिमैंटरी सेक्रेटरी कार्य कर रहे हैं। अतः यह अनुमान किया जाता है कि संघीय-शासन में मंत्रियों की सहायता के लिए पार्लिमैंटरी-सेक्रेटरी नियुक्ति किये जायँगे।

सम्मिलित उत्तरदायित्व—नवीन-शासन-विधान में मंत्रियों के सम्मिलित उत्तरदायित्व के संबंध में कोई भी धारा नहीं है। ब्रिटेन में सदैव से यह वैधानिक परम्परा जारी है कि वहाँ मंत्रि-मंडल के सब सदस्य एक साथ ही पद-त्याग करते हैं। देश के सामने जब कोई नीति-निर्माण का प्रश्न उपस्थित होता है और उस समय मंत्रि-मंडल के विचार में पद-त्याग ही उत्तम उपाय है, तो समूचा मंत्रि-मंडल त्याग-पत्र दे देता है। प्रत्येक मंत्री

❀ इस समय वायसराय की कार्य-कारिणी सभा में वायसराय और सेनाध्यक्ष सहित कुल ८ सदस्य हैं। वायसराय और सेनाध्यक्ष को छोड़कर शेष सदस्यों में से आधे सदस्य (अर्थात् ३) भारतीय हैं और शेष अंगरेज़। गृह-सदस्य और अर्थ-सदस्य सदैव अंगरेज़ ही होते हैं।
—लेखक।

अपने निज कार्य के लिए मंत्रि-मंडल के समक्ष उत्तरदायी है; पार्लिमेंट के समक्ष वह व्यक्तिगत रूप में उत्तरदायी नहीं होता, किन्तु सम्पूर्ण मंत्रि-मंडल उत्तरदायी होता है। यह केबिनेट—शासन-प्रणाली का एक प्रमुख सिद्धान्त है। शासन-विधान में इस विषय में कोई उल्लेख नहीं किया गया है; इसका निष्कर्ष यह है कि मंत्रि-मंडल में सम्मिलित उत्तरदायित्व की भावना का विकास नहीं किया जायगा। यह सत्य है कि गवर्नर जनरल के शासनादेश-पत्र में गवर्नर-जनरल को यह स्पष्ट आदेश दिया गया है कि वह इस बात का सदैव प्रयत्न करेगा कि उसके मंत्रियों में सम्मिलित उत्तरदायित्व की भावना का विकास हो। किन्तु मंत्रि-मंडल के संगठन और रचना पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जायगा कि सम्मिलित उत्तरदायित्व के विकास में बड़ी बाधाएँ हैं। मंत्रि-मंडल में अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित प्रान्तीय प्रतिनिधियों के सदस्य और देशी राज्यों के नरेशों द्वारा मनोनीत सदस्य तो होंगे ही परन्तु उनके अतिरिक्त महत्वपूर्ण अल्प संख्यक जातियों के सदस्य भी सम्मिलित होंगे। ऐसी स्थिति में सम्मिलित उत्तरदायित्व की भावना का विकास संभव हो सकेगा इसमें सन्देह है।

मंत्रि-मंडल के अधिवेशनों की अध्यक्षता—धारा ९ (२) के अनुसार गवर्नर-जनरल स्वेच्छा से मंत्रि-मंडल के अधिवेशनों की अध्यक्षता ग्रहण करेगा। यह विधान वास्तव में बड़ा विचित्र है। जिन देशों में पार्लिमेंटरी शासन-प्रणाली प्रचलित है उनमें और विशेषतया ब्रिटेन में मंत्रि-मंडल के अधिवेशनों का सभापतित्व राजा या प्रेसीडेंट ग्रहण नहीं करता किन्तु प्रधान-मंत्री ही मंत्रि-मंडल की बैठकों का सभापति होता है। संघ-

शासन के अन्तर्गत मंत्रि-मंडल के अधिवेशनों की अध्यक्षता का अधिकार संघ के प्रमुख शासक गवर्नर-जनरल के हाथों में सौंपना मंत्रियों में एक प्रकार से अनुत्तरदायित्व की भावना पैदा करना है।

मंत्रियों का कार्य—शासन-विधान में यह स्पष्ट रूप से लिखा है कि मंत्रियों का कार्य गवर्नर-जनरल को परामर्श और सहायता देना है। गवर्नर-जनरल संघ-शासन का शासन-प्रबंध करेगा और उसके मंत्री उसको परामर्श एवं सहायता देंगे। प्रो० के० टी० शाह के शब्दों में मंत्रियों का उस देश के शासन-प्रबंध में कोई स्थान न होगा जिसके वे प्रतिनिधि होंगे। मंत्रियों का प्रमुख कार्य है शासन-नीति का निर्माण; किन्तु भारतीय संघ में मंत्रियों का यह कार्य-क्षेत्र भी अत्यन्त सीमित है।

आर्थिक परामर्श-दाता—गवर्नर-जनरल एक आर्थिक परामर्श-दाता की नियुक्ति करेगा। गवर्नर-जनरल के आर्थिक परामर्श-दाता का यह कर्त्तव्य होगा कि वह गवर्नर-जनरल के संघ-शासन की आर्थिक स्थिरता और साख के संरक्षण के लिए विशेष उत्तरदायित्व को पूरा करने में अपने परामर्श द्वारा गवर्नर-जनरल को सहायता दे और राजस्व के संबंध में संघ-शासन को भी सलाह दे।

आर्थिक परामर्श-दाता गवर्नर-जनरल की इच्छानुसार पद पर रहेगा; उसका वेतन व वृत्ति तथा उसके स्टाफ़ का वेतन व वृत्ति एवं स्टाफ़ की संख्या का निर्धारण गवर्नर-जनरल द्वारा होगा। परामर्श-दाता की नियुक्ति, पद-च्युति या वेतन व वृत्ति तथा उसके स्टाफ़ के सदस्यों की संख्या और उनकी सर्विस की शर्तों का निर्धारण आदि गवर्नर-जनरल स्वेच्छापूर्वक करेगा। किन्तु प्रथम परामर्श-दाता की नियुक्ति के बाद भविष्य में जो

परामर्श-दाता नियुक्त किया जायगा, उसकी नियुक्ति से पूर्व मंत्रियों से भी सम्मति ली जायगी।

एडवोकेट-जनरल—धारा १६ (१) के अनुसार गवर्नर-जनरल संघ के लिए एक ऐसे व्यक्ति को एडवोकेट-जनरल नियुक्त करेगा, जो संघीय-न्यायालय के जज की योग्यता का होगा। वह गवर्नर-जनरल की इच्छानुसार अपने पद पर रहेगा और गवर्नर-जनरल उसका वेतन निर्धारित करेगा। एडवोकेट-जनरल की नियुक्ति, पद-च्युति और वेतन निर्धारण के संबंध में गवर्नर-जनरल अपने व्यक्तिगत निर्णय से कार्य करेगा। अर्थात् उपरोक्त संबंध में गवर्नर-जनरल अपने मंत्रियों से परामर्श लेगा किन्तु वह उसे मानने के लिए बाध्य न होगा। एडवोकेट-जनरल समस्त क़ानूनी मामलों में संघीय सरकार को सलाह देगा और ऐसे क़ानूनी कार्य करेगा जो गवर्नर-जनरल द्वारा उसे सौंपे जायँगे। एडवोकेट-जनरल ब्रिटिश भारत और संघीय देशी राज्यों के न्यायालयों के समक्ष भाषण (Address) कर सकेगा।

मंत्रि-मंडल की कार्यवाही—संघीय सरकार का शासन-संबंधी सब कार्य गवर्नर-जनरल के नाम से किया जायगा। सरकारी आज्ञा आदि गवर्नर-जनरल द्वारा जारी होंगी; परन्तु उनके नीचे हस्ताक्षर गवर्नर-जनरल द्वारा बनाये हुये नियमों के अनुसार किये जायँगे। गवर्नर संघीय-शासन की कार्यवाही के संचा-के लिए नियम बनायगा और वह अपने मंत्रियों में कार्य-विभाजन भी करेगा। इन नियमों में इस प्रकार का भी विधान होगा कि मंत्रियों और सेक्रेटरियों को चाहिये कि वे संघीय सरकार के संबंध में सब प्रकार की सूचनाएँ गवर्नर-जनरल को दें।

अध्याय ५

संघीय व्यवस्थापिका परिषद्

—◌:❀:◌:❀:◌—

१

धारा १८ (१) के अनुसार संघीय व्यवस्थापिका सभा में ब्रिटिश सम्राट, जिसका प्रतिनिधि गवर्नर-जनरल होगा, और दो चेम्बर होंगे जो क्रमशः राज्य-परिषद् और संघीय-परिषद् के नाम से प्रसिद्ध होंगे।

राज्य-परिषद्—संघ का 'अपर चेम्बर' होगा। इसमें १५६ सदस्य ब्रिटिश भारत और १०४ सदस्य देशी राज्यों के होंगे। राज्य-परिषद् स्थायी संस्था होगी। वह किसी भी दशा में भंग नहीं की जायगी; किन्तु यथासंभव $\frac{1}{3}$ सदस्य प्रति तीसरे वर्ष अवकाश प्राप्त करेंगे। राज्य-परिषद् में कुल २६० सदस्य होंगे।

संघीय-परिषद्—असेम्बली में ब्रिटिश-भारत के २५० सदस्य और देशी रियासतों के १२५ सदस्य होंगे। इस प्रकार कुल ३७५ सदस्य होंगे। प्रत्येक संघीय-परिषद् (असेम्बली) का जीवन-काल ५ वर्ष का होगा। इससे पूर्व भी भंग की जा सकेगी। परन्तु ५ वर्ष समाप्त होने पर वह स्वयं भंग हो जायगी। गवर्नर-जनरल संघीय-परिषद् का जीवन-काल बढ़ा न सकेगा।

निर्वाचन-प्रणाली—नवीन-शासन-विधान की यह एक सब से अधिक-विचित्र पद्धति है कि 'लोअर चेम्बर' (संघीय व्यव-

स्थापिका परिषद्) के अधिकांश सदस्यों का निर्वाचन अप्रत्यक्ष, रीति से प्रान्तीय असेम्बलियों द्वारा किया जायगा और 'अपर चेम्बर' राज्य-परिषद् के सदस्य प्रत्यक्ष चुनाव द्वारा निर्वाचित होंगे। संसार के संघों में यह प्रणाली प्रचलित है कि 'अपर-चेम्बर' के सदस्यों का निर्वाचन संघ में सम्मिलित राज्यों द्वारा होता है और प्रत्येक राज्य को समान प्रतिनिधि भेजने का अधिकार है। इनका चुनाव प्रत्येक राज्य के मतदाताओं द्वारा होता है—व्यवस्थापिका सभा द्वारा नहीं। 'लोअर चेम्बर' का चुनाव संघ की समस्त जनता या प्रजा द्वारा होता है। राज्य-सीमाओं का कोई विचार नहीं किया जाता। इस प्रकार 'लोअर चेम्बर' के प्रतिनिधि **संघ की प्रजा** के सच्चे प्रतिनिधि होते हैं। भारतीय-संघ में उपरोक्त प्रणाली के सर्वथा विपरीत प्रणाली जारी करने की व्यवस्था की गयी है; अर्थात् लोअर चेम्बर में जो प्रतिनिधि होंगे वे संघ की प्रजा के प्रतिनिधि न होकर प्रान्तीय असेम्बलियों के प्रतिनिधि होंगे और अपर चेम्बर में भारत की प्रजा के प्रतिनिधि भी होंगे।

क्या राज्य-परिषद् भारत की प्रजा की प्रतिनिधि है ? राज्य-परिषद् के लिए मताधिकार इतना अधिक सीमित है कि वह वास्तविक रूप से भारत की जनता की प्रतिनिधि नहीं कही जा सकती। प्रोफेसर के० टी० शाह का कथन है कि—"ब्रिटिश-भारत में राज्य-परिषद् के चुनावों में १५०००० व्यक्तियों से अधिक मतादाताओं को मत देने का अधिकार न होगा। इसके विपरीत प्रान्तीय निवाचकों की संख्या ३$\frac{1}{3}$ करोड़ है और ब्रिटिश भारत में वयस्क नागरिकों की संख्या १४ करोड़ से कम न होगी। इस प्रकार १०० वयस्कों के लिए एक मतदाता और राज्य-परिषद्

का एक सदस्य १००० मतदाताओं का प्रतिनिधि होगा। इसको दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि वह १००००० वयस्क नागरिकों का प्रतिनिधि होगा।" जब हम यह विचार करते हैं कि राज्य-परिषद् स्थायी संस्था होगी और प्रति-तीन वर्ष उसके १/३ सदस्य अवकाश ग्रहण करेंगे तो राज्य-परिषद् की प्रत्यक्ष-चुनाव पद्धति भी लोकतंत्रवादी नहीं रहती। राज्य-परिषद् में देशी राज्यों को जो प्रतिनिधित्व दिया गया है, वह अनुपात से अधिक है। राज्य-परिषद् में देशी राज्यों को ४०% प्रतिशत स्थान और संघीय परिषद् में ३३% प्रतिशत स्थान दिये गये हैं। राज्य-परिषद् के ४० प्रतिशत प्रतिनिधि सच्चे अर्थों में देशी राज्यों की प्रजा के प्रतिनिधि न होंगे क्योंकि उनकी नामजदगी देशी राज्यों की प्रजा द्वारा न होकर उनके स्वेच्छाचारी शासकों व नरेशों द्वारा होगा। ब्रिटिश-भारत (ब्रह्मा को छोड़कर) की जनसंख्या २५ करोड़ ६८ लाख ८ हजार ३०९ है; और देशी राज्यों की जनसंख्या ८ करोड़ के लगभग है। ब्रिटिश-भारत देशी-राज्यों की अपेक्षा अधिक धनी, सभ्यता और संस्कृति में अग्रगण्य है। संघ के लिए सरकार को जो आय होगी उसका ९०% ब्रिटिश-भारत से और १०% देशी रियासतों से प्राप्त होगा। राजनीतिक जागृति भी ब्रिटिश-भारत में देशी रियासतों की अपेक्षा अत्यन्त अधिक है। ऐसी स्थिति में भी संघ में देशी राज्यों को अधिक-अनुपात से अधिक-प्रतिनिधित्व दिया गया है।

प्रतिनिधित्व-प्रणाली—संघीय व्यवस्थापिका परिषद् के स्थान विविधि वर्गों में निम्न प्रकार विभाजित किये गये हैं:—

(१) सामान्य निर्वाचन-क्षेत्र—इसमें परिगणित जातियों, बौद्ध और जैन सम्मिलित हैं। (२) सिक्ख-निर्वाचन-क्षेत्र (३)

मुसलमान-निर्वाचन-क्षेत्र (४) महिला-निर्वाचन-क्षेत्र (६) यूरोपियन-निर्वाचन-क्षेत्र (७) भारतीय ईसाई-निर्वाचन-क्षेत्र।

प्रान्तीय असेम्बलियों में उपरोक्त वर्गों के प्रथक्-प्रथक् निर्वाचक-मंडल होंगे। और जो इनके मतदाता होंगे वही राय दे सकेंगें। संघीय-परिषद् के लिए परिगणित जातियों (Scheduled Castes) के प्रतिनिधियों का चुनाव प्रान्तीय असेम्बली के लिए प्राथमिक चुनाव (Primary Elections) में सफल उम्मीदवारों द्वारा होगा। इस प्राथमिक निर्वाचक-मंडल (Primary Electorate) को प्रत्येक सीट के लिए चार उम्मीदवार चुनने चाहिए और संघीय परिषद् के लिए उनमें से एक उम्मीदवार चुन लिया जायगा। परिगणित जातियों में से संघीय असेम्बली के लिए इन उम्मीदवारों के अतिरिक्त और कोई भी व्यक्ति खड़ा नहीं हो सकेगा। प्रत्येक वर्ग के लिए संघीय परिषद् में निम्न प्रकार स्थान निश्चित किये गये हैं:—

१—सामान्य (१६ स्थान परिगणित जातियों के लिए सुरक्षित हैं)	१०५
२—सिक्ख	६
३—मुसलमान	८२
४—एंग्लो इंडियन	४
५—यूरोपियन	८
६—भारतीय ईसाई	८
७—व्यापार-वाणिज्य	११
८—जमीदार	७
९—मजदूर	१०
१०—महिलाएँ	९
योग	२५०

यहाँ यह उल्लेख करना सर्वथा अनावश्यक है कि जाति-गत निर्वाचन-प्रणाली से चुने गये प्रतिनिधियों के १० वर्गों और १२५ देशी राज्यों के मनोनीत सदस्यों की असेम्बली में पार्लिमैंटरी शासन-प्रणाली का विकास संभव हो सकेगा ?

अप्रत्यक्ष-निर्वाचन प्रणाली के दोष—श्वेत-पत्र के प्रस्तावानुसार संघीय असेम्बली के लिए ब्रिटिश भारतीय प्रतिनिधियों का चुनाव प्रत्यक्ष रीति से होना चाहिये था। किन्तु संयुक्त-पार्लिमैंटरी-कमेटी ने श्वेत-पत्र के इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। यद्यपि भारतीय लोकमत और ब्रिटिश-भारतीय प्रतिनिधि-मंडल असेम्बली के लिए प्रत्यक्ष चुनाव के पक्ष में था, तथापि लोकमत की उपेक्षा करके संघीय असेम्बली के लिए अप्रत्यक्ष चुनाव की सिफ़ारिश की गयी। सन् १९१९ में पार्लिमैंटरी संयुक्त कमेटी ने मोन्टेग्यू चेम्सफोर्ड संबंधी शासन सुधारों के संबंध में बिल पर विचार करते समय अप्रत्यक्ष चुनाव की प्रणाली को अस्वीकार किया था। मोन्टेग्यू-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट में उसके योग्य लेखकों ने स्पष्टतः लिखा है—"सबसे प्रथम हमारा यह विचार है कि अप्रत्यक्ष चुनाव की प्रणाली का अन्त कर दिया जाय।.........क्योंकि यह (प्रणाली) प्रतिनिधि को इस भावना की अनुभूति से वंचित करती है कि उसका मौलिक मतदाता से कोई वास्तविक संबंध है।" सायमन कमीशन (१९३०) ने सबसे प्रथम वार संघीय-असेम्बलियों के लिए अप्रत्यक्ष चुनाव की सिफ़ारिश की, किन्तु सन् १९३२ में लोथियन कमेटी (भारतीय मताधिकार समिति) ने सायमन कमीशन की इस सिफ़ारिश को पसंद नहीं किया। अप्रत्यक्ष चुनाव की प्रणाली का विरोध न केवल ब्रिटिश भारतीय प्रतिनिधि मंडल ने ही किया है किन्तु

पार्लिमैंटरी कमेटी (१६३४) के कुछ प्रमुख सदस्यों (लार्ड रीडिंग, लार्ड लोथियन, मोगर्न जोन्स, कोक्स और फूट) ने बड़े तर्क-पूर्ण और जोरदार ढंग से इस प्रणाली का विरोध किया।

लार्ड रीडिंग की सम्मति—लार्ड रीडिंग ने अप्रत्यक्ष-चुनाव-प्रणाली का विरोध करते हुए कहा कि इसका अर्थ यह होगा कि—"प्रान्त केन्द्रिय व्यवस्थापिका-सभा पर नियंत्रण कर सकेंगे और व्यवस्थापिका-सभा द्वारा मंत्रि-मंडल पर। दूसरे, इस प्रणाली द्वारा चुनाव के समय अखिल भारतीय और प्रान्तीय समस्याओं में इतनी अस्त-व्यस्तता हो जायगी कि जिसके कारण केन्द्रिय और प्रान्तीय व्यवस्थापिका-सभाओं पर बहुत ही अवांछनीय प्रभाव पड़ेगा।........तीसरे इस प्रणाली से अनुचित अभ्यासों एवं अनाचार को प्रोत्साहन मिलेगा। क्योंकि केन्द्रिय व्यवस्थापिका-सभा का प्रत्येक सदस्य, जो व्यापार और राजस्व से संबंध रखने वाले मामलों के विषय में कार्य करेगा, प्रान्तीय व्यवस्थापिका-सभा के सात या आठ सदस्यों द्वारा चुना जायगा।........इस प्रणाली से प्रान्तीय प्रथकता की प्रवृत्ति और भी अधिक बढ़ जायगी।"

२—संघीय परिषद् के अधिकार

व्यवस्थापक अधिकार—शासन-विधान के अनुसार संघीय व्यवस्थापिका परिषद् समग्र ब्रिटिश भारत, उसके किसी भाग या किसी संघीय देशी राज्य के लिए क़ानून बना सकेगी। धारा ६६ और १०० के अनुसार संघीय व्यवस्थापिका परिषद् परिशिष्ट सात में दिये हुए "संघीय व्यवस्थापक-सूची" के अन्तर्गत विषयों पर क़ानून बना सकेगी। उपरोक्त परिशिष्ट सात की

सूची ३ में दिये हुये विषयों पर भी संघीय व्यवस्थापिका परिषद् प्रान्तीय व्यवस्थापिका-सभा के साथ-साथ क़ानून बना सकेगी। संघीय व्यवस्थापिका परिषद् 'प्रान्तीय व्यवस्थापक सूची' में दिये हुए विषयों पर क़ानून तो बना सकेगी परन्तु वह क़ानून प्रान्त या उसके किसी भाग के लिए न होंगे। धारा १०१ के अनुसार संघीय व्यवस्थापिका-सभा संघीय देशी राज्य के लिए क़ानून बना सकेगीं; किन्तु वह क़ानून उस देशी राज्य के 'प्रवेश-पत्र' की शर्तों के अनुसार ही होगा। धारा १०२ के अनुसार यदि गवर्नर-जनरल 'आवश्यक घोषणा' द्वारा स्वेच्छा से यह घोषणा करदे कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी है जिससे भारत की सुरक्षा आन्तरिक संघर्ष या युद्ध के कारण ख़तरे में है, तो वह संघीय व्यवस्थापिका-सभा प्रान्त या उसके किसी भाग के लिए उन विषयों पर भी क़ानून बना सकेगी जो विषय "प्रान्तीय व्यवस्थापक-सूची" में दिये हुये हैं। धारा १०३ के अनुसार दो या इससे अधिक प्रान्त अपनी प्रान्तीय व्यवस्थापिका-सभाओं द्वारा इस आशय का प्रस्ताव स्वीकार कर सकते हैं कि संघीय व्यवस्थापिका-सभा उन प्रान्तों के लिए "प्रान्तीय व्यवस्थापक सूची" में उल्लिखित किसी भी विषय पर क़ानून बनायगी। ऐसा प्रस्ताव पास हो जाने पर संघीय व्यवस्थापिका सभा के लिए यह वैध होगा कि वह तदनुसार प्रान्तों के लिए क़ानून बनावे। धारा १०४ के अनुसार गवर्नर-जनरल सूचना प्रकाशित करके संघीय व्यवस्थापिका-सभा को यह अधिकार दे सकता है कि वह उन विषयों पर क़ानून बना सकेगी जिनका उल्लेख परिशिष्ट की किसी भी सूची में नहीं होगा। धारा १०५ के अनुसार संघीय व्यवस्थापिका सभा भारतीय नाविक-सेना के अनुशासन के संबंध में क़ानून बना सकेगी। धारा १०६ के अनुसार संघीय व्यवस्था-

पिका-सभा को गवर्नर या देशी राज्य के नरेश की पूर्व स्वीकृति प्राप्त करने पर, अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों के संबंध में क़ानून बनाने का अधिकार होगा। धारा १०७ के अनुसार यदि प्रान्तीय क़ानून की कोई धारा संघीय क़ानून❀ की किसी धारा के प्रतिकूल हो, तो संघीय क़ानून या प्रचलित भारतीय क़ानून वैध माना जायगा। यही शर्त संघीय राज्य के क़ानून के संबंध में लागू होगी। धारा १०८ में व्यवस्थापिका-सभा पर प्रतिबंधों का उल्लेख है। यह प्रतिबन्ध प्रान्तीय और संघीय दोनों ही व्यवस्थापिका-सभाओं पर समान है। प्रथम भाग (प्रान्तीय स्वराज्य) में हमने यथा-स्थान इनके संबंध में लिखा है अतः यहाँ लिखना व्यर्थ एवं अनावश्यक है। धारा १०९ व ११० प्रान्तीय व संघीय व्यवस्थापिका सभाओं के संबंध में समान रूप से प्रत्युक्त होंगी। अतः इनका भी यहाँ उल्लेख आवश्यक नहीं है।

नीति-निर्माण—नीति-निर्माण में व्यवस्थापिका सभा का क्या स्थान है—यह राजनीति के विद्यार्थी से छिपा नहीं है। स्वतंत्र देशों में पार्लिमेंट या व्यवस्थापिका सभा राष्ट्रीय नीति की निर्मात्री होती है। किन्तु भारत में संघीय व्यवस्थापिका सभा को राष्ट्रीय नीति के निर्माण का अधिकार बहुत ही सीमित है। राष्ट्र की शासन-नीति का निर्माण मंत्रि-मंडल का प्रमुख कार्य है; राजस्व पर नियंत्रण भी इसमें सहायक है। व्यवस्थापिका के सदस्यों का प्रश्नाधिकार, नीति-विषयक प्रस्ताव, और भिन्न प्रकार के दूसरे प्रस्ताव जिनमें 'स्थगित-प्रस्ताव' विशेष महत्वपूर्ण है, आदि ऐसे

❀ यह संघीय-क़ानून ऐसा हो जिसके बनाने का संघीय व्यवस्थापिका सभा को अधिकार हो।

साधन हैं जो राष्ट्रीय नीति-निर्माण में अत्यन्त प्रभावकारी हैं। इन प्रस्तावों द्वारा मंत्रि-मंडल पर दोषारोप ही नहीं किये जा सकते किन्तु उन्हें पद-त्याग करने के लिए विवश किया जा सकता है।

संघीय व्यवस्थापिका सभा के राजस्व अधिकार— अब हमें यहाँ संघीय व्यवस्थापिका सभा के राजस्व अधिकारों पर विचार करना है। संघीय व्यवस्थापिका सभा को संघीय-राजस्व पर कुछ नियंत्रण का अधिकार दिया गया है। परन्तु, वह कई कारणों से केवल नाम-मात्र का अधिकार कहा जा सकता है।

१—गवर्नर-जनरल का यह एक प्रमुख विशेष उत्तरदायित्व है कि वह संघीय सरकार की आर्थिक स्थिरता और साख को क़ायम रखने का प्रयत्न करेगा। सुरक्षित विभागों के व्यय पर संघीय व्यवस्थापिका सभा को सम्मति देने का अधिकार न होगा।

२—गवर्नर-जनरल का आर्थिक—पमरामर्श-दाता संघीय व्यवस्थापिका सभा के राजस्व संबंधी अधिकारों की रक्षा करने के स्थान में उन पर आघात करने का प्रयत्न करेगा। इससे अर्थ मंत्री के अधिकारों पर आघात होना अवश्यम्भावी है।

३—गवर्नर-जनरल को यह अधिकार होगा कि वह संघीय-व्यवस्थापिका सभा की राजस्व-संबंधी-कार्यवाही के संचालन के लिए नियम बनावे। इन नियमों के द्वारा व्यवस्थापिका-सभा के राजस्व-संबंधी अधिकारों पर और भी अधिक प्रतिबंध लगाये जा सकेंगे।

४—शासन-विधान की धारा ३३ (३) के अनुसार निम्न लिखित व्यय की मदों पर व्यवस्थापिका-सभा सम्मति न दे सकेगीः—

(१) गवर्नर-जनरल का वेतन-वृत्ति और उसके पद-संबंधी दूसरे व्यय। (२) ऋण जिसके लिए संघ उत्तरदायी होगा। (३) मंत्रियों, कौंसलर, परामर्श-दाता चीफ कमिश्नर और आर्थिक परामर्श-दाता के वेतन व वृत्तियाँ (४) संघीय-न्यायालय के जजों के वेतन, वृतियाँ और पेंशन, और हाई-कोर्ट के जजों के पेंशन (५) सेना-व्यय, ईसाई-धर्म विभाग-व्यय, वैदेशिक-विभाग व्यय एवं कबीलों के प्रदेशों के शासन-प्रबंध का व्यय। (६) देशी रियासतों के संबंध में 'सम्राट' के कार्यों को पूरा करने के लिए जो व्यय होगा वह संघ की आय में से सम्राट को दिया जायगा। (७) प्रान्त के पृथक्-प्रदेशों के शासन-प्रबंध के लिए ग्रान्ट। (८) न्यायालय या पंचायती न्यायालय के निर्णय या डिग्री को अदा करने के लिए धन। (६) और दूसरे खर्च जो शासन-विधान अथवा अन्य किसी क़ानून द्वारा संघ की आय से खर्च किये जायँ। इस प्रकार संघ की आय का एक बहुत बड़ा भाग, जो प्रायः $\frac{3}{4}$ से कम न होगा, ऐसा है—जिसके बजट पर व्यवस्थापिका सभा को सम्मति देने का अधिकार ही नहीं है। इसके अतिरिक्त जिस $\frac{1}{4}$ भाग पर उसे सम्मति देने का अधिकार है, उसके संबंध में गवर्नर-जनरल को धारा ३५ के अनुसार विशेषाधिकार देकर व्यवस्थापिका सभा को बिलकुल शक्तिहीन बना दिया गया है।

"धारा ३४—(१) बजट का वह व्यय जो संघ की आय से अनिवार्य रूप से व्यय होगा व्यवस्थापिका सभा की सम्मति के

लिए प्रस्तुत नहीं किया जायगा किन्तु इस उप-धारा का यह अर्थ नहीं लगाया जायगा कि व्यवस्थापिका सभा के दोनों चेम्बर बजट के उस भाग पर बहस न कर सकेंगे। किन्तु धारा ३३* (३) (अ) और (ब) में उल्लिखित व्ययों पर कोई बहस न की जा सकेगी।

(२) अन्य व्ययों के संबंध में जो अनुमान-पत्र तैयार किया जायगा वह 'ग्रान्ट' के लिए माँग के रूप में संघीय असेम्बली के समक्ष प्रस्तुत किया जायगा और उसके बाद दोनों में से **प्रत्येक चेम्बर को किसी भी माँग को स्वीकार या अस्वीकार करने का अधिकार होगा।** अथवा किसी माँग के लिए ग्रान्ट में कमी भी की जा सकेगी। जब तक गवर्नर-जनरल आदेश नहीं देगा तब तक असेम्बली द्वारा अस्वीकृत कोई भी माँग राज्य-परिषद् के सामने पेश नहीं की जायगी; यदि असेम्बली ने किसी माँग की ग्रान्ट में कमी कर दी होगी तो राज्य-परिषद् में इस प्रकार कम की गयी ग्रान्ट माँग के लिए पेश की जायगी।

(३) यदि किसी ग्रान्ट के लिए माँग के संबंध में दोनों चेम्बरों में मत-भेद होगा तो गवर्नर-जनरल दोनों चेम्बरों का सम्मिलित अधिवेशन उस माँग के पास कराने के लिए आमंत्रित करेगा।

(४) गवर्नर-जनरल की सिफारिश के बिना ग्रान्ट के लिए कोई माँग पेश नहीं की जायगी।

---

* गवर्नर-जनरल के वेतन आदि तथा देशी राज्यों के संबंध में सम्राट के कार्यों का व्यय।

"धारा ३५—१—गवर्नर-जनरल निम्नलिखित 'परिशिष्ट' के नीचे हस्ताक्षर करेगाः—

(१) धारा ३४ के अनुसार चेम्बरों द्वारा स्वीकृत ग्रान्ट ।

(२) जो व्यय संघ की आय पर अनिवार्य होंगे उनका विवरण; किन्तु वे उस रक़म से अधिक न होंगे जो व्यवस्थापिका सभा के सामने वक्तव्य के रूप में पहले पेश किये गये होंगे। किन्तु गवर्नर-जनरल चेम्बर द्वारा कम की गयी ग्रांट को इस 'परिशिष्ट' में सम्मिलित करेगा ।

२—इस प्रकार तैयार की गयी 'परिशिष्ट' दोनों चेम्बरों के सामने पेश की जायगी। **किन्तु उस पर न तो बहस की जायगी और न सम्मति दी जायगी ।**

३—जब तक 'परिशिष्ट' में इस प्रकार व्यय का विवरण सम्मिलित न होगा, तब तक वह व्यय समुचित रीति से स्वीकृत न माना जायगा ।"

बजट कार्यवाही की अवस्थाएँ—संघीय-परिषद् व राज्य-परिषद् में जो बजट रखा जायगा उसकी कार्यवाही की निम्न-लिखित अवस्थाएँ हैं। बजट सबसे पूर्व असेम्बली (परिषद्) में पेश किया जायगा और उसके द्वारा स्वीकृत हो जाने पर राज्य-परिषद् में स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया जायगा। दोनों चेम्बरों को बजट पर समान रूप से सम्मति देने का अधिकार है।

१—जब बजट दोनों चेम्बरों के समक्ष प्रस्तुत कर दिया जाता है तो बजट-कार्यवाही की प्रथम अवस्था आरम्भ हो जाती है। बजट दोनों चेम्बरों में एक साथ प्रस्तुत किया जायगा ।

२—दूसरी अवथा में समस्त बजट पर सामान्य बहस होती है। धारा ३४ (१) के दो पैराओं को छोड़ कर समस्त बजट पर बहस की जा सकेगी। इस अवस्था में सरकार के शासन-प्रबंध की आलोचना, किसी सरकारी विभाग की नीति की आलोचना की जा सकेगी।

३—तीसरी अवस्था में विशेष मद्दों पर 'ग्रान्ट' के लिए मांग पेश की जायगी। सबसे पहले यह मांग असेम्बली में पेश की जायगी; उसके बाद असेम्बली द्वारा स्वीकृत हो जाने पर राज्य-परिषद् में प्रस्तुत की जायगी। यदि किसी 'ग्रान्ट' के संबंध में दोनों चेम्बरों में परस्पर मतभेद होगा तो गवर्नर-जनरल दोनों चेम्बरों का संयुक्त-अधिवेशन उस 'ग्रान्ट' को स्वीकार करने के लिए आमंत्रित करेगा।

४—चौथी अवस्था में गवर्नर-जनरल स्वीकृत व्यय की 'परिशिष्ट' पर हस्ताक्षर कर उसे दोनों चेम्बरों के समक्ष प्रस्तुत करेगा। परन्तु इस समय दोनों में से किसी भी चेम्बर को सम्मति देने का अधिकार नहीं होगा।

५—बजट संबंधी कार्यवाही की पाँचवीं अवस्था में राजस्व-व्यवस्था का विधान है। बजट के परिणाम स्वरूप यह आवश्यक हो जाता है कि व्यवस्थापिका सभा राजस्व-क़ानून पास करे। धारा ३७ (१) के अनुसार निम्न प्रकार का कोई भी बिल या संशोधन गवर्नर-जनरल की सिफ़ारिश के बिना प्रस्तुत नहीं किया जायगा और न इस आशय का बिल राज्य-परिषद् में ही प्रस्तुत किया जा सकेगा।

(१) कर में वृद्धि करना या नवीन कर लगाना या

(२) सरकारी कर्ज़ के नियमन के संबंध में; या

(३) किसी ऐसे व्यय को व्यय घोषित करना जिस पर व्यवस्थापिका सभा की सम्मति न ली जाय या ऐसे व्यय को बढ़ाना।

व्यवस्थापिका सभा के कार्य

चेम्बरों के अधिवेशन—संघीय असेम्बली या राज्य-परिषद् के अधिवेशन आमंत्रित करने का अधिकार गवर्नर-जनरल को होगा। एक वर्ष में कम से कम एक बार चेम्बरों को अधिवेशन के लिए आमंत्रित करना होगा। चेम्बर के सदस्यों को व्यवस्थापिका-सभा संबंधी कार्यों में भाग लेने से पूर्व भारत के 'सम्राट' के प्रति राजभक्ति की शपथ लेनी आवश्यक है। संघीय व्यवस्थापिका सभा के दोनों चेम्बरों की सदस्यता के लिए कुछेक अयोग्यताएँ भी हैं जिनके लिए अर्थदण्ड नियत किया गया है:—

(१) शासन-विधान की धारा २५ के अन्तर्गत, कोई व्यक्ति दोनों संघीय चेम्बरों का सदस्य नहीं बन सकेगा।

(२) धारा ६८ (२) के अनुसार कोई भी व्यक्ति संघीय और प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं का सदस्य नहीं हो सकेगा।

(३) यदि कोई व्यक्ति धारा २६ (१) के अनुसार अयोग्य है, तो उसे अपनी सदस्यता से त्याग-पत्र देना होगा।

(४) २६ (१) के अनुसार अयोग्यताएँ निम्न प्रकार होंगी:—

१—भारत में सम्राट के अधीन किसी 'वेतन के पद' पर नियुक्त होना। किन्तु यदि व्यवस्थापिका सभा द्वारा किसी क़ानून द्वारा यह अयोग्यता दूर कर दी जाय तो वेतन के पद पर नियुक्त व्यक्ति भी व्यवस्थापिका सभा का सदस्य हो सकेगा। किन्तु संघ में मंत्री होना अयोग्यता नहीं है। २—विक्षिप्तता। ३—दिवालिया

४—निर्वाचन के नियमों के अन्तर्गत अनुचित अभ्यास का अपराधी। ५—किसी अपराध के लिए कालापानी या कम से कम २ साल के लिए क़ैद की सजा से दंडित व्यक्ति। किन्तु यदि इस सज़ा की समाप्ति को ५ साल की अवधि बीत गयी हो, तो यह अयोग्यता नहीं मानी जायगी। ६—यदि कोई व्यक्ति संघीय या प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा के चुनाव के लिए उम्मीदवार मनोनीत किया गया है और उसने क़ानून के अनुसार चुनाव-व्यय का विवरण चुनाव-अफ़सर के यहाँ प्रस्तुत नहीं किया है, तो वह ५ साल तक चुनाव के लिए खड़ा न हो सकेगा। यदि कोई उपरोक्त रीति से अयोग्य व्यक्ति संघीय असेम्बली या राज्य परिषद् के अधिवेशन में उपस्थित होगा और सम्मति देगा, तो उसे प्रति दिन के लिए ५००) रुपये अर्थ दण्ड देना होगा।

अध्यक्ष और प्रधान का निर्वाचन—शासन-विधान की धारा २२ के अनुसार संघीय-व्यवस्थापिका सभा के प्रत्येक चेम्बर को अपना अध्यक्ष चुनने का अधिकार होगा। राज्य-परिषद् के प्रधान को 'प्रेसीडेंट' और उपाध्यक्ष को 'डिप्टी प्रेसीडेंट' कहा जायगा। असेम्बली के अध्यक्ष व उपाध्यक्ष को क्रमशः 'स्पीकर' और 'डिप्टी स्पीकर' कहा जायगा। प्रेसीडेंट या डिप्टी-प्रेसीडेंट का पद निम्नलिखित दशाओं में रिक्त माना जायगा।

(१) जब वह राज्य परिषद् का सदस्य नहीं रहेगा; या

(२) गवर्नर-जनरल को लिखित त्याग-पत्र देने पर; या

(३) राज्य-परिषद् द्वारा अविश्वास का प्रस्ताव स्वीकार हो जाने पर; किन्तु ऐसे प्रस्ताव की सूचना १४ दिन पूर्व देनी चाहिये। इनका वेतन संघीय व्यवस्थापिका सभा द्वारा निश्चित किया जायगा।

सदस्यों के विशेषाधिकार, वेतन—संघीय व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों के वेतन, विशेषाधिकार, भाषण-स्वाधीनता आदि के संबंध में वैसे ही समान नियम हैं जैसे कि प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों के वेतन विशेषाधिकार व भाषण के संबंध में हैं।

भाषा—संघीय-व्यवस्थापिका सभा की भाषा अंगरेजी होगी। परंतु जो सदस्य अंगरेजी से यथेष्ट रूप से परिचित न होंगे, वे अन्य भाषा में भाषण कर सकेंगे।

अध्याय ६

संघीय शासन-प्रबंध

भारतीय शासन-विधान की सबसे अधिक पेचीदा और महत्वपूर्ण समस्या है 'संघीय सिविल सर्विस'। शासन-प्रबंध का भारतीय-विधान में सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्थान है। भारत में शासन और सरकारी कर्मचारियों में इतनी अधिक घनिष्ठता और एकता है कि यदि संयुक्त—राज्य-अमेरिका से राजनीति का विद्यार्थी यहाँ आकर भारत की शासन-प्रणाली का अध्ययन करे तो वह इस परिणाम पर पहुँचेगा कि भारत में शासन और शासन-प्रबंध एक ही है।

प्रथम् भाग—प्रान्तीय स्वराज्य—में हमने शासन-प्रबंध का जहाँ तक प्रान्त से संबंध है, विश्लेषण किया है; उस संबंध में हमने जो आलोचना की है, वह संघीय शासन-प्रबंध के संबंध में भी उपयुक्त कही जा सकती है। परंतु इस अध्याय में हम विशेष रूप से शासन-प्रबंध के संघीय पहलू पर ही विचार करेंगे।

(१) सेक्रेट्रियेट और कौंसिलर—इस प्रसंग के अन्तर्गत सबसे पूर्व हमें गवर्नर-जनरल के सुरक्षित विभागों के लिये 'सर्विस' पर विचार करना है। इनमें सबसे प्रमुख पद गवर्नर-जनरल का प्रायवेट—मंत्री और उसका स्टाफ़ है। इसकी नियुक्ति गवर्नर-जनरल स्वेच्छा से करेगा। इस स्टाफ़ का वेतन आदि गवर्नर-जनरल द्वारा नियत किया जायगा। यह स्टाफ़ गवर्नर-जनरल के विशेष उत्तरदायित्वों को पूरा करने के

नियुक्त किये जाने की व्यवस्था पहले से जारी है। नवीन शासन-विधान के अन्तर्गत अफ़गानिस्तान, नेपाल, काशगर और फ़ारस में भारत-सरकार राजदूत नियुक्त कर सकेगी। भारतवर्ष में राजदूत 'सर्विस' नहीं है अतः भारतवासियों को इन पदों पर नियुक्त किये जाने में यह एक बाधा है जिसको शीघ्र ही दूर करने का प्रयत्न बाँछनीय है। व्यापारिक-कमिश्नरों का भी इसी विभाग से संबंध है।

(४) ईसाई-धर्म विभाग—इसके विषय में यहाँ लिखना अनावश्यक है। पिछले अध्याय में, जहाँ सुरक्षित विभागों के विषय में विचार किया गया है, हमने इस विभाग की अनावश्यकता बतलायी है। इस विभाग से भारतवासियों को कोई भी अध्यात्मिक या धार्मिक लाभ नहीं है। यदि ईसाई-धर्म के प्रचार के लिए राज्य मदद देता है, तो क्या यह उचित नहीं है कि वह हिन्दू व मुसलिम धर्म-प्रचार के लिए भी आर्थिक सहायता प्रदान करे।

(५) भारत के लिए हाई कमिश्नर—ब्रिटेन में भारत के लिए हाई कमिश्नर की नियुक्ति गवर्नर-जनरल द्वारा होगी। उसकी नियुक्ति, वेतन, अवकाश और सर्विस की शर्तों का निर्धारण गवर्नर-जनरल अपने व्यक्तिगत-निर्णय से करेगा। दक्षिणी अफ्रीका में भारत सरकार के एजेंट की नियुक्ति भी गवर्नर-जनरल द्वारा होगी।

(६) भारतीय गृह आय-व्यय निरीक्षक—गवर्नर-जनरल भारत-मंत्री और हाई कमिश्नर के आय-व्यय की जाँच व निरीक्षण के लिए एक निरीक्षक नियुक्त करेगा। इस निरीक्षक को अपने स्टाफ़ की नियुक्ति करने का अधिकार

होगा। इसके वेतन-वृत्ति आदि पर असेम्बली अपनी सम्मति नहीं दे सकेगी। यद्यपि यह निरीक्षक ब्रिटेन में कार्य करेगा। परंतु उसे वेतन संघ की आय से मिलेगा।

(७) रेलवे-सर्विस—रेलवे 'सर्विस' की प्रथम् और द्वितीय श्रेणी की सर्विस की रक्षा का भार भारत-मंत्री पर है। धारा २४१ के अनुसार वेतन, पेंशन, अवकाश, वृतियाँ, शिकायत करने का अधिकार तथा क्षतिपूर्ति के संबंध में रेलवे के नौकरों को वही अधिकार दिये गये हैं जो सिविल सर्विस के कर्मचारियों को प्राप्त हैं। इसके अतिरिक्त एग्लों इंडियनों को अनुपात से अधिक स्थान दिये गये हैं।

(८) विविधि—भारतीय आयात-निर्यात 'सर्विस' भारतीय डाक व तार 'सर्विस' तथा संघीय न्यायालय के अफ़सरों के वेतन, वृति, अवकाश आदि संबंधी व्यवस्था वैसी ही होगी जैसी कि इंडियन सिविल सर्विस की है। धारा १६६ के अनुसार सम्राट अर्थात् भारत-मंत्री भारत के लिए एक महा-निरीक्षक की नियुक्ति करेगा। महा निरीक्षक अपने कार्य-काल की समाप्ति पर भारत में 'सम्राट' के अधीन किसी भी पद पर नियुक्त नहीं किया जायगा। रिजर्व-बैंक के गवर्नर व डिप्टी गवर्नर के पदों के लिए नियुक्ति गवर्नर-जनरल द्वारा की जाती है। इनके अतिरिक्त गवर्नर-जनरल द्वारा संघीय-निरीक्षण-अफसर इसलिए नियुक्त किये जायेंगे कि वे यह देखें कि शासन-प्रबंध के नियम तथा केन्द्रिय व्यवस्थापिका सभा द्वारा बनाये हुए क़ानूनों का पालन समुचित रीति से किया जाता है। शासन-प्रबंध की कार्य-कुशलता, सुप्रबंध एवं सुव्यवस्था बहुत कुछ इन अफसरों की कार्य-कुशलता पर निर्भर है।

अध्याय ७
संघीय न्यायालय

"A Federal Court is an essential element in a Federal Constitution. It is at once the interpreter and guardian of the constitution and a tribunal for the determination of disputes between the constituent units of the Federation."*

१—संघ-शासन में संघीय न्यायालय का स्थान

श्वेत-पत्र में यह प्रस्ताव किया गया था कि संघ की स्थापना के साथ-साथ यह आवश्यक है कि संघ में सम्मिलित राज्यों के वैधानिक विवादों का निर्णय करने के लिए एक केन्द्रिय न्यायालय की स्थापना की जाय। संघीय शासन-विधान की व्याख्या के लिए विशेषतया संघीय न्यायालय की आवश्यकता होती है। संघीय एवं प्रान्तीय अधिकारियों का कार्य-क्षेत्र या अधिकार-क्षेत्र क्या है?—इसका निर्णय एक निष्पक्ष न्यायालय के हाथों में सौंपना न्याय की दृष्टि में आवश्यक भी है। यह संभव हो सकता है कि संघीय न्यायालय के अभाव में हाईकोर्ट अपने-

* Joint Parliamentary Committee Report (1934)

अपने राज्यों या प्रान्तों में मनमाने ढंग से शासन-विधान की व्याख्या करें। अतः शासन-विधान की रक्षा और व्याख्या के लिए केन्द्रिय न्यायालय अत्यन्त आवश्यक है।

संघीय-न्यायालय के जज—धारा २०० के अनुसार भारत में एक संघीय न्यायालय (Federal Court) की स्थापना की जायगी।❀ इस न्यायालय में एक भारत का चीफ़ जस्टिस और अधिक से अधिक ६ जज होंगे। यदि संघीय-व्यवस्थापिका सभा द्वारा जजों की संख्या में वृद्धि करने की सिफारिश का प्रस्ताव पास हो जाय, तो सम्राट उनकी संख्या में वृद्धि कर सकेगा। चीफ़ जस्टिस तथा जजों की नियुक्ति सम्राट द्वारा होगी।

संघीय न्यायालय के जज ६५ वर्ष की आयु तक अपने पद पर रह सकेंगे। संघीय न्यायालय के जज गवर्नर-जनरल को लिखित त्याग-पत्र देकर पद-त्याग कर सकेंगे; सम्राट को यह अधिकार होगा कि वह दुराचार (Misbehaviour) या शारीरिक या मानसिक दुर्बलता के आधार पर 'वारंट' द्वारा उनको पद से हटा दे। किन्तु सम्राट उनको पद से उसी समय हटा सकेगा जबकि इस विषय में उसने प्रिवी कौंसिल की न्याय-समिति के सामने यह प्रश्न रक्खा हो और न्याय-समिति ने यह

❀ सन् १९३६ के शरत्काल में सम्राट ने भारत के चीफ़ जस्टिस और २ जजों की नियुक्ति कर दी। चीफ़ जस्टिस माननीय सर मौरिस गायर और दो जज माननीय सर सुलेमान तथा माननीय एम० आर० जयकर नियुक्त किये गये हैं। ता० ६ दिसम्बर १९३७ को नई देहली में संघीय-न्यायालय का उद्घाटन भी हो गया। —लेखक।

रिपोर्ट की हो कि उपरोक्त किसी कारण से जज को पद से हटा दिया जाय।

जजों की योग्यता—धारा २०० (३) के अनुसार निम्न लिखित व्यक्ति संघीय-न्यायालय के जज नियुक्त किये जायँगेः—

१—वह व्यक्ति जो पाँच वर्ष तक ब्रिटिश-भारत या संघीय-राज्य में हाईकोर्ट का जज रहा हो; या

२—वह व्यक्ति जिसने इंगलैंड या उत्तरी आयरलैंड में १० साल तक बैरिस्टरी की हो या स्काट लैंड की 'फैकल्टी आफ एड-वोकेट' का सदस्य रहा हो; या

३—वह व्यक्ति ब्रिटिश-भारत या संघीय देशी-राज्य के हाईकोर्ट में १० साल तक वकील रहा हो।

चीफ़ जस्टिस की योग्यता—१—कोई भी व्यक्ति उस समय तक भारत का चीफ़ जस्टिस नियुक्त नहीं किया जायगा जब तक कि, वह इस समय या उस समय जब कि प्रथम बार किसी न्यायालय में जज के पद पर नियुक्त किया गया था, बैरि-स्टर, फैकल्टी आफ एडवोकेट का मेम्बर या वकील (Pleader) न होगा।

२—चीफ़ जस्टिस के संबंध में धारा २०० (३) के अन्तर्गत २ व ३ उपधारा में १० वर्ष की जगह १५ वर्ष होगा। पद-ग्रहण करने से पूर्व प्रत्येक जज को गवर्नर-जनरल या अन्य अफ़सर के सामने शपथ लेनी होगी।

वेतन—संघीय न्यायालय के चीफ़ जस्टिस व जजों का वेतन कौंसिल-आर्डर द्वारा समय-समय पर निर्धारित किया जायगा।

उनके भ्रमण व्यय, अवकाश तथा पेंशन-संबंधी अधिकारों का निर्धारण भी कौंसिल-आर्डर द्वारा होगा।❀

संघीय न्यायालय का स्थान—धारा २०३ के अनुसार संघीय न्यायालय का स्थान देहली में अथवा ऐसे किसी स्थान में होगा जिसे उसका चीफ़ जस्टिस गवर्नर-जनरल की सम्मति से नियत करेगा। ६ दिसम्बर १९३७ को संघीय न्यायालय की स्थापना हो गयी और देहली में उसका स्थान नियत किया गया है।

२—संघीय न्यायालय की अधिकार-सीमा

प्रारम्भिक अधिकार-सीमा—संघीय न्यायालय की प्रारम्भिक अधिकार-सीमा (Original Jurisdiction) होगी। संघ, प्रान्त या संघीय देशी राज्य के मध्य 'कानूनी अधिकार' के संबंध में कोई विवाद होगा तो उसका निर्णय संघीय न्यायालय करेगा। इसका तात्पर्य यह है कि संघीय न्यायालय केवल-मात्र वैधानिक प्रश्नों पर ही निर्णय नहीं देगा किन्तु प्रत्येक ऐसे विषय में निर्णय देगा जिसमें क़ानूनी अधिकार का प्रश्न संश्लिष्ट होगा। किन्तु यह विवाद व्यक्तियों में न होना चाहिये। व्यक्तियों के क़ानूनी अधिकारों का निर्णय तो हाईकोर्ट तथा अन्य न्याया-

❀ भारत के चीफ़ जस्टिस का वार्षिक वेतन ८४०००)
संघीय न्यायालय के जज का वेतन वार्षिक ७२०००)
कलकत्ता के चीफ़ जस्टिस का वेतन ६००००)
बम्बई, मद्रास, कलकत्ता, प्रयाग, पटना, लाहौर के हाईकोर्ट जज का वेतन ४८०००)

(Gazette of India April 1, 1937).

लय करेंगे। संघीय न्यायालय तो संघ, प्रान्त या संघीय देशी राज्य के पारस्परिक विवादों के निर्णय के लिए स्थापित किया गया है। किन्तु यह अधिकार-सीमा उसी समय प्रयोग में लायी जायगी जब कि किसी विवाद में यदि एक पक्ष देशी राज्य होगा और वह विवाद—

१—शासन-विधान या उसके अन्तर्गत निर्मित कौंसिल-आर्डरों की व्याख्या या प्रवेश-पत्र के कारण संघ को प्रदत्त व्यवस्थापिका या कार्य-कारिणी अधिकार की सीमा से संबद्ध होगा; या

२—देशी राज्य में संघीय व्यवस्थापिका सभा के क़ानून के राज्य-प्रबंध के संबंध में देशी राज्य द्वारा भारतीय शासन-विधान के भाग ६ के अन्तर्गत किये हुए समझौते के कारण उत्पन्न हुआ हो; या

३—संघ की स्थापना के बाद सम्राट के प्रतिनिधि की स्वीकृति से देशी राज्यों के संबंध में 'क्राउन' के कार्यों के लिए संघ, प्रान्त या देशी राज्य के मध्य समझौते से उत्पन्न हुआ हो और उस समझौते में यह स्पष्ट रूप से लिखा हो कि संघीय न्यायालय की इस संबंध में अधिकार-सीमा होगी।

अपनी प्रारम्भिक अधिकार-सीमा के अन्तर्गत संघीय न्यायालय का निर्णय घोषणात्मक निर्णय (Declaratory Judgement) होगा।

'अपीलेट' अधिकार-सीमा—धारा २०५ (१) के अनुसार संघीय न्यायालय को अपील सुनने का भी अधिकार दिया गया है। परन्तु अपील केवल ब्रिटिश भारत से ही की जायगी।

१—यदि भारतीय शासन-विधान या उसके अन्तर्गत निर्मित कौंसिल-आर्डर की व्याख्या के संबंध के किसी मामले में 'क़ानून का प्रश्न' समन्वित होगा तो हाईकोर्ट द्वारा उपरोक्त आशय का प्रमाण-पत्र प्राप्त करके संघीय-न्यायालय में अपील की जा सकेगी; और ब्रिटिश-भारत में प्रत्येक हाईकोर्ट का यह कर्त्तव्य होगा कि वह ऐसे प्रत्येक मामले में यह विचार करे कि ऐसा प्रश्न संश्लिष्ट है अथवा नहीं और तदनुसार प्रमाण-पत्र दे।

२—जहाँ तक विधान या कौंसिल-आर्डर की व्याख्या का संबंध है, वहाँ तक संघीय न्यायालय में ब्रिटिश भारत के हाई-कोर्ट से अपील की जा सकेगी। विधान या कौंसिल-आर्डर की व्याख्या के संबंध में संघीय-न्यायालय ही अन्तिम न्यायालय है और उसके निर्णय की अपील प्रिवी-कौंसिल में भी नहीं हो सकेगी।

संघीय देशी राज्य के हाईकोर्ट से अपील—संघीय देशी राज्य के हाईकोर्ट से संघीय न्यायालय में अपील केवल उस मामले की हो सकेगी जिसका संबंध शासन विधान या उसके अन्तर्गत कौंसिल-आर्डर की व्याख्या से हो और हाईकोर्ट ने ग़लत निर्णय दिया हो एवं उसमें क़ानून का प्रश्न समन्वित हो।

प्रिवी कौंसिल की अपील—संघीय न्यायालय के निर्णय से निम्न लिखित दो दशाओं में प्रिवी-कौंसिल में अपील की जा सकेगीः—

(१) विधान या उसके अन्तर्गत निर्मित कौंसिल-आर्डर की व्याख्या के संबंध में प्रारंभिक अधिकार-सीमा के अन्तर्गत दिया गया निर्णय। (२) अन्य मामलों में प्रिवी-कौंसिल या संघीय-न्यायालय की आज्ञा से।

३—संघीय व्यवस्थापिका-सभा और संघीय न्यायालय

धारा २०६ (१) के अनुसार संघीय व्यवस्थापिका-सभा को यह अधिकार है कि वह अपने क़ानून (Act) द्वारा यह व्यवस्था कर सकती है कि दीवानी के मामलों में, ब्रिटिश भारत के हाईकोर्ट से, संघीय न्यायालय में अपील की जा सकेगी। किन्तु अपील केवल निम्न लिखित दशाओं में ही की जा सकेगी:—

(१) दीवानी का मामला जिस पर झगड़ा हो वह ५००००) से अधिक या १५०००) रुपये से कम न हो। (२) उपरोक्त मूल्य की सम्पत्ति हो। (३) संघीय न्यायालय अपील के लिए विशेष आज्ञा दे।

धारा २१५ के अनुसार संघीय व्यवस्थापिका-सभा ऐसी व्यवस्था कर सकती है जिससे संघीय न्यायालय को अतिरिक्त अधिकार इस उद्देश से प्रदान लिए जायँ कि वह इस शासन-विधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों का प्रयोग और उत्तरदायित्वों का निर्वाह भली भाँति कर सके। किन्तु ये अतिरिक्त अधिकार शासन-विधान के प्रतिकूल न हों।

४—संघीय न्यायालय के निर्णय

धारा २१० (१) के अनुसार समस्त अधिकारी—'सिविल' और 'जुडीशल' जो संघ के अधीन होंगे संघीय न्यायालय की सहायतार्थ कार्य करेंगे। संघीय न्यायालय, ब्रिटिश भारत और संघीय देशी राज्यों के संबंध में, किसी व्यक्ति की उपस्थिति के उद्देश से, किसी दस्तावेज के प्रस्तुत करने या खोज करने या न्यायालय के अपमान (Contempt) की सजा या जाँच-पड़ताल करने के लिए आज्ञा दे सकेगी। इस धारा के अन्तर्गत दिये

हुये 'आर्डर' ब्रिटिश-भारत या संघीय देशी राज्यों में जारी किये जा सकेंगे।

संघीय न्यायालय व प्रिवी कौंसिल द्वारा घोषित कानून समग्र न्यायालयों को मान्य होंगे—जो क़ानून संघीय न्यायालय द्वारा घोषित किया जायगा या जो क़ानून प्रिवी कौंसिल के किसी निर्णय द्वारा घोषित किया जायगा वह ब्रिटिश भारत के समस्त न्यायालयों में स्वीकार किया जायगा। जहाँ तक ऐसे क़ानून का सम्बन्ध शासन-विधान या कौंसिल--आर्डर की व्याख्या और ऐसे संघीय-क़ानून से है जिसे संघीय व्यवस्थापिका सभा संघीय राज्य के लिये बना सकती है, वहाँ तक वह संघीय देशी राज्यों के न्यायालयों में भी मान्य होगा।

संघीय न्यायालय से परामर्श प्राप्त करने का अधिकार—यदि किसी समय गवर्नर-जनरल को यह प्रतीत हो कि क़ानून का प्रश्न उपस्थित होगया हो या उत्पन्न हो जाने की संभावना हो, जो ऐसे सार्वजनिक महत्व का हो कि उस पर संघीय न्यायालय की सम्मति प्राप्त करना आवश्यक हो, तो वह ऐसे प्रश्न को संघीय न्यायालय के पास सम्मति के लिये भेज देगा और न्यायालय उस पर रिपोर्ट दे सकेगा। इस धारा के अनुसार जो रिपोर्ट दी जायगी वह खुले न्यायालय के जजों के बहुमतानुसार होगी।

संघीय न्यायालय का नियम-निर्माण-अधिकार—धारा २१४ (१) के अनुसार संघीय न्यायालय गवर्नर-जनरल की स्वीकृति से न्यायालय के लिये निम्न लिखित विषयों में नियम बना सकेगा। (१) न्यायालय की कार्य-पद्धति और व्यवस्था;

(२) न्यायालय में वकालत करने वाले व्यक्ति; (३) अपील की अवधि; (४) न्यायालय में किसी कार्रवाई के सम्बन्ध में खर्चा; (५) किसी कार्रवाई के समम्बन्ध में फ़ीस; (६) किसी अपील का सरसरी में निर्णय। उपरोक्त धारा के अन्तर्गत जो नियम बनाये जायंगे उनमें इसका भी विधान होगा कि किसी मामले का निर्णय ३ से कम जजों द्वारा नहीं किया जायगा। यदि संघीय-व्यवस्थापिका-सभा न्यायालय के अतिरिक्त अधिकारों की व्यवस्था करेगी तो नियमों में एक विशेष विभाग (Division) के संगठन की व्यवस्था रहेगी। संघीय न्यायालय के निर्णय जजों के बहुमत से खुली अदालत में दिये जाँयगे। संघीय न्यायालय की समस्त कार्यवाही अंग्रेज़ी भाषा में होगी।

संघीय न्यायालय के व्यय—धारा २१६ (१) के अनुसार संघीय न्यायालय के प्रबंध-संबंधी व्यय (जिनमें न्यायालय के अफ़सरों और कर्मचारियों के वेतन, वृतियाँ और पेंशन सम्मलित हैं) संघ की आय में से लिए जायँगे; व्यवस्थापिका सभा को इस व्यय पर सम्मति देने का अधिकार न होगा। न्यायालय द्वारा जो फ़ीस या धन प्राप्त किया जायगा वह संघ की आय मानी जायगी। धारा २१६ (२) के अनुसार संघीय व्यवस्थापिका सभा के समक्ष संघीय न्यायालय का जो प्रबंध-संबंधी व्यय आय-व्यय-अनुमान-पत्र में सम्मलित किया जायगा उसे गवर्नर-जनरल अपने व्यक्तिगत निर्णय से ही सम्मलित करेगा।

संघीय न्यायालय के वकील—संघीय न्यायालय भारत में सर्व प्रथम् केन्द्रिय न्यायालय है। अतः यह संभव है कि—कालान्तर में केन्द्रिय 'बार' (वकील-संगठन) का भी

विकास हो जायगा। संघीय न्यायालय में जो वकील वकालत करेंगे वे दो श्रेणियों में विभक्त होंगे—सीनियर एडवोकेट और जूनीयर एडवोकेट। जो एडवोकेट हाईकोर्ट में वकालत करने का अधिकारी होगा, वही संघीय न्यायालय में वकालत कर सकेगा। जिन एडवोकेटों ने हाईकोर्ट में १० वर्ष तक वकालत की होगी वे सीनियर और जिन एडवोकेटों ने ५ वर्ष वकालत की होगी वे जूनीयर एडवोकेट होंगे। सीनियर एडवोकेट अपने जूनियर के बिना न्यायालय में उपस्थित न हो सकेगा। वह मशविदा बनाने का कार्य भी नहीं कर सकेगा। 'एजेंट' के कार्य एटॉनी के समान होंगे। किसी मुकद्दमे की प्रारम्भिक तैयारी उन्हीं के हाथों में होगी। प्रारम्भिक मुकद्दमों में प्रान्त के एडवोकेट-जनरल अपने प्रान्त और संघीय-एडवोकेट-जनरल संघीय-सरकार के प्रतिनिधि होंगे।

आलोचना

यद्यपि भारत में संघ स्थापित नहीं हुआ है तथापि नई देहली में संघ के एक प्रमुख अंग की स्थापना विगत ६ दिसम्बर को हो गयी। यद्यपि संघीय न्यायालय अपनी दोनों सीमाओं—प्रारम्भिक और अपीलेट में निर्णय देने का अधिकारी तथापि संघीय न्यायालय भारत का अन्तिम और सर्वोच्च न्यायालय नहीं है।

संघीय न्यायालय के अधिकार अत्यन्त सीमित हैं और सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि वह एक स्वतंत्र न्यायालय नहीं है। न संघीय न्यायालय एक-मात्र शासन-विधान की व्याख्या करने वाला न्यायालय ही है। धारा २०८ के अनुसार प्रिवी कौंसिल भारत का सर्वोच्च और अन्तिम न्यायालय है। संघीय न्यायालय

द्वारा अपनी प्रारम्भिक-अधिकार-सीमा (Original Jurisdiction) में शासन-विधान, प्रवेश-पत्र, तथा १२५ धारा के अन्तर्गत समझौते की व्याख्या के संबंध में दिये गये निर्णय की अपील **संघीय न्यायालय की आज्ञा के बिना प्रिवी कौंसिल में की जा सकेगी।** अन्य मामलों में प्रिवी कौंसिल या संघीय न्यायालय की आज्ञा से अपील की जा सकेगी।

भारतीय-शासन-विधान में नागरिकों के मौलिक अधिकारों की घोषणा का उल्लेख नहीं है अतः उनके अधिकारों की रक्षा संघीय न्यायालय कर सकेगा—इसमें संदेह है। संघीय न्यायालय को सीमित-क्षेत्र में अत्यन्त सीमित अधिकार दिये गये हैं। यदि संघ, संघीय देशी राज्य या प्रान्त में से दो पक्षों में कोई ऐसा विवाद उपस्थित हो जाय जिसका संबंध शासन-विधान, प्रवेश-पत्र, समझौते की व्याख्या से अथवा क़ानूनी अधिकार से हो, तो संघीय न्यायालय अपना निर्णय दे सकेगा। नागरिकों के वैधानिक अधिकारों या वैधानिक समस्याओं—ऐसी वैधानिक समस्या जैसी कि भारत में प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना के समय प्रान्तों में बहुमत-दल के, गवर्नर से आश्वासन प्राप्त किये बिना, पद-ग्रहण न करने के कारण पैदा हो गयी थी—के संबंध में संघीय न्यायालय अन्तिम और अधिकार-पूर्ण ढंग से अपना निर्णय उस समय तक नहीं दे सकता जब तक कि कोई विवाद (१) संघ, (२) प्रान्त या (३) देशी राज्य के मध्य उत्पन्न न हो जाय। यह भी संदेह पूर्ण है कि संघीय न्यायालय 'कार्य-कारिणी' के 'आर्डीनेंस' 'आर्डर' या गवर्नर-जनरल के क़ानून (Act) को अवैधानिक घोषित कर सकेगा। धारा २१३ के अनुसार गवर्नर-जनरल को यह अधिकार प्राप्त है कि वह चाहे जिस समय संघीय न्यायालय के

समक्ष सार्वजनिक महत्व के किसी क़ानून के प्रश्न (Question of Law) को उसकी सम्मति के लिए रख सकेगा और न्याया-लय उस पर अपनी रिपोर्ट गवर्नर-जनरल के लिए भेजेगा।

किन्तु गवर्नर-जनरल इस अधिकार का प्रयोग स्वेच्छा से करेगा। भारत में प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना (१ अप्रेल १९३७) के समय जो वैधानिक संकट उत्पन्न हो गया था, उस समय यद्यपि संघीय न्यायालय की विधि-पूर्वक स्थापना नहीं हुई थी तथापि उसके चीफ़ जस्टिस व दो जजों की नियुक्ति हो चुकी थी। यदि गवर्नर-जनरल चाहता तो इस प्रश्न को धारा २१३ के अनु-सार संघीय न्यायालय की राय के लिए उसे सौंप देता। किन्तु गवर्नर-जनरल ने इस धारा का प्रयोग नहीं किया। गवर्नर-जन-रल द्वारा क़ानून के प्रश्न पर संघीय न्यायालय की सम्मति रिपोर्ट के रूप में प्राप्त करने का परिणाम यह होगा कि जज अपने पूर्व विचार पर ही दृढ़ रहेंगे और तदुपरान्त संघ, प्रान्त या संघीय देशी राज्य इसी प्रश्न को निर्णय के लिए न्यायालय के सामने पेश करेगा तो यह संभव नहीं कि जज गवर्नर-जनरल को दिये गये परामर्श के विरुद्ध निर्णय दें। धारा २१३ के अन्तर्गत गवर्नर-जनरल को जो अधिकार दिया गया है उसका दूसरा दोष यह है कि जज बिना सभी पक्षों को सुने और सभी पहलुओं पर विचार किये गवर्नर-जनरल को राय देंगे। भारतीय शासन-विधान में यह धारा जुडीशल कमेटी एक्ट (Judicial Committee Act 1833) की धारा ४ के आधार पर जोड़ी गयी है। जुडी-शल कमेटी एक्ट (१८३३) की धारा ४ का आशय यह है कि—

"ब्रिटिश राजा किसी भी मामले को, जिसे वह उचित

समझे, सम्मति लेने के लिए, कमेटी को सौंप सकता है और कमेटी इस मामले को सुनेगी तथा राजा को परामर्श देगी।❀

प्रिवी कौंसिल क़ानूनी रूप से न्यायालय नहीं है; उसकी बैठकें न्यायालय की भाँति नहीं होतीं और उसके निर्णय वैध क़ानूनी निर्णय नहीं होते। प्रिवी कौंसिल का कार्य तो उन मामलों पर राजा को परामर्श देना है जो उसके लिए राय के लिए सौंपे गये हों। सैद्धान्तिक रूप से क्राउन (Crown) उसके परामर्श को अस्वीकार कर सकता है।†

सुप्रीम-कोर्ट की स्थापना—सायमन कमीशन की रिपोर्ट (१६३०) के बाद दिसम्बर सन् १६३१ ई० में ब्रिटिश-सरकार ने भारत के शासन-सुधारों का मशविदा प्रकाशित किया था जो 'श्वेत-पत्र' के नाम से प्रसिद्ध है। इस श्वेत-पत्र में धारा १६३ से १६७ तक सुप्रीम-कोर्ट के विषय में उल्लेख है। श्वेत-पत्र की यह सम्मति है कि भारत में सुप्रीम-कोर्ट की स्थापना के पक्ष में एक-मत नहीं है। इसलिए उसने उसकी तत्काल स्थापना का प्रस्ताव तो नहीं किया किन्तु धारा १६३ के अनुसार संघीय व्यव-

---

❀ His Majesty may refer to the Committee for hearing or consideration any matters whatsoever His Majesty may think fit, and that the Committee shall thereupon hear and consider the same, and shall advise His Majesty there-on."

—Judicial Committee Act Sec. 4.

† See Anson : Law and custom of the Constitution Vol. II Part II page 293.

स्थापिका-सभा को ऐसा अधिकार देने का प्रस्ताव किया है जिससे वह ब्रिटिश भारत के लिए 'सुप्रीम-कोर्ट' की स्थापना कर सके। किन्तु संयुक्त पार्लिमेंटरी कमेटी (१६३४) के इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। अतः नवीन शासन-विधान सुप्रीम-कोर्ट की स्थापना के संबंध में मौन है। प्रत्येक स्वतंत्र राष्ट्र में एक सुप्रीम कोर्ट होती है जो राष्ट्र की सबसे बड़ी अदालत मानी जाती है; वह न केवल वैधानिक प्रश्नों का निर्णय ही नहीं करती अपितु वह फौजदारी व दीवानी के मामलों में सर्वोच्च न्यायालय है। यह वास्तव में भारतवासियों का दुर्भाग्य है कि वे अब तक स्वदेश में सर्वोच्च न्यायालय के लाभों से वंचित हैं। भारतवर्ष की हाईकोर्ट से अपील इङ्गलैंड में प्रिवी-कौंसिल में की जाती है जिसमें न्याय प्राप्त करने में, व्यर्थ में, धन-व्यय होता है और न्याय भी शीघ्र नहीं मिलता।

अध्याय ८

सम्राट, भारत-मंत्री और हाई कमिश्नर

——:०:※:०:——

१—सम्राट

भारतीय शासन-विधान में सम्राट का स्थान सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। भारत और विशेषतया ब्रिटिश-भारत का शासन ब्रिटिश सम्राट द्वारा और उसके नाम से होता है। ब्रिटिश-सम्राट का देशी रियासतों पर भी प्रभुत्व है। सम्राट के कार्यों को भारत-मंत्री के आधीन गवर्नर-जनरल करता है। शासन-विधान की धारा २ के अनुसार वह समस्त अधिकार और अधिकार-सीमा जिनका इस समय भारत-मंत्री, सपरिषद् भारत-मंत्री, सपरिषद् गवर्नर-जनरल व प्रान्तीय सरकारों द्वारा प्रयोग किया जाता है, वे अब नवीन विधान के अन्तर्गत सम्राट के अधीन होंगे। यद्यपि ब्रिटेन में ब्रिटिश राजा का महत्व और गौरव सबसे अधिक है और शासन के सभी अंग उसी से अधिकार प्राप्त करते हैं, परन्तु वास्तव में ब्रिटिश-सम्राट नाम-मात्र का शासक है; ब्रिटेन का शासन ब्रिटिश राजा के नाम पर किया जाता है। इंग्लैंड में पार्लिमैंट सबसे शक्तिशाली राज-संस्था है और उसका नियंत्रण मंत्रि-मंडल के अधीन है। जो दल बहुमत में

होता है, उसी के नेता के परामर्श से सम्राट मंत्रि-मंडल नियुक्त करता है। दल का नेता प्रधान-मंत्री होता है और अपने मंत्रि-मंडल के लिए मंत्रियों के नाम चुनना उसी का कार्य है। इस मंत्रि-मंडल का एक सदस्य भारतीय शासन के लिए उत्तरदायी होता है और यह भारत-मंत्री (Secretary of State for India) कहलाता है। अतः सम्राट जो कार्य करता है वह अपने मंत्री—भारत-मंत्री द्वारा करता है। नवीन शासन-विधान के अन्तर्गत सपरिषद् सम्राट को जो अधिकार प्रदान किये गये हैं, उनका प्रयोग कौंसिल-आर्डर द्वारा ही होगा।

सम्राट को भारत के शासन के संबंध में तीन प्रकार के विशेषाधिकार प्राप्त हैं; (१) कार्य-कारिणी (२) व्यवस्थापक (३) न्याय-संबंधी। इनके अतिरिक्त शासन-विधान ने सम्राट को भी कुछेक अधिकार दिये हैं जिन्हें क़ानूनी अधिकार कह सकते हैं।

विशेषाधिकार—सम्राट के विशेपाधिकारों में से एक विशेषाधिकार क्षमा-दान है। सम्राट इस अधिकार का प्रयोग गवर्नर-जनरल द्वारा कर सकेगा। प्रान्त में किसी व्यक्ति को प्राण-दण्ड अथवा कोई अन्य दण्ड दिया गया हो, तो गवर्नर-जनरल सम्राट के विशेपाधिकार से उसे क्षमा कर सकेगा। सम्राट पर कोई दीवानी या फ़ौजदारी मुक़द्दमा नहीं चलाया जा सकता। यह उसके विशेषाधिकार का दूसरा उदाहरण है।

क़ानूनी अधिकार—सम्राट के क़ानूनी अधिकार विविध विषयों से संबंध रखते हैं। देशी रियासतों को संघ में सम्मिलित करना; गवर्नर-जनरल और गवर्नर के लिए शासनादेश-पत्र, संघीय व प्रान्तीय क़ानूनों की स्वीकृति या अस्वीकृति, संघीय न्यायालय का विधान, संगठन और स्थापना, लेटर्स पेटैंट द्वारा

हाईकोर्टों का पुर्नसंघठन, देशी राज्यों के संबंध में सम्राट के कार्यों का सम्पादन करने के लिए सम्राट की सेना का प्रयोग, गवर्नर-जनरल, गवर्नर, कमांडर इन चीफ़ आदि प्रमुख राज्याधिकारियों की नियुक्तियाँ, इत्यादि।

२—भारत-मंत्री

नवीन शासन-विधान के अनुसार भारत-मंत्री को मुख्यतः निम्न लिखित विषयों के संबंध में अधिकार प्राप्त हैं:—

(१) गवर्नर-जनरल या उसके द्वारा प्रान्तीय गवर्नरों पर उन कार्यों के संबंध में नियंत्रण, अनुशासन, जिन्हें ये अफसर स्वेच्छा या व्यक्तिगत निर्णय से करने का अधिकार रखते हैं। (२) सम्राट के अधीन सिविल व सैनिक कर्मचारियों की नियुक्ति इत्यादि। (३) कौंसिल-आर्डर (Orders in Council) जारी करना; सपरिषद्-सम्राट (Act of His Majesty in Council) का कार्य—यह कार्य वह सम्राट के नाम पर करता है। (४) देशी रियासतों के संबंध में सम्राट के अधिकार। (५) राजस्व अधिकार; प्रान्तीय या संघीय शासन के लिए इंग्लैंड में कर्जा लेना; पेंशन अदा करना; व्याज अदा करना। (६) समझौता (Contract) करना। (७) आय-व्यय का निरीक्षण। (८) आवश्यक विशेषाधिकार।

भारत-मंत्री का भारतीय-शासन पर इतना अधिक व्यापक और पूर्ण नियंत्रण है कि उसकी सम्मति और परामर्श के बिना गवर्नर-जनरल अपने उन कार्यों को अपनी स्वतंत्र बुद्धि से करने में असमर्थ है जिनके करने का उन्हें स्वेच्छा पूर्वक अधिकार है। यदि अन्दमान के बन्दियों—राजनीतिक बन्दियों

की मुक्ति का प्रश्न बंगाल सरकार और भारत सरकार के सामने है तो, गवर्नर या गवर्नर-जनरल स्वेच्छा से उनकी मुक्ति नहीं करते जब तक कि भारत-मंत्री उनके कार्य या नीति को पूर्व स्वीकृति न दे दे। माननीय सर तेज बहादुर सप्रू ने भारत-मंत्री के व्यापक अधिकारों के विषय में यह लिखा है—"भारत-मंत्री का नियंत्रण सचमुच वास्तविक और सजीव है। गवर्नर-जनरल और भारत-मंत्री के संबंध विशेषतः गोपनीय होते हैं और नियंत्रण के बहुतेरे ढंग ऐसे हैं कि जिन्हें बाहर का व्यक्ति समझने में कठिनाई अनुभव करता है।"❀

सामान्य नियंत्रण—शासन-विधान की धारा १४ में लिखा है कि जिन कार्यों को गवर्नर-जनरल स्वेच्छा या व्यक्तिगत निर्णय से करेगा, उन कार्यों के संबंध में वह भारत-मंत्री के सामान्य नियंत्रण में रहेगा और समय-समय पर भारत-मंत्री द्वारा जारी किये गये आदेशों के अनुसार कार्य करेगा। किन्तु गवर्नर-जनरल द्वारा किये गये कार्य को केवल इसलिए अवैध नहीं माना जायगा क्योंकि उसने विधान की इस धारा के अनुसार कार्य नहीं किया है। इस धारा के अनुसार भारत-मंत्री जो आदेश देगा वह सम्राट द्वारा जारी किये गये गवर्नर-जनरल के लिए शासनादेश-पत्र की धाराओं के विरुद्ध न होगा। धारा ५४ के अनुसार गवर्नर पर गवर्नर-जनरल का नियंत्रण होगा और उसे गवर्नर-जनरल के आदेशानुसार कार्य करना होगा। किन्तु यह नियंत्रण केवल उन कार्यों के संबंध में ही होगा जिन्हें वह स्वेच्छा या व्यक्तिगत निर्णय से कर सकेगा।

❀ The Indian Constitution By Sir. T. B. Sapru page. 59-66.

व्यवस्थापक-क्षेत्र में—सम्राट् को यह अधिकार है कि वह प्रान्तीय या संघीय क़ानूनों को अस्वीकार कर दे; किन्तु वह इस अधिकार का प्रयोग अपने वैधानिक सलाहकार—भारत-मंत्री—की सलाह से ही करेगा। गवर्नर-जनरल और प्रान्तीय गवर्नर के असाधारण नियमन पर भी भारत-मंत्री का पूरा नियंत्रण है। आर्डीनेंस गवर्नर-जनरल और गवर्नर के क़ानून (Acts) उपरोक्त असाधारण व्यवस्था के ज्वलन्त उदाहरण हैं। उपरोक्त क़ानूनों को रद्द करने अथवा उन्हें पार्लिमेंट के समक्ष प्रस्तुत करने का अधिकार भारत-मंत्री को है।

शासन-क्षेत्र में—शासन-क्षेत्र में भारत-मंत्री का सबसे अधिक नियंत्रण है। गवर्नर-जनरल और गवर्नर को यह विशेषाधिकार है कि वे समग्र शासन-विधान—संघीय-न्यायालय और प्रान्तीय हाईकोर्ट को छोड़कर—को तीन वर्ष तक स्थगित कर सकते हैं। इस विशेषाधिकार का प्रयोग भारत मंत्री के नियंत्रण में ही हो सकेगा। गवर्नर-जनरल तीन वर्ष तक 'डिक्टेटर' बन कर राज्य कर सकेगा। श्री जे० सी० मोर्गन जोन्स की यह सम्मति है कि—भारत-मंत्री गवर्नर-जनरल को तीन वर्ष समाप्त करने से पूर्व ही यह आदेश कर सकेगा कि 'आवश्यक घोषणा' को एक या दो मास पूर्व वापस ले लिया जाय और उसके बाद और फिर नवीन घोषणा जारी कर दी जाय। इस प्रकार समस्त भारत, जिसमें संघ में सम्मिलित देशी राज्य भी शामिल हैं, अनिश्चत काल के लिए गवर्नर-जनरल की डिक्टेटरी के अधीन रह सकेगा।

भारत-मंत्री का वेतन—भारतीय शासन-विधान (१६१६) के अनुसार भारत-मंत्री का वेतन ब्रिटिश राज-कोष से दिया जाता

है। ऐसा करना उचित भी है कारण कि वह ब्रिटिश-मंत्रि-मंडल का एक सदस्य है। और इस नाते उसे ब्रिटिश-राज-कोष से वेतन एवं वृति प्राप्त करने का अधिकार है। वह अपने कार्यों के लिए पार्लिमेंट के प्रति उत्तरदायी है। भारत-मंत्री की सहायता के लिए एक उप-मंत्री (Under Secretary) और १ पार्लिमेंटरी सेक्रेटरी भी होता है। भारत-मंत्री का वेतन ५००० पौंड सालाना और उप-मंत्री का वेतन १५०० पौंड सालाना है।

भारत-कार्यालय—मोन्टेग्यू चेम्सफोर्ड—शासन-सुधारों से पूर्व इंडिया-आफिस (India office) की ३ प्रमुख शाखाएँ थीं; (१) पत्र-व्यवहार (२) आय-व्यय-हिसाब (३) स्टोर। यह अन्तिम शाखा सन् १९१९ के बाद हाई कमिश्नर को सौंप दी गयी। पत्र व्यवहार (Correspondence Branch) के अधीन तीन विभाग हैं:—

(१) सार्वजनिक और न्याय-विभाग (Public and Judicial)—इस विभाग का संबध वैधानिक और व्यवस्थापक प्रश्नों एवं भारत के आन्तरिक शासन से है।

(२) आर्थिक-विभाग (Economic) इस विभाग का संबंध भारतीय-समस्याओं के अन्तर्राष्ट्रीय और साम्राज्य-संबंधी प्रश्नों से है।

(३) सर्विस व सामान्य-विभाग—इस विभाग का भारतीय सिविल सर्विस से संबंध है। नियुक्तियाँ तथा अन्य प्रबंध इसी के अधीन हैं। द्वितीय शाखा का संबंध भारत संबंधी आय व्यय के हिसाब से है।

वास्तव में यह इंडिया-आफिस भारत-मंत्री को भारत के संबंध में शासन-प्रबंध संबंधी विविध क्षेत्रों का यथोचित और (up-to-date) ज्ञान देने के लिए स्थापित किया गया था।

किन्तु इससे भारतवर्ष को कोई लाभ नहीं। पार्लिमैंट को इस आफिस की व्यवस्था करनी चाहिये और ब्रिटिश राजकोष से ही इसका व्यय दिया जाना चाहिये। परंतु ब्रिटिश-सरकार भारत इसके व्यय के लिए रुपये लेती है। इन्डिया-आफिस का आधा खर्च भारत के राजकोष से दिया जाता है और आधा खर्च ब्रिटिश राजकोष पर है। १५०,००० पौंड सालाना ब्रिटिश राजकोष से इन्डिया आफ़िस पर खर्च किया जाता है।⚘ संयुक्त-प र्लिमैंटरी-कमेटी (१६३४) ने यह शिफ़ारिश की है कि इन्डिया आफिस का व्यय इङ्गलैंड के 'सिविल सर्विस अनुमान-पत्र' (Civil Service Estimates) में सम्मिलित कर दिया जाय और भारत से केवल सहायता के रूप में धन लिया जाय। नवीन शासन-विधान की धारा २८० (१) के अनुसार प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना के उपरान्त भारत-मंत्री का वेतन और उसके विभाग (India office) का व्यय (जिसमें उसके स्टाफ़ का व्यय भी सम्मिलित है। **पार्लिमेंट द्वारा स्वीकृत धन में से दिया जायगा।** भविष्य में संघीय सरकार को भारत-मंत्री के विभाग के लिए कितना धन देना होगा इसका निश्चय समय-समय पर गवर्नर-जनरल और राज-कोष के पारस्परिक समझौते से होगा।

३—भारत-परिषद् का विनाश

भारत-परिषद् का इतिहास—भारत-शासन-क़ानून (सन् १८५८ ई०) के अनुसार भारत-मंत्री की परिषद् की स्थापना की

⚘ सन् १९३७–३८ के भारत के आय-व्यय अनुमान-पत्र (Budget Estimates) में हाई-कमिश्नर के आफ़िस और इन्डिया-आफ़िस को भारतीय कोष से ४० लाख ७९ हज़ार रुपये रखने पड़े।

गयी थी। प्रारंभ में इसमें आठ से कम और बारह से अधिक सदस्य नहीं होते थे। यह नियम था कि इन सदस्यों में से आधे सदस्य ऐसे हों जो भारत में दस वर्ष रहे हों या दस वर्ष नौकरी की हो और अपनी नियुक्ति से पाँच वर्ष की अवधि से पूर्व नहीं लौटे हों। इनमें से तीन सदस्य भारतीय होते थे। प्रत्येक सदस्य पाँच वर्ष तक सदस्य रहता था। प्रत्येक सदस्य का वेतन १२०० पौंड सालाना था। इस कौंसिल का कोई भी सदस्य पार्लिमैंट का सदस्य नहीं हो सकता था। इस कौंसिल का कार्य था इङ्गलैंड में भारत-सरकार के संबंध में कार्य-संचालन करना और उसके संबंध में भारत से पत्राचार करना।

इस कौंसिल की बैठकें प्रति सप्ताह होती थीं। आज से ५० वर्ष पहले भारतीय राष्ट्रीय महा-सभा ने बम्बई में अपने सर्व प्रथम अधिवेशन में अपनी यह सम्मति प्रकट की थी कि भारत-मंत्री की 'भारत-परिषद्' (India council) विनष्ट कर कर दी जाय; भावी शासन-सुधारों से पूर्व इसका नाश आवश्यक है। संयुक्त पार्लिमैंटरी कमेटी (१९३४) ने कौंसिल के विनाश के लिए सिफ़ारिश की। तदनुसार नवीन शासन-विधान की धारा २७८ (८) के अनुसार भारत-मंत्री की कौंसिल भंग कर दी गयी है।*

---

* संयुक्त पार्लिमैंटरी कमेटी (१९३४) के मज़दूर सदस्यों ने (जिनमें सर्व श्री एटली, कौकस, मोर्गन-जोन्स, लार्ड स्नेल प्रमुख हैं) पार्लिमैंटरी कमेटी की रिपोर्ट में निम्नलिखित प्रस्ताव सम्मिलित कर देने के लिए आग्रह किया—"हम यह चाहते हैं कि भारतीय मामले डोमीनियन-आफिस के अधीन कर दिये जायँ। यदि यह न हो, तो इस दिशा में प्रगति की दृष्टि से हम यह शिफ़ारिश करते हैं कि इण्डिया आफिस

४—भारत-मंत्री के सलाहकार

नवीन शासन-विधानकी धारा २७८ (१) के अनुसार भारत-मंत्री के कम से कम तीन और अधिक से अधिक छः परामर्शदाता होंगे। उनका कर्त्तव्य उन मामलों में भारत-मंत्री को मंत्रणा देना होगा जिनके विषय में वह उनकी मंत्रणा लेना चाहेगा। परामर्श-दाताओं की अर्द्धसंख्या ऐसे सदस्यों की होगी जिन्होंने भारत में सम्राट के अधीन दस वर्ष तक नौकरी की हो और अपनी नियुक्ति से दो वर्ष से अधिक पहले वापस न हुये हों। इनकी नियुक्ति पाँच वर्ष के लिए होगी और इनकी पुनः नियुक्ति नहीं की जायगी। परन्तु उन्हें अपने पद से त्याग-पत्र द्वारा पद-त्याग करने का अधिकार होगा। यदि मानसिक या शारीरिक दृष्टि से वह पद के अयोग्य हो जायगा तो भारत-मंत्री अपने 'आर्डर' द्वारा उसे पद से हटा देगा। भारत-मंत्री का परामर्शदाता पार्लिमैंट का सदस्य नहीं बन सकेगा। पार्लि-मैंट द्वारा स्वीकृत धन में से प्रत्येक परामर्शदाता को १३५० पौंड सालाना वेतन मिलेगा। जो व्यक्ति नियुक्ति के समय भारत का निवासी होगा उसे ६०० पौंड सालाना वृत्ति मिलेगी।

सम्पत्ति पर अधिकार—धारा १७५ (१) के अनुसार संघ और प्रान्त की कार्य-कारिणी का उस सम्पत्ति के क्रय-विक्रय या रहन करने का अधिकार होगा जो संघ या प्रान्त के शासन के उद्देश से सम्राट के अधीन होगी; उन्हीं उद्देशों से वे

सेक्रेटरी आफ़ स्टेट के एक नवीन आफिस में मिला दिया जाय और वह पूर्व में ब्रिटिश कामन वैल्थ के स्वाधीन प्रदेशों का मंत्री हो।"

J. P. C. Report Vol. I. Part II. Page 425.

सम्राट के लिए सम्पत्ति खरीद सकेंगी या प्राप्त कर सकेंगी और इक़रार भी कर सकेंगी। गवर्नर, गवर्नर-जनरल या भारत-मंत्री शासन विधान के अन्तर्गत किसी इक़रार या आश्वासन के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी नहीं होंगे।

भारत-मंत्री के ऋण इत्यादि—भारत में प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना से पूर्व भारत-मंत्री द्वारा जो कर्ज़ लिया गया होगा वह उस तिथि से संघ का कर्ज़ हो जायगा और उसके लिए संघ तथा प्रान्तों पर दायित्व होगा। प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना से पूर्व भारत-मंत्री ने स्वयं या उसकी ओर से किसी ने जो इक़रार किये होंगे, वे उस तिथि से;

(१) यदि इक़रार प्रान्तीय मामलों के संबंध में थे, तो वे प्रान्त के माने जायँगे; और,

(२) दूसरे मामलों में वे संघ की ओर से माने जायँगे।

भारत-मंत्री और न्यायालय-संबंधी कार्यवाही—अब तक भारत-सरकार की ओर से भारत-मंत्री किसी व्यक्ति के विरुद्ध अदालती कार्यवाही कर सकता था और कोई भी व्यक्ति भारत-मंत्री के विरुद्ध अदालती कार्य-वाही कर सकता था। परंतु नवीन विधान के अनुसार संघीय सरकार 'भारत के संघ' के नाम से और प्रान्तीय सरकार 'प्रान्त' के नाम से अदालत में दावा कर सकेंगी और उनके ख़िलाफ़ दावे किये जा सकेंगे।

५—भारत के लिए हाई कमिश्नर

इंग्लैंड में भारत के लिए एक हाई कमिश्नर होगा जिसकी नियुक्ति गवर्नर-जनरल अपने व्यक्तिगत निर्णय से करेगा।

उसके वेतन तथा सर्विस की शर्तों का निर्धारण गवर्नर-जनरल द्वारा होगा। हाई कमिश्नर संघ की ओर से संघ के कार्य के संबंध में उन उत्तरदायित्वों को पूरा करेगा जिनके विषय में गवर्नर-जनरल समय-समय पर आदेश देगा और विशेषतया वह संघ की ओर से इक़रार करने व स्टोर खरीदने का कार्य करेगा। हाई कमिश्नर गवर्नर-जनरल की स्वीकृति से कुछ शर्तों पर प्रान्त या संघीय देशी राज्य या ब्रह्मा की ओर से भी उन कार्यों को कर सकेगा जिन कार्यों को वह संघ की ओर से करेगा। पहले शासन-विधान में हाई कमिश्नर की जैसी स्थिति थी वैसी ही वर्तमान् विधान के अन्तर्गत है। सर तेज बहादुर सप्रू ने अपने आवेदन-पत्र में इस बात पर जोर दिया था कि हाई-कमिश्नर के अधिकार व कार्य उपनिवेशों (Dominions) के हाई कमिश्नरों के समान होने चाहिये। परंतु उनके इस प्रस्ताव पर कोई विचार नहीं किया गया। १३ अगस्त सन् १९२० को कौंसिल-आर्डर द्वारा हाई कमिश्नर के नवीन-पद का निर्माण किया गया था। इससे पूर्व जो कार्य भारत-मंत्री द्वारा सम्पादन किये जाते थे उनमें से कुछेक कार्य हाई कमिश्नर को सौंप दिये गये। परंतु वह कार्य केवल मात्र 'एजेंसी' के रूप में सौंपे गये थे। हाई कमिश्नर के कार्य निम्न लिखित हैं:—

(१) इंग्लैंड में भारत-सरकार के लिए 'स्टोर' क्रय करना।

(२) भारतीय व्यापार-कमिश्नर के कार्यों का निरीक्षण।

(३) इंग्लैंड में भारतीय विद्यार्थियों का प्रबंध।

(४) सिविल सर्विस के सदस्यों को अवकाश तथा वृत्तियाँ प्रदान करना।

(५) विशेषज्ञों की नियुक्तियाँ ।

(६) 'भारतीय सिविल सर्विस' और 'जंगल-सर्विस' में नियुक्त सदस्यों का शिक्षण-काल में निरीक्षण ।

(७) किसी अन्तराष्ट्रीय प्रतिनिधि-मंडल के सदस्यों की नियुक्ति का प्रबंध ।

(८) भारत-सरकार के साहित्य का विक्रय ।

हाई कमिश्नर का कार्यालय लन्दन में नवीन 'भारत-भवन' (India Office) में है । यह भवन ३२४००० पौंड की लागत का बनाया गया है । हाई कमिश्नर को भारत की आय से ३००० पौंड अर्थात् ३६६८४ रुपये वार्षिक वेतन दिया जाता है ।

अध्याय ९

संघीय राजस्व
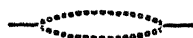
१—आय के साधन

नवीन शासन-विधान (१६३५) ने प्रान्तीय और केन्द्रिय राजस्व को एक दूसरे से प्रथक् कर दिया है। संघ की राजस्व-नीति का इस अध्याय में विवेचन किया जायगा। प्रथम भाग (प्रान्तीय स्वराज्य) में प्रान्तीय राजस्व के विषय में लिखा जा चुका है। संघ की आय के साधन निम्न लिखित हैं:—

१—आयात-निर्यात-कर।※ २—तम्बाखू तथा भारत में उत्पन्न अन्य वस्तुओं पर कर। ३—कोरपोरेशन-कर। ४—नमक। ५—राज्य की लॉटरी। ६—आय-कर। ७—कम्पनी तथा व्यक्तियों की पूंजी पर कर। ८—उत्तराधिकार-कर। ९—हुंडी, चेक, प्रो-नोट, साख-पत्र, बीमा-पोलिसी आदि पर कर। १०—टरमीनल टैक्स। ११—'संघीय-सूची' में उल्लेखित मामलों के संबंध में फीस।

※ किन्तु निम्न लिखित वस्तुओं पर टैक्स नहीं लगाया जायगा:—

१—मादक पेय द्रव्य। २—अफीम, गाँजा, चर्स आदि। ३—दवाइयों या साबुन पर जिनमें मादक द्रव्य हो।

संघ की आय में देशी राज्यों का भाग—१—सामान्य दशाओं में संघ संघीय-राज्यों से निम्न लिखित कर प्राप्त कर सकेगाः—

(१) आयात-निर्यात-कर ('संघीय-विषय-सूची' विषय नं० १६ व ४४) (२) देशी-माल-कर (नं० ४५ संघीय विषय-सूची) (३) नमक (नं० ४७ संघीय विषय-सूची) (४) कोर-पोरेशन-टैक्स (नं० ४६) १० वर्ष बाद ।

२—सामान्य दशाओं में संघीय-देशी राज्यों पर निम्न लिखित कर नहीं लगाये जायँगेः—

(१) आय-कर और आय-कर पर अतिरिक्त कर (Sur charge) (नं० ५४) (२) सम्पत्ति पर कर (नं० ५५)

३—असाधारण दशाओं में संघीय देशी राज्यों को संघ के लिए कर देना होगाः—

(१) आयकर पर अतिरिक्त कर ।

४—असाधारण दशाओं में संघीय-देशी-राज्यों पर संघ के लिए कर नहीं लगाया जायगा ।

(१) उत्तराधिकार-कर पर अतिरिक्त कर (नं० ५६) (२) टरमीनल-टैक्स पर अतिरिक्त कर (३) स्टांप-ड्यूटी पर अतिरिक्त-कर (नं० ५७)

५—संघ की आय के निम्न-लिखित स्रोत ऐसे हैं जो देशी राज्यों से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कर द्वारा प्राप्त नहीं किये जायँगेः—

(१) 'संघीय-सूची' में लिखित विषयों के संबंध में फीस। (२) डाक-विभाग का लाभ। (३) संघीय-रेलवे का लाभ। (४) टकसाल आदि का लाभ। (५) रिज़र्व बैंक आदि का लाभ। (६) संधियों के अधीन सर्वोच्च-सत्ता के लिए संघीय या संघ से अलग देशी राज्यों की ओर से आर्थिक सहायता (Contributions).

२—संघ का व्यय

केन्द्रिय-सरकार के सन् १९३७–३८ के अनुसार संघ का निम्न लिखित व्यय ऐसा होगा जिस पर संघीय-व्यवस्थापिका-सभा को सम्मति देने का कोई अधिकार न होगाः—

	(लाख रुपयों में)
१—गवर्नर-जनरल का स्टाफ, वृति आदि ...	१५.५४
२—पबलिक-सर्विस-कमीशन	.४.६५
३—ईसाई धर्म-विभाग	२७.८२
४—कबीले इलाकों का प्रबंध	१९२.०५
५—वैदेशिक-विभाग	५२.२४
६—बिलोचिस्तान	६४.९४
७—सम्राट के प्रतिनिधि के लिए	१०५.५५
८—ऋण पर ब्याज	१३२३.६५
९—सेना का व्यय (असल)	४४६२.००
१०—पेंशनें	२८६.००
११—प्रान्तों को आर्थिक सहायता	३१६.००
योग	६८५०.७४

उपरोक्त व्यय जिस पर संघीय-व्यवस्थापिका-सभा सम्मति नहीं दे सकेगी सम्पूर्ण नहीं है। इनमें संघीय सरकार की वह ब्याज सम्मिलित नहीं है जिसके लिए संघ उत्तरदायी है। किन्तु ये ब्याज रेलवे, पोस्ट तथा प्रान्तों से प्राप्त होगी। शासन-प्रबंध के संबंध में पेंशन का खर्च भी सम्मिलित नहीं है। संघीय न्यायालय के व्यय, एडवोकेट जनरल, कौंसलर, आर्थिक परामर्शदाता तथा उनके स्टाफ़-का व्यय भी इसमें सम्मिलित नहीं है। ऐसी दशा में भी ८० करोड़ रुपये कुल व्यय में से ६८ करोड़ और ५० लाख रुपयों का खर्च ऐसा है जिस पर व्यवस्थापिका-सभा को सम्मति देने का अधिकार ही नहीं है। अर्थात् समस्त व्यय के ८६% प्रतिशत व्यय पर व्यवस्थापिका-सभा की कोई सम्मति नहीं ली जायगी। सन् १९३७-३८ के भारत-सरकार के बजट में—वह व्यय जिस पर सम्मति ली जायगी और वह व्यय जिस पर सम्मति नहीं ली जायगी—का विभाजन निम्न प्रकार किया गया है।

	करोड़
व्यय (जिस पर व्यवस्थापिका की सम्मति ली जायगी)	९०.१२
व्यय (जिस पर ,, की सम्म० नहीं ली जायगी)	१०६.८८
※योग	१९७.०० क०

※ उपरोक्त व्यय में रेलवे और पोस्टल सर्विस का व्यय जो ८० करोड़ रुपये है, भी सम्मिलित है। नवीन-शासन-विधान के अन्तर्गत उपरोक्त व्यय जहाँ तक रेलवे से संबंध है व्यवस्थापिका-सभा के नियंत्रण में न होगा।

भारत के सुप्रसिद्ध अर्थ-शास्त्री प्रोफ़ेसर शाह ने यह स्पष्ट रूप से बतलाया है कि संघ की स्थापना से पूर्व बजट में आय-व्यय का सन्तुलन सर्वथा असंभव-सा है; और आपने बजट की नाजुक दशा के निम्न लिखित कारण बतलाये हैं।

(१) रेलवे बजट में लगातार घाटा; (२) आयात-निर्यात कर में कमी; (३) प्रान्तों की आर्थिक सहायता के लिए ४½ करोड़ रुपये। (४) ब्रह्मा के पृथक् हो जाने से २.३८ करोड़ रुपयों का असल घाटा। (५) नवीन शासन-विधान के संबंध में अतिरिक्त व्यय १ करोड़ रुपये सालाना। (६) देशी राज्यों की आर्थिक सहायता (Contribution) की मुआफ़ी जो प्रायः ½ करोड़ रुपये या अधिक होगी।

इस प्रकार १२ करोड़ रुपये सालाना का यह घाटा केन्द्रिय बजट में पूरा नहीं हो सकेगा।

संघीय-सरकार को धारा १६२ के अनुसार संघ की आय की जमानत पर संघीय व्यवस्थापिका-सभा के क़ानून (Act) द्वारा राष्ट्रीय ऋण प्राप्त करने का अधिकार है। परन्तु इससे राष्ट्र निर्माण संबंधी कार्यों के प्रोत्साहन की आशा कम है; क्योंकि केन्द्रिय या संघ सरकार के बजट का ⅘ भाग तो ऐसा है जिस पर व्यवस्थापिका-सभा का नियंत्रण ही नहीं है।

३—आय-व्यय के हिसाब की जाँच

शासन-विधान की धारा १३६ के अनुसार—

१—भारत का एक आडीटर-जनरल होगा जिसकी नियुक्ति सम्राट् द्वारा होगी और वह अपने पद से उन्हीं कारणों से हटाया

जा सकेगा जिन कारणों से संघीय न्यायालय का जज हटाया जा सकेगा।

२—उसकी 'सर्विस' की शर्तें व नियम सपरिषद्-सम्राट द्वारा निर्धारित किये जाँयगे; जब वह अपने पद का त्याग कर देगा तो उसके बाद सम्राट की सर्विस में—भारत में—वह किसी भी पद पर नियुक्त नहीं किया जा सकेगा।

३—आडीटर-जनरल के कार्य वही होंगे जो कौंसिल-आर्डर द्वारा निर्धारित किये जाँयगे। संघीय व्यवस्थापिका-सभा अपने क़ानून (Act) द्वारा इन कार्यों में परिवर्तन कर सकेगी। किन्तु ऐसा बिल गवर्नर-जनरल की पूर्व आज्ञा से ही पेश किया जा सकेगा।

अध्याय १०

आर्थिक योजना

१—व्यापारिक भेद-भाव

भारतीय-लोकमत विदेशी राजनीतिक नियंत्रण के प्रति अधिक संवेदन-शील है अतः भारत में राजनीतिक-आन्दोलन ही अधिक आकर्षक है। भारतीय आर्थिक स्वराज्य के लिए अभी तक ऐसा प्रयत्न नहीं किया गया है जिससे यह समस्या भारतीय-लोकमत के लिए अधिक आकर्षक बन जाय। भारत राजनीतिक दृष्टि से पराधीन तो है ही परंतु वह आर्थिक दृष्टि से भी सर्वथा परतंत्र है। हमारा ध्यान इस आर्थिक परतंत्रता के नाश करने की ओर बहुत कम जाता है जो नहीं के बराबर है। सत्य तो यह है कि भारत में अभी कोई उपयोगी आर्थिक योजना तैयार ही नहीं की गयी। भारत में प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना हो गयी है और संघ की स्थापना के लिए भी प्रयत्न किया जा रहा है। क्या यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि भारतीय जनता 'प्रान्तीय स्वराज्य' के अधीन पहले से अधिक सुखी है या संघ की स्थापना के बाद भारत-भूमि के निवासी आज की अपेक्षा कहीं अधिक सुखी हो सकेंगे। राष्ट्-

वादी नेता इस बात पर जोर देते हैं कि भारत की स्वाधीनता का अभिप्राय है देश की गरीबी, आर्थिक पराधीनता और बढ़ती हुयी बेकारी का सर्वनाश; जनता, यथेष्ट मात्रा में भोजन एवं वस्त्र उपलब्ध करती हुयी सांसारिक — भौतिक और आध्यात्मिक सुख और शान्ति प्राप्त कर सके। जब तक जनता को पेट भरने के लिए स्वास्थ्य-वर्द्धक अन्न न मिले, शरीर-रक्षा के लिए वस्त्र न मिले, मानसिक और आत्मिक विकास एवं उत्कर्ष के लिए आवश्यक शिक्षा-दीक्षा न मिले—निज संस्कृति और सभ्यता के लाभ न उठा सके, तब तक जनता के लिए राजनीतिक स्वराज्य का कोई मूल्य नहीं। यह उसी समय हो सकता है जबकि भारत का शासन वास्तविक लोकतंत्र एवं स्वराज्य के सिद्धान्तों के आधार पर हो। शासन जनता का, जनता के लिए और जनता द्वारा हो।

भारत औद्योगिक और व्यापारिक दृष्टि से संसार में सबसे पिछड़ा देश है। यहाँ कृषि ही प्रमुख व्यवसाय है। परंतु सरकार ने इसके सुधार के लिए अभी तक कोई यथेष्ट प्रयत्न नहीं किया। भारत की परिस्थिति का विश्लेषण किया जाय तो हम इस परिणाम पर पहुँचेंगे कि भारत में बढ़ती हुयी शिक्षितों में बेकारी किसानों और मजदूरों की दुर्दशा, राजनीतिक—क्षोभ और अशान्ति के मुख्य कारण हैं।❀

मोन्टेग्यू-चेम्सफोर्ड-रिपोर्ट में व्यापारिक-भेद-भाव (Commercial discrimination) के संबंध में जो सिफारिशें की गयीं

❀ Sir Firoz Sethana's article in the Hindustan Review (March 1936)

थीं, वे संयुक्त-पार्लिमैंटरी-कमेटी-रिपोर्ट की शिफारिशों से क़हीं अधिक उत्तम हैं। मोन्टेग्यू-चेम्सफोर्ड-रिपोर्ट में लिखा है "इससे बढ़कर और किसी विश्वास से इंग्लैंड और भारत के श्रेष्ठ-संबंध खतरे में नहीं पड़ सकते हैं कि व्यापार पक्ष में भारतीय आर्थिक नीति ग्रेट ब्रिटेन के ह्वाइटहाल❀ द्वारा निर्धारित की जाती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस प्रकार का विश्वास इस समय मौजूद है। भविष्य में इसके लिए कोई स्थान नहीं मिलना चाहिये यह भी बिलकुल स्पष्ट है।"

सर तेजबहादुर सप्रू के विचार—सर तेजबहादुर सप्रू ने संयुक्त-पार्लिमैंटरी-कमेटी के लिए अपने आवेदन-पत्र में यह मांग प्रस्तुत की कि नवीन शासन-विधान के अन्तर्गत इस आर्थिक परम्परा को और भी अधिक व्यापक कर दिया जाय। इस विषय में भारत-मंत्री को भारतीय-व्यवस्थापिका सभा के निर्णयों में हस्तक्षेप न करने दिया जाय। सर सप्रू ने यह आग्रह किया कि इस संबंध में सन्देह के लिए कोई गुंजाइश न होनी चाहिये कि संघीय व्यवस्थापिका सभा को पूरा आर्थिक स्वराज्य दे दिया जाय।

गवर्नर-जनरल और गवर्नर का विशेष उत्तरदायित्व—शासन-विधान की धारा १२ के अनुसार गवर्नर-जनरल और धारा ५२ के अनुसार गवर्नर का यह 'विशेष उत्तरदायित्व' होगा कि वे भारत में इंगलैंड या ब्रह्मा के माल के साथ भेद-पूर्ण-व्यवहार पर रोक लगा दें। संयुक्त-पार्लिमैंटरी-कमेटी-रिपोर्ट में लिखा है:—

❀ 'श्वेत-भवन' (White Hall) से अभिप्राय ब्रिटिश-सरकार के भारत-मंत्री से है।

"हम यह सिफ़ारिश करते हैं कि गवर्नर-जनरल के लिए शासनादेश-पत्र में उसे स्पष्ट और पूर्ण आदेश दिया जाय। यह बिल्कुल स्पष्ट कर देना चाहिये कि गवर्नर-जनरल के विशेष उत्तरदायित्वों का यह आशय नहीं है कि इसका सरकार और भारतीय व्यवस्थापिका सभा की निज आर्थिक नीति निर्माण की क्षमता पर कोई प्रभाव पड़ेगा। उनको इंगलैंड या दूसरे देशों के साथ पारस्परिक टैरिफ़ रियायतें प्राप्त करने की पूरी आज़ादी होगी और गवर्नर-जनरल का यह कर्त्तव्य होगा कि वह टैरिफ़ नीति, समझौता, या टैरिफ़ व्यवस्था में सिर्फ उसी समय हस्तक्षेप करे जब कि उसकी सम्मति में प्रस्तावित या विचाराधीन नीति का मन्तव्य इंगलैंड और भारत के बीच व्यापार के संबंध में ऐसी बाधाएँ उपस्थित करना हो जिनसे भारत का आर्थिक हित-साधन तो न हो किन्तु इंगलैंड के हितों को हानि पहुँचे।"

दो प्रकार के भेद-भाव—पार्लिमेंटरी-कमेटी-रिपोर्ट में यह लिखा है कि भेद-भाव दो प्रकार के हो सकते हैं। (१) प्रबंधात्मक भेदभाव और (२) व्यवस्थापक भेदभाव।

प्रबंधात्मक भेद-भाव—प्रबंधात्मक (Administrative Discrimination) भेद-भाव क्या है? रिपोर्ट में इसकी परिभाषा नहीं दी गयी है। प्रबंधात्मक भेद-भाव का निश्चय गवर्नर-जनरल की इच्छा पर छोड़ दिया गया है। यदि मंत्री किसी ऐसे कार्य का प्रस्ताव करें कि जिसके कारण गवर्नर-जनरल को हस्तक्षेप करना पड़े और यदि आवश्यकता हो तो या तो मंत्रियों की सम्मति को अस्वीकार करे या अपने विशेष अधिकार का प्रयोग करे। श्रीयुत (अब जस्टिस) एम. आर. जयकर का यह कथन है कि—

प्रबंधात्मक भेद भाव संबंधी धाराओं के अन्तर्गत किसी भी ब्रिटिश निर्माता (Manufacturer) को यह अधिकार होगा (जिसका टेन्डर भारतीय निर्माता के टेन्डर से १०० पौंड कम होगा) कि यदि गवर्नर-जनरल या गवर्नर अपने विशेष उत्तरदायित्व का प्रयोग न करें तो भी प्रबंधात्मक भेद-भाव के आधार पर संघीय न्यायालय में न्याय की प्रार्थना करे। इस प्रकार की धारायें न केवल भारत में भारतवासियों के औद्योगिक हितों के विरुद्ध हैं किन्तु भारत में ब्रिटिश हितों के लिए भी हानिकर हैं। इसमें व्यापारिक समानाधिकार का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। किसी भी दशा में धनिक और औद्योगिक दृष्टि से शक्तिशाली इङ्गलैंड जैसे देश और ग़रीब व पिछड़े भारत जैसे देश के बीच में व्यापारिक समानाधिकार (Reciprocity) की बात कपट है; और प्रबंधात्मक भेद-भाव के संबंध में तो व्यापारिक समानाधिकार सारहीन कथन है। कल्पना कीजिये—ब्रिटिश रेल के लिए कोई 'आर्डर' है जिसका मतलब है १०००० ब्रिटिश मजदूरों के लिए काम; क्या इंगलैंड में कोई रेलवे कम्पनी, सार्वजनिक संस्था या सरकार जर्मनी या कनाडा में केवल इसलिये 'आर्डर' देगी कि जर्मन या कनाडा का 'टेन्डर' ब्रिटिश 'टेन्डर' से १०० पौंड कम है ? क्या वह भारत में भारतीय निर्माता के उस टेन्डर को मंजूर करेगी जो ब्रिटिश टेन्डर से १०० पौंड कम है।" ❀

व्यवस्थापक-भेद-भाव—(Legislative Dicrimination) का तात्पर्य यह है कि गवर्नर-जनरल या गवर्नर ऐसे बिल या

❀ Mr. Jayakar's Memorandum J. P. C. Report Vol. III (1934)

प्रस्ताव को असेम्बली में प्रस्तुत करने की आज्ञा न देगा जो उसकी सम्मति में भेद-भाव सूचक होगा। इस प्रकार गवर्नर, या गवर्नर-जनरल को व्यापार-क्षेत्र में हस्तक्षेप करने का विशेषाधिकार प्रदान करके, वास्तव में, भारतीय व्यापार-वाणिज्य के साथ विश्वास-घात किया गया है। भारतीय लोकमत भारतीय-व्यापार की रक्षा के लिए संरक्षण के पक्ष में है।

यह तो सत्य है कि स्वदेश के व्यापार-वाणिज्य की उन्नति के लिए भारतीय व्यवस्थापिका सभा और भारतीय-शासन को ऐसे नियम, क़ानून निर्माण करने और कार्य करने पड़ेंगे जिनसे विदेशी पूंजी या व्यापार की अपेक्षा भारतीय पूंजी और व्यापार की उन्नति होगी। इंगलैंड और ब्रिटिश-साम्राज्य के अन्तर्गत उपनिवेशों में आज पर्यन्त ऐसे क़ानून (Law) प्रचलित हैं जिनके कारण ब्रिटिश उपनिवेश भारत और भारतीय नागरिकों या प्रवासी भारतीयों के साथ व्यापार-क्षेत्र में भेद-भाव का व्यवहार करते हैं। दक्षिणी-पूर्वी-अफ्रीका, जंजीबार और कनाडा में तो भारतीय व्यापारियों के लिए प्रतिबन्धात्मक क़ानून बड़े भयंकर रूप में इस समय प्रचलित हैं।

भारत में ब्रिटिश नागरिकों के अधिकार—शासन-विधान की धारा १११ के अनुसार इंगलैंड में रहने वाले ब्रिटिश नागरिकों के लिए वह भारतीय संघीय-क़ानून या प्रान्तीय क़ानून प्रयुक्त न होगा जो ब्रिटिश भारत में उनके प्रवेशाधिकार (Right of Entry) के लिए प्रतिबंधकारी हो या उन पर जन्म, स्थान, जाति, धर्म, निवास इत्यादि के कारण यात्रा, निवास, सम्पत्ति प्राप्त करने, सरकारी पद-ग्रहण करने या व्यापार, व्यवसाय आदि के संबंध में प्रतिबंधकारी हो।

ब्रिटिश कम्पनी पर अधिक कर न लगाया जायगा—धारा ११२ के अनुसार कोई ऐसा क़ानून जो इंगलैंड या ब्रह्मा में निर्मित कम्पनी पर ब्रिटिश भारत में निर्मित कम्पनी से अधिक कर लगाने का विधान करेगा, तो वह कर अवैध होगा; जो ब्रिटिश कम्पनियाँ इंगलैंड में बनायी गयी होंगी और भारत में व्यापार करेंगी, तो यह समझा जायगा कि उन कम्पनियों ने भारतीय-क़ानून की उन धाराओं के अनुसार कार्य किया है जो कम्पनी के डायरेक्टरों, हिस्सेदारों, एजेंट और कर्मचारियों के धर्म, निवास, भाषा, जन्म स्थान आदि के संबंध में होंगी। इंगलैंड में निर्मित ब्रिटिश-कम्पनी को, जो भारत में व्यापार करेगी, ब्रिटिश भारत में निर्मित कम्पनी के समान ही संघ या प्रान्त से आर्थिक सहायता (Subsidies) मिलेगी। जो जल-यान इंगलैंड में रजिष्ट्री किये जायँगे उनके संबंध में भी कोई भेद-भाव-सूचक व्यवहार नहीं किया जायगा। ब्रिटिश भारत और इंगलैंड के डाक्टरों को भारत या इंगलैंड में डाक्टरी करने के समानाधिकार हैं।

परम्परा द्वारा व्यापारिक समानाधिकार प्राप्ति का अधिकार—शासन-विधान की धारा ११८ ने परम्परा स्थापित करने के लिए अधिकार दिया है। यदि संघ की स्थापना के बाद ब्रिटिश-सरकार और संघीय-सरकार के बीच में एक ऐसी परम्परा (Convention) स्थापित हो जाय कि जिसके अनुसार ब्रिटिश नागरिकों, कम्पनियों, जहाजों आदि और भारतीय नागरिकों, कम्पनियों व जहाजों को एक दूसरे प्रदेश में व्यापारिक समानाधिकार प्राप्त हो जायँ तो कौंसिल-आर्डर द्वारा यह घोषणा की जा सकेगी कि भेद-भाव-संबंधी धाराओं का प्रयोग नहीं किया

जायगा। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि शासन-विधान की व्यापारिक धाराएँ भारतीय हितों भारतीय व्यापार, उद्योग-धंधों के लिए सबसे अधिक हानिकर हैं। सर फ़ीरोज़ सेठाना ने, जो लिबरल-दल के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ हैं, बड़े दुःख पूर्ण शब्दों में लिखा है:—

"कहा जाता है कि हमें शासन-सुधार दिये गये हैं; किन्तु योजना इतनी अधिक प्रतिक्रियावादी है कि जिसके कारण ब्रिटिश न्याय-भावना एवं निष्पक्षता में हमारी वह श्रद्धा नहीं रही जो पहले किसी समय में थी।"❀

२—भारत की रिज़र्व-बैंक

रिज़र्व-बैंक की स्थापना—संघ में आर्थिक उत्तरदायित्व की आवश्यकता को आज से तीन वर्ष पूर्व अनुभव की गयी थी। यह विचार किया गया था कि "प्रथम संघीय-मंत्रि-मंडल के निर्माण से पूर्व एक रिज़र्व-बैंक की स्थापना भारतीय व्यवस्थापिका सभा द्वारा हो जानी चाहिये जो राजनीतिक प्रभाव से उन्मुक्त हो। और संघ की स्थापना से पूर्व सफलतापूर्वक अपना कार्य भी करने लगे; बैंक को मुद्रा और विनिमय का प्रबंध सौंपा जायगा।" सन् १६३३ के दिसम्बर मास में, भारत-मंत्री द्वारा नियुक्त रिज़र्व-बैंक कमेटी की सिफ़ारिशों के आधार पर एक बिल भारतीय केन्द्रिय असेम्बली में पेश किया गया, जो स्वीकृत हो

❀ Vide The Hon. Sir Phiroze C. Sethana's article in the Hindustan Review Feb.--March 1935, page 534.

गया। यह रिजर्व बैंक क़ानून (१९३४) के नाम से प्रसिद्ध है। १ अप्रेल सन् १९३५ से बैंक का कार्य प्रारम्भ होगया।

बैंक का संघठन और उसके कार्य—रिजर्व-बैंक के कार्य हैं बैंक नोट प्रचलित करने की व्यवस्था करना और ब्रिटिश भारत में धन-संबंधी स्थिरता को क़ायम रखने के लिए धन सुरक्षित रखना। मुद्रा-निर्माण का कार्य भी बैंक के अधीन है। बैंक की प्रारम्भिक हिस्से की पूँजी ५ करोड़ रुपये है जो १००) के हिस्सों में बाँट की गयी है। बम्बई, कलकत्ता, देहली, मद्रास व रंगून में हिस्सेदारों के प्रथक्-प्रथक् रजिस्टर रखे जाते हैं। रिजर्व-बैंक का साधारण निरीक्षण व संचालन डायरेक्टरों के केन्द्रिय-बोर्ड (Central Board of Directors) के अधीन है। इस बोर्ड में निम्नलिखित सम्मिलित हैं।

१ गवर्नर }
२ डिप्टी-गवर्नर } सपरिषद्-गवर्नर-जनरल द्वारा ५ साल के लिए नियुक्ति।
४ डायरेक्टर—सपरिषद्-गवर्नर-जनरल द्वारा नियुक्त।
८ डायरेक्टर—हिस्सेदारों की ओर से निर्वाचित।
१ सरकारी-कर्मचारी—सपरिषद्-गवर्नर-जनरल द्वारा मनोनीत।

---

१६ योग

व्यवस्थापक सभाओं के सदस्य बैंक के डायरेक्टर नहीं बन सकते। बैंक का एक आफ़िस लन्दन में है।

गवर्नर-जनरल के अधिकार—शासन-विधान की धारा १५२ के अनुसार गवर्नर-जनरल को निम्न लिखित मामलों में स्वेच्छा-पूर्ण अधिकार का प्रयोग करने का विधान है:—

(१) रिजर्व-बैंक के गवर्नर, डिप्टी गवर्नर की नियुक्ति व पदच्युति; उनके कार्य-काल का निर्धारण; उनके वेतन-वृत्तियों की स्वीकृति। (२) बैंक के लिए स्थानापन्न गवर्नर या डिप्टी गवर्नर की नियुक्ति। (३) बैंकके सैन्ट्रलबोर्ड को स्थगित (Suspend) करना। (४) बैंक के ऋण की अदायगी।

डायरेक्टरों की नियुक्तियाँ करते समय गवर्नर-जनरल अपने व्यक्तिगत निर्णय का प्रयोग करेगा।

मुद्रा-व्यवस्था संबंधी बिलों के लिए पूर्व स्वीकृति—धारा १५३ के अनुसार संघीय व्यवस्थापिका-सभाओं में गवर्नर-जनरल की स्वेच्छापूर्वक पूर्व-स्वीकृति के बिना कोई ऐसा बिल या संशोधन प्रस्तुत नहीं किया जायगा जिसका उद्देश रिजर्व बैंक के विधान व कार्यों में परिवर्तन करना हो या जो संघ के मुद्रा या सिक्के पर प्रभाव डालेगा। इस प्रकार रिजर्व बैंक को अर्थ-मंत्री के कार्य-क्षेत्र से बाहर रखने का प्रयत्न किया गया है। संघीय अर्थ-मंत्री देश की मुद्रा और विनिमय के संबंध में कोई नीति-निर्माण नहीं कर सकेगा। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि देश की मुद्रा-नीति और विनिमय-नीति का आर्थिक दशा से घनिष्ठ संबंध है। शासन-विधान ने इन दोनों को 'राजनीतिक प्रभाव' से अलग रखकर, वास्तव में, अर्थ-मंत्री को मुद्रा और विनिमय-नीति के संबंध में अनुत्तरदायी बना दिया है। संयुक्त-पार्लिमेंटरी कमेटी के मजदूर सदस्यों ने इस नीति का घोर विरोध किया और इस बात पर जोर दिया कि "रिजर्व बैंक की स्थापना में जो धारणा* काम कर रही है, उससे हम सहमत नहीं हैं।"

* यह धारणा कि बैंक राजनीतिक प्रभाव से मुक्त हो।

"हमारा विचार यह है कि साख और मुद्रा-नीति के संबंध में निश्चय समाज के अत्यन्त महत्वपूर्ण हित हैं। उसका निर्माण हिस्सेदारों द्वारा न होना चाहिये जिनके व्यक्तिगत हित राज्य की कुशलता के साथ मेल नहीं खा सकते। किन्तु सरकार का उस पर प्रभाव होना चाहिये। "किसी भी दशा में यह तो स्पष्ट कर देना चाहिये कि भारत की मुद्रा व साख संबंधी नीति उसकी आवश्यकतानुसार ही निश्चय की जायगी—विदेशी साहूकारों और बाहरी आर्थिक हितों के अनुसार नहीं।"†

किन्तु यह प्रकट रहस्य है कि नीति को कार्यान्वित करते समय इंगलैंड के महाजनों और पूँजी-पतियों के हितों का पूरा ध्यान रक्खा जायगा। यह स्थिति वास्तव में बड़ी विकट है।

३—'संघीय रेलवे अधिकारी' ❀

'संघीय-रेलवे-अधिकारी' का संगठन—भारतीय शासन-विधान परिशिष्ट ८ के अनुसार 'संघीय रेलवे अधिकारी' (Federal Railway Authority) एक संस्था होगी जो स्वयं अपनी ओर से नालिश कर सकेगी या उसके विरुद्ध नालिश की जा सकेगी। इसमें ७ सदस्य होंगे जिनकी नियुक्तियाँ गवर्नर-जनरल द्वारा होंगी। प्रथम सदस्यों में से ३ सदस्य तीन वर्ष के लिए नियुक्त किये जायँगे और इनमें से प्रत्येक सदस्य पुनः ३ या ५

† J. P. C. Report Vol I Part II page 427-428.

❀ 'संघीय रेलवे अधिकारी' (Federal Railway Authority) संघ की एक प्रमुख संस्था है। यह वर्त्तमान 'रेलवे बोर्ड' की उत्तराधिकारिणी है। हम भविष्य में 'संघीय रेलवे अधिकारी' के लिए केवल 'अधिकारी' शब्द का प्रयोग करेंगे।

साल के लिए नियुक्त किया जा सकेगा। दूसरे सदस्य ५ वर्ष के लिए नियुक्त किये जायँगे और उसकी समाप्ति पर पुनः ५ साल तक के लिए नियुक्त किये जा सकेंगे। गवर्नर-जनरल अपने व्यक्तिगत निर्णय से किसी भी सदस्य को अयोग्य होने के कारण पद से हटा देगा।

सदस्यों की योग्यता—'रेलवे अधिकारी' के सदस्य निम्न लिखित व्यक्ति हो सकेंगेः—

(१) वह व्यक्ति जिन्हें व्यापार, उद्योग, कृषि, राजस्व और शासन-प्रबंध का अनुभव हो; या

(२) विगत १२ महीनों में या इस समय जो व्यक्ति—

(i) संघीय या प्रान्तीय असेम्बली-कौंसिल का सदस्य हो; या,

(ii) सम्राट की सर्विस में रहा हो; या,

(iii) भारत में रेलवे अफ़सर रहा हो।

'रेलवे अधिकारी के अधिवेशन—रेलवे अधिकारी का प्रत्येक कार्य एवं प्रश्न का निर्णय उसके अधिवेशन में बहुमत से किया जायगा। ऐसे अधिवेशन में गवर्नर-जनरल द्वारा भेजा गया प्रतिनिधि भी भाग ले सकेगा; परन्तु राय नहीं देगा।

'चीफ़ रेलवे कमिश्नर'—'रेलवे-अधिकारी के स्टाफ का प्रमुख चीफ़ रेलवे कमिश्नर कहलायगा। इसकी नियुक्ति 'अधिकारी' से परामर्श करने के बाद गवर्नर-जनरल द्वारा होगी। यह नियुक्ति व्यक्तिगत निर्णय से की जायगी। चीफ़-कमिश्नर की सहायता के लिए आर्थिक-कमिश्नर होगा। चीफ़-रेलवे-कमिश्नर 'अधिकारी' और गवर्नर-जनरल द्वारा पद से हटाया जा सकेगा।

रेलवे के संबंध में कार्य-कारिणी सत्ता—शासन-विधान की धारा १८१ में लिखा है कि रेलवे के नियमन, रचना-निर्माण, और कार्यों के संबंध में संघ की कार्य-कारिणी-सत्ता का प्रयोग 'संघीय रेलवे अधिकारी' द्वारा होगा।

'रेलवे अधिकारी' के सिद्धान्त— रेलवे अधिकारी' शासन-विधान के अन्तर्गत अपने कार्यों का सम्पादन व्यवसाय के सिद्धान्तों के आधार पर करेगा। वह कृषि, उद्योग, व्यापार और जनता के हितों का ध्यान रक्खेगा। वह रेलवे की आय में से ही अपना खर्च पूरा करने का प्रयत्न करेगा। इन कार्यों के करने में **नीति के प्रश्नों** के संबंध में उसे संघीय सरकार के आदेशों के अनुसार कार्य करना होगा। यदि किसी प्रश्न पर संघीय सरकार और अधिकारी में विवाद हो और यह निश्चय न हो सके कि अमुक प्रश्न नीति का प्रश्न है या नहीं तो गवर्नर-जनरल का स्वेच्छापूर्वक निर्णय अन्तिम होगा।

गवर्नर-जनरल के अधिकार—शासन-विधान की गवर्नर-जनरल के विशेष उत्तरदायित्वों संबंधी धाराएँ और उसके उन कार्यों संबंधी धाराएँ जिन्हें वह स्वेच्छा या व्यक्तिगत-निर्णय से करेगा उन मामलों के संबंध में भी प्रयोग में लायी जाँयगी जो अधिकारी को सौंप दिये गये हैं। गवर्नर-जनरल अपने व्यक्तिगत-निर्णय से संघीय सरकार और अधिकारी के पारस्परिक संबंधों से उत्पन्न कार्य के संचालन के लिए नियम बनायगा।

'रेलवे अधिकारी' का राजस्व—रेलवे 'अधिकारी' एक 'फंड' की स्थापना करेगा, और उसका नियंत्रण भी अधिकारी के अधीन होगा। यह 'फंड' रेलवे फंड के नाम से प्रसिद्ध होगा।

रेलवे 'अधिकारी' को जो आय प्राप्त होगी वह फंड में जमा की जायगी और जो व्यय होगा वह उस फंड से ही होगा। इसके अतिरिक्त 'अधिकारी' को अपने कर्मचारियों के लिए एक पृथक् 'प्रोवीडेन्ट फंड' स्थापित करने का भी अधिकार होगा।

प्रत्येक आर्थिक वर्ष में 'अधिकारी' की आय निम्न प्रकार से खर्च की जायगी :—

(१) काम करने का खर्च। (२) रेलवे के इक़रारनामों (Contracts) के अन्तर्गत धन देना। (३) 'पेंशन' तथा 'प्रोवीडेन्ट फंड' के लिए चन्दा। (४) रेलवे में सुधार। (५) संघ को ब्याज के रूप में धन देना। (६) और दूसरे उचित खर्च।

रेलवे अधिकारी को जो लाभ होगा, वह संघीय सरकार द्वारा बनायी हुई योजना के अनुसार 'संघ' और 'अधिकारी' को बाँट दिया जायगा। जब तक ऐसी योजना तैयार न होगी तब तक 'अधिकारी' की स्थापना से पूर्व जो प्रणाली जारी थी उसके अनुसार लाभ का बटवारा किया जायगा। जो धन संघ के हिस्से में आयगा, वह उसकी आय मानी जायगी। संघ 'रेलवे-अधिकारी' के लिए धन देगा; किन्तु यह धन बजट में खर्च की मद्द में दिखलाया जायगा।

रेलवे अधिकारी के कर्त्तव्य—रेलवे 'अधिकारी' पर संघ का ऋण वह होगा, जो समझौते से तय किया जायगा; यदि समझौता न होगा तो गवर्नर-जनरल द्वारा स्वेच्छा से जो धन तय किया जायगा, वह संघ को दिया जायगा। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि 'अधिकारी' संघ को मूलधन (Principal money) कम करने के लिए धन अदा न करेगा। संघ की आय में से संघ

द्वारा जो धन रेलवे के कर्ज़, क्षति-पूर्ति खर्चा आदि के संबंध में दिया जायगा, वह संघ को वापस दे दिया जायगा।

रेलवे-पुलिस—रेलवे 'अधिकारी' का यह कर्त्तव्य होगा कि वह उन प्रान्तों या संघीय देशी राज्यों को संघीय रेलवे में नियुक्त पुलिस के व्यय को अदा करे, जो उन्होंने व्यय किया हो; यदि इस संबंध में कोई प्रश्न उत्पन्न होगा तो उसका निर्णय गवर्नर-जनरल स्वेच्छा से करेगा।

आय-व्यय का निरीक्षण—रेलवे के हिसाब का निरीक्षण भारत के आडीटर-जनरल द्वारा किया जायगा। अधिकारी प्रति-वर्ष अपने कार्य तथा हिसाब की रिपोर्ट प्रकाशित करेगा।

रेलवे-दर-कमेटी—यदि रेलवे 'अधिकारी' और रेलवे का प्रयोग करने वाले या प्रयोग की इच्छा करने वाले व्यक्तियों के मध्य में दर (Rates) या यात्रा संबंधी सुविधाओं के संबंध में विवाद होगा तो गवर्नर-जनरल समय-समय पर 'अधिकारी' को राय देने के लिए रेलवे दर कमेटी नियुक्त करेगा।

किराये या दर के संबंध में क़ानून—रेलवे किराये या दर के संबंध में कोई भी बिल या संशोधन गवर्नर-जनरल की सिफ़ा-रिश के बिना संघीय व्यवस्थापिका सभा के किसी भी चेम्बर भी नहीं रक्खा जायगा।

रेलवे ट्रिब्यूनल—एक रेलवे-ट्रिब्यूनल होगा जिसमें एक अध्यक्ष और दो सदस्य होंगे जो गवर्नर-जनरल द्वारा स्वेच्छा से ८ व्यक्तियों के 'पेनल' (Panel) में से नियुक्त किये जायँगे ज़िसकी नियुक्ति भी स्वेच्छा से गवर्नर-जनरल द्वारा होगी। ट्रिब्यू-

नल का अध्यक्ष संघीय-न्यायालय का कोई एक जज होगा जो गवर्नर-जनरल द्वारा चीफ जस्टिस के परामर्श से नियुक्त किया जायगा। वह ५ वर्ष तक अध्यक्ष रहेगा और उसके बाद वह पुनः नियुक्त किया जा सकेगा। यदि जज संघीय-न्यायालय का जज न रहेगा, तो वह ट्रिब्यूनल का अध्यक्ष भी नहीं रहेगा। रेलवे ट्रिब्यूनल उसी अधिकार सीमा के अन्तर्गत कार्य करेगा जो उसे शासन विधान द्वारा प्रदान की गयी है और इस उद्देश से वह परिस्थितियों के अनुकूल ऐसे 'आर्डर' जारी कर सकेगा जो उसकी अधिकार सीमा के अनुसार होंगे; जैसे अस्थायी आर्डर, अधिकारी के आदेशों व आर्डरों को परिवर्त्तन करना, क्षति-पूर्ति, हर्जाना, व खर्चे की अदायगी के लिए आर्डर, दस्तावेज को प्रस्तुत करने तथा गवाहों की उपस्थिति के लिए आर्डर। अधिकारी और प्रत्येक संघीय राज्य एवं व्यक्ति का यह कर्त्तव्य होगा कि वह ऐसी आज्ञा का पालन करे। कानून के प्रश्न पर रेलवे ट्रिब्यूनल के निर्णय की अपील संघीय न्यायालय में होगी; संघीय न्यायालय में की गयी अपील की पुनः अपील नहीं होगी।

आलोचना

जिस प्रकार भारत में रिजर्व बैंक की स्थापना करके मुद्रा और विनिमय को मंत्रि मंडल की अधिकार-सीमा से अलग कर दिया है, उसी प्रकार 'संघीय रेलवे अधिकारी' की स्थापना का तात्पर्य रेलवे को मंत्रि-मंडल के नियंत्रण से अलग कर देना है। रेलवे को 'राजनीतिक प्रभाव' से प्रथक् रखने का मतलब हमारी समझ में नहीं आता। क्या यह मंत्रि-मंडल को एक सार्वजनिक महत्व के उपयोगी विभाग के प्रति उत्तरदायी बनाना है? क्या यह प्रथक्करण आर्थिक दृष्टि से किया गया है? इन दोनों प्रश्नों

का उत्तर निषेधात्मक है। विगत जून में वेजवुड-कमेटी (रेलवे-जाँच-कमेटी) की जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई, उससे यह सिद्ध होता है कि रेलवे में इस योजना से कोई विशेष सुधार नहीं होगा और न लाभ ही होगा। इसमें बिल्कुल भी सन्देह नहीं कि भारत में रेलवे-नीति सदैव से भारतीय हितों के विरुद्ध ब्रिटिश हितों के संरक्षण की ओर प्रवृत्त रही है। ब्रिटिश-सरकार रेलवे द्वारा अँगरेजों की रोजगारी के प्रश्न को हल करती है; ब्रिटिश पूँजी को भारत की रेलवे में लगाकर अंगरेज पूँजीपति भारत का अर्थ-शोषण करते हैं। इस समय रेलवे के प्रबंध में अनेकों बुराइयाँ हैं जिनका दूर किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। तीसरे दर्जे के यात्रियों के लिए हर प्रकार की असुविधाएँ, अधिक किराये की दर, स्टोर खरीदने में ब्रिटिश फर्मों के साथ रियायतें, सर्विस के संबंध में अँगरेज और अधगोरों के साथ विशेष रियायतें हैं। ये समस्त सुधार उसी समय संभव हो सकते हैं जब कि मंत्रि-मंडल रेलवे-विभाग के प्रति उत्तरदायी हो और संघीय व्यवस्थापिका-सभा का उस पर नियंत्रण हो। सन् १६३२ में कलकत्ता के एक भारतीय समाचार-पत्र में एक गुप्त-पत्र (Circular letter) छपा था जो श्री बैन्थल (अब सर एडवर्ड) ने यूरोपियनों की ओर से अधिकारियों तक पहुँचाया था। इसमें यह घोषित किया कि जहाँ तक संभव हो रेलवे और बन्दरगाह राजनीतिक प्रभाव से अलग कर दिये जाँय और स्वतंत्र क़ानूनी रेलवे बोर्ड स्थापित किया जाय। भारतीय असेम्बली में सर षड्मुखम चेट्टी की अध्यक्षता में इसका घोर विरोध किया गया। श्री० वी० दास ने यहाँ तक कहा कि—

"ब्रिटिश सरकार ने यह षड्यंत्र रचा है कि भारतीय व्यवस्थापिका-सभा से रेलवे का नियंत्रण अलग कर दिया जाय।" उन्होंने यह चेतावनी दी कि यदि क़ानूनी बोर्ड स्थापित हो गया तो "भारतीय उद्योगों के बल पर ब्रिटिश स्टोर ख़रीदे जायँगे और सब धन इंगलैंड चला जायगा। स्वराज्य के नाम पर जनता का प्रत्येक आर्थिक स्वत्व छीन लिया गया है और विदेशियों के हाथों में सौंप दिया गया है।"❀

❀ Vide Modern Review January 1935 Page 10.

अध्याय ११

भारत की सेना

१—भारत में सेना का उद्देश्य

भारत की सेना (Defence of India) के संबंध में विचार करने से पूर्व हमें यह जान लेने की आवश्यकता है कि भारत में सेना का क्या प्रयोजन है। शासन-विधान (१९३५) की किसी भी धारा में सेना के अभिप्राय का विधान नहीं है। किन्तु यह सभी स्वीकार करते हैं कि भारत में सेना का अभिप्राय (१) देश की बाहरी आक्रमण से रक्षा (२) देश की आन्तरिक शान्ति की रक्षा और (३) ब्रिटिश-साम्राज्य की रक्षा है। इस पिछले उद्देश्य की पूर्ति के लिए सेना को साम्राज्य-संबंधी (Imperial) विषय माना गया है। भारत में सेना पर नियंत्रण के तीन प्रमुख कारण बतलाये जाते हैं:—

(१) वाह्य-आक्रमण से रक्षा—भारत की स्थिति और दूसरे देशों व ब्रिटिश उपनिवेशों से भिन्न है। उसकी उत्तर-पश्चिमी-सीमा पर यूरोप व मध्य एशिया की ओर से आक्रमण की आशंका है। इसलिए उसकी रक्षा, उसके देश वासियों के जीवन व सम्पत्ति की रक्षा और अन्त में ब्रिटिश-साम्राज्य के हितों की रक्षा के लिए यह परमावश्यक है कि भारत में सेना का नियंत्रण ब्रिटिश-सरकार के अधीन रहे।

(२) भारत की आन्तरिक-रक्षा के लिए भी ब्रिटिश-सेना की आवश्यकता है। सायमन-कमीशन-रिपोर्ट के शब्दों में ब्रिटिश सेना "तटस्थ-शान्ति की संरक्षिका" (Neutral guardian of Peace) है। साम्प्रदायिक उपद्रवों के अवसरों पर ब्रिटिश-सेना निष्पक्षता से जनता की रक्षा करती है।

(३) ब्रिटिश-सम्राट की ओर से देशी राज्यों के साथ जो सन्धियाँ की गयी हैं उनके अनुसार भी देशी राज्यों की सहायता के हेतु सेना पर ब्रिटिश नियंत्रण आवश्यक है।❀

इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि भारत में सेना का मुख्य अभिप्राय साम्राज्य की रक्षा है। 'केपीटेशन ट्रिब्यूनल' के निर्णय के अनुसार ब्रिटिश सरकार भारत-सरकार के सैनिक-व्यय के के लिए प्रति वर्ष १५००००० पौंड देती है। हाल में भारत में ब्रिटिश घुड़सवार और पैदल सेना के यंत्रीकरण के लिए ब्रिटिश-सरकार ने ६००००० पौंड भारत-सरकार को दिये हैं जो आगामी तीन वर्षों में व्यय किये जायँगे। भारतीय लोकमत हमेशा इस विशाल सैनिक व्यय का विरोधी रहा है जो साम्राज्य की रक्षा के लिए भारत-पर लादा जाता रहा है।

सेना पर भारतीय नियंत्रण आवश्यक है—उत्तरदायी शासन या औपनिवेशिक-स्वराज्य की सबसे प्रमुख विशेषता है स्वदेश की रक्षा पर शासन का पूरा नियंत्रण। यदि शासन का सेना पर नियंत्रण न हो, तो वह उत्तरदायी नहीं हो सकता। सेना पर नियंत्रण के बिना स्वराज्य माया है। ब्रिटिश साम्राज्यान्तर्गत उपनिवेशों की निजी सेनाएँ हैं जिन पर ब्रिटिश-सरकार

❀ Simon Commission Report Volume II Page 169.

का नहीं औपनिवेशिक सरकारों का नियंत्रण है। भारतीय शासन-विधान (सन् १६१६ ई०) के अनुसार सेना का नियंत्रण वायसराय की कार्य-कारिणी-सभा (Executive Council) के अधीन है। 'गवर्नर-जनरल और सेनाध्यक्ष उसके सदस्य होते हैं। इस कौंसिल में तीन भारतीय सदस्य हैं। परन्तु सेना का प्रबंध गवर्नर-जनरल के हाथों में है। कौंसिल के सदस्य सैनिक नीति व प्रश्नों पर कुछ प्रभाव डाल सकते हैं। और उनसे परामर्श भी लिया जाता है। परन्तु नवीन-विधान की संघ-योजना ने सेना को मंत्रि-मंडल के कार्य-क्षेत्र से अलग कर उसे 'सुरक्षित विषय' बनाकर गवर्नर-जनरल के अधीन कर दिया है। यह स्थिति पहले की अपेक्षा और भी असन्तोषप्रद है।

२—ब्रिटिश-भारत प्रतिनिधि-मण्डल के प्रस्ताव

ब्रिटिश-भारत प्रतिनिधि-मंडल (British India Delegation) ने भारत में सेना के संबंध में जो प्रस्ताव किये थे, वे यद्यपि अत्यन्त सामान्य और बहुत ही 'मॉडरेट' हैं तथापि संयुक्त-पार्लिमैंटरी कमेटी ने उनमें से एक भी प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया।

प्रतिनिधि मंडल ने जो प्रस्ताव किये थे वे निम्न प्रकार हैं:—

(१) साम्राज्य की सेना-समिति (Imperial Defence Committee) के ढंग पर भारत में भी क़ानूनी 'भारतीय सेना-समिति' की स्थापना की जाय। (२) गवर्नर-जनरल का वह कौंसलर, जिसके अधीन सेना-विभाग (Department of defence) हो, गैर-सरकारी भारतीय होना चाहिये; और विशेष रूप से वह व्यवस्थापिका-सभा का निर्वाचित सदस्य या देशी राज्य का प्रतिनिधि हो। (३) इस समय अर्थ-सदस्य और अर्थ

विभाग का सेना पर जो नियंत्रण है, वह वैसा ही रक्खा जाय। (४) सैनिक नीति एवं सेना-बजट संबंधी समस्त प्रश्नों पर सम्पूर्ण मंत्रि-मंडल द्वारा विचार किया जाय। मत-भेद के समय गवर्नर-जनरल का नियंत्रण अन्तिम होगा।

३—सेना का भारतीय-करण

भारत में सेना के भारतीय-करण (Indianisation) की समस्या सबसे विकट है। भारतीय लोकमत भारतीय-करण के लिए अनेक दशाब्दियों से आन्दोलन कर रहा है। परन्तु इस दिशा में अभी कोई प्रगति नहीं हुई। इस समस्या पर तीन दृष्टि-बिन्दुओं से विचार किया जा सकता है—

(१) भारत में सेना पर नियंत्रण; अर्थात् भारत में सेना पर प्रबंध तथा नीति-संबंधी नियंत्रण भारतवासियों के हाथों में हो। (२) ब्रिटिश-अफ़सरों के स्थान में भारतीय अफ़सरों की नियुक्ति की जाय। (३) ब्रिटिश सेना के स्थान में भारतीय सेना रक्खी जाय।

सेना पर भारतीय नियंत्रण—भारत में सेना के प्रबंध एवं नीति पर संघीय-सरकार का नियंत्रण होना चाहिये। इसका तात्पर्य यह है कि सेना-संबंधी समस्त नियुक्तियाँ (सेनाध्यक्ष से लेकर सैनिक तक) भारतीय सरकार के हाथों में हो। स्थल-सेना, जल-सेना, आकाश-सेना सभी भारतीय सरकार के अधीन हों। सेना-विभाग के साथ वैदेशिक विभाग का घनिष्ठ संबंध है। अतः यह विभाग भी सेना-विभाग के साथ भारत-सरकार के अधीन होना चाहिये। सन् १९१८ ई० से पूर्व भारतवासियों को ब्रिटिश-राजा के 'कमीशन' (King's Commission) पर नियुक्त नहीं

किया जाता था। सन् १९१७-१८ से वायसराय के कमीशन पर नियुक्तियाँ की जाने लगीं; परन्तु इन पिछले अफ़सरों का पद (King's-Commission) के अफसरों के पद से नीचा था। जब (Sandhrust) के ब्रिटिश रायल मिलिट्री कालेज में कुछ स्थान भारतवासियों के लिए सुरक्षित कर दिये गये, तब भारतीय अफ़सरों की नियुक्ति भी राजा के कमीशन (King's Commission) द्वारा होने लगी। सन् १९२१ में असेम्बली में इस आशय का एक प्रस्ताव स्वीकार किया गया कि राजा के कमीशन (King's Commission) पर २५% प्रतिशत भारतीय अफसर नियुक्त किये जाँय। यह प्रस्ताव स्वीकार तो कर लिया गया, परन्तु इससे भारतीय-करण में कोई प्रगति नहीं हुई। इसी वर्ष लार्ड रीडिंग की सरकार ने एक सैनिक-समिति (Military Requirements Committee) नियुक्त की। इस कमेटी ने भारतीय असेम्बली के उक्त प्रस्ताव को स्वीकार किया और यह शिफ़ारिश की कि प्रति वर्ष भारतवासियों को 'कमीशन' दिये जाँय; उनका अनुपात प्रति वर्ष २½% के अनुसार बढ़ा दिया जाय जिससे दश वर्ष में ब्रिटिश और भारतीय अफ़सरों की संख्या समान हो जाय। सन् १९२२ में सेना के भारतीय-करण के संबंध में एक समिति (Skeen Committee) और नियुक्त की गयी। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट में यह प्रस्ताव किया कि यदि कोई अवांछनीय दुर्घटना घटित न हुई तो सेना के भारतीय-करण की योजना २८ वर्षों में पूरी हो जायगी। सपरिषद्-गवर्नर-जनरल ने इस रिपोर्ट का समर्थन किया। भारतीय-करण के संबंध में संयुक्त-पार्लिमैंटरी-कमेटी ने जो शिफ़ारिश की है, वह सर्वथा प्रतिक्रियात्मक है। रिपोर्ट में लिखा है:—

अर्थात्—"हमारी राय में यह असंभव है कि शासन-विधान क़ानून या किसी अन्य एक्ट में एक निश्चित काल में सम्पूर्ण भारतीय-करण के लिए कोई धारा जोड़ी जाय।"

इसी रिपोर्ट में एक दूसरे स्थान पर यह लिखा है कि—"हमें भारतीय-करण की समस्या का शासन-विधान-संबंधी समस्याओं से कोई संबंध प्रतीत नहीं होता।"

इस वाक्य को पढ़कर हमें बड़ा आश्चर्य है। जब सेना की भारतीय-करण जैसी महत्वपूर्ण समस्या का विधान से कोई संबंध नहीं तो यह कहना कि सेना के बिना स्वराज्य असंभव है कहाँ तक प्रासंगिक होगा, यह राजनीतिज्ञ—ब्रिटिश राजनीतिज्ञ ही जवाब दे सकते हैं।

४—सेना का व्यय

बड़े दुर्भाग्य की बात है कि हमारे सबसे निर्धन देश में सेना पर सबसे अधिक धन व्यय किया जाता है। सैनिक व्यय की कमी के लिए प्रति वर्ष बजट के समय प्रस्ताव पास किये जाते हैं। परन्तु इनका कोई प्रभाव प्रतीत नहीं होता। सन् १६१४ से पूर्व सेना पर २६ करोड़ रुपये सालाना व्यय होते थे। यह व्यय बढ़कर सन् १६२२—२३ में ६६ करोड़ हो गया। सन् १६३२—३३ में यह व्यय ४६ करोड़ हो गया। सन् १६३६—३७ के बजट में सेना के लिए ४५ करोड़ ४५ लाख रुपये सुरक्षित किये गये।

परिशिष्ट

व्यवस्थापक विषय सूची

नवीन शासन-विधान के अनुसार व्यवस्था संबंधी विषय तीन सूचियों में विभाजित किए गये हैं :—

१—संघीय व्यवस्थापक सूची

(१) भारत में सम्राट की नाविक, (जल-सेना) थल-सेना व आकाश सेना । (२) नाविक सेना, थल-सेना व आकाश-सेना संबंधी कार्य (Works); छावनी का स्वायत्त-शासन, छावनी में जन-निवास की व्यवस्था, ब्रिटिश भारत में छावनियों का सीमा निर्धारण । (३) वैदेशिक विषय; दूसरे देशों के साथ समझौतों की स्वीकृति, (Extradition) जिसमें अभियुक्त व अपराधियों का ब्रिटिश-साम्राज्य के उपनिवेशों को सौंपना भी सम्मलित है । (४) ईसाई धर्म-संबंधी विषय । (५) मुद्रा-विनिमय । (६) संघ का राष्ट्रीय ऋण । (७) डाक, तार, टेलीफोन, वायर लेस (बेतार) ब्राड-कास्टिंग; पोस्ट आफ़िस सेविंग बैंक । (८) संघीय पबलिक सर्विस, व संघीय पबलिक सर्विस कमीशन । (९) संघीय-पैंशन । (१०) संघ के भवन, कार्य, व भूमि आदि । (११) इम्पीरियल लायब्रेरी, इंडियन म्यूजियम, इम्पीरियल बार म्यूजियम, विक्टोरिया मेमोरियल इत्यादि जो संघ के नियंत्रण में हों । (१२) संघ-संस्थाएँ यथा, शिक्षण संबंधी, अन्वेषण संबंधी, औद्योगिक । (१३) बनारस तथा अलीगढ़ विश्वविद्यालय । (१४) भारत-वर्ष की सर्वे, हवाघर, भूगर्भ, प्राणी-विज्ञान तथा वनस्पति-विज्ञान संबंधी सर्वे । (१५) प्राचीन तथा ऐतिहासिक इमारतें । (१६) जन-संख्या (Census) । (१७) भारत में आगमन व

भारत से बाहर यात्रा, प्रवास व भ्रमण का नियंत्रण। (१८) बन्दरगाह के अस्पताल आदि। (१९) आयात निर्यात। (२०) संघीय रेलवे। (२१) मेरीटाइम शिपिंग। (२२) बड़े बन्दरगाहों का नियंत्रण। (२३) समुद्र-तटीय जल से बाहर मछली-व्यापार का नियंत्रण। (२४) आकाश-यान द्वारा यात्रा एवं यातायात की व्यवस्था आकाश-यान स्टेशन (aerodrome) की व्यवस्था। (२५) प्रकाशगृह। (२६) आकाश-यान व जल यान द्वारा यात्रा। (२७) कोपीराइट, अन्वेषण आविष्कार, व्यापार-चिह्न। (२८) चैक, हुंडी, रुक्का तमस्सुक। (२९) हथियार। (३०) विस्फोटक द्रव्य। (३१) अफीम, जहाँ तक उसकी खेती और उत्पादन से संबंध है। (३२) पैट्रोल। (३३) कोरपोरेशन। (३४) उद्योगों की उन्नति। तेल के कुओं और खानों में मजदूरों की रक्षा। (३५) बीमा-क़ानून। (३६) बैंकिंग। (३७) पुलिस की अधिकार-सीमा और सत्ता में वृद्धि। (३८) संघीय व्यवस्थापिका सभा के चुनाव। (३९) संघीय मंत्रियों, अध्यक्षों तथा स्पीकर के वेतन, वृत्तियाँ तथा अधिकार। (४०) इस सूची में उल्लिखित क़ानून के संबंध में अपराध। (४१) इस सूची में वर्णित किसी विषय के लिए जाँच व अंक-संग्रह। (४२) आयात-निर्यात कर। (४३) स्वदेश में बने माल पर कर। परन्तु इसमें निम्न लिखित सम्मिलित नहीं हैं:— (i) मानव द्वारा प्रयोग किए जाने वाले मादक पेय पदार्थ (ii) अफ़ीम, गांजा, चरस, (iii) औषध-संबंधी। (४४) कोरपोरेशन-टैक्स। (४५) नमक। (४६) स्टेट लाटरी। (४७) (Naturalisation)। (४८) भारत के अन्तर्गत प्रवास (Migration)। (४९) वजन के मापदंड का निर्धारण। (५०) रांची यूरोपियन मैंटल अस्पताल। (५१) न्यायालयों की अधिकार-सीमा एवं अधिकार। (५२) आयकर। (५३) कम्प-

नियों की पूंजी पर कर। (५४) उत्तराधिकार कर (इसमें कृषि-आयकर सम्मलित नहीं है)। (५५) हुंडी, चेक तथा तमस्सुक के विषय में स्टाम्प ड्यूटी की दर। (५६) टरमीनल टैक्स। (५७) इस सूची में वर्णित किसी भी मामले में फीस। इसमें अदालतों की फीस सम्मिलित नहीं हैं।

२—प्रान्तीय व्यवस्थापक सूची

(१) सार्वजनिक शान्ति (इसमें सम्राट की नाविक सेना, जल-सेना और आकाश सेना का प्रयोग सम्मिलित नहीं है); न्याय-प्रबंध, संघोय न्यायालय को छोड़, समस्त न्यायालयों का संगठन व फ़ीस; सार्वजनिक शान्ति की रक्षा के लिए नज़रबन्द व्यक्ति। (२) संघीय न्यायालय को छोड़ कर, अन्य न्यायालयों का इस सूची के विषयों के संबंध में निर्णय देने का अधिकार; माल की अदालतों की कार्य-पद्धति। (३) पुलिस, रेलवे पुलिस तथा ग्राम की पुलिस। (४) जेल। (५) प्रान्त का सार्वजनिक ऋण। (६) प्रांतीय सिविल नौकरियाँ, सर्विस कमीशन। (७) प्रान्तीय वृत्तियाँ (Pensions)। (८) प्रान्तीय निर्माण-कार्य, भवन व भूमि। (६) सरकार द्वारा भूमि प्राप्त करना। (१०) पुस्तकालय तथा अजायबघर। (११) प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं के चुनाव। (१२) प्रान्तीय मंत्रियों, अध्यक्षों (Presidents) स्पीकर, डिप्टी प्रेसीडेंट (उपाध्यक्ष) तथा डिप्टी प्रेसीडेंट के वेतन, वृत्तियाँ तथा प्रान्तीव व्यवस्थापिका सभाओं के विशेषाधिकार। (१३) स्वायत्त-शासन। (१४) सार्वजनिक स्वास्थ्य और सफ़ाई अस्पताल, औषधालय, जन्म-मरण का लेखा। (१५) धार्मिक यात्राएँ (इनमें भारत से बाहर की यात्राएँ सम्मिलित नहीं हैं)। (१६) श्मशान-भूमि। (१७) शिक्षा। (१८) यातायात; अर्थात् सड़कें, पुल तथा घाट एवं आवागमन के अन्य साधन जिनका

सूची एक में उल्लेख न हो। छोटी रेलवे; ट्रामवे, रोप-वे, जल मार्ग या नदी द्वारा यातायात। बन्दरगाह, किन्तु छोटे। (१९) जल, जल-प्रबंध आबपासी, नहरें, बांध, तालाब, नाले, जलीय शक्ति। (२०) कृषि, कृषि-शिक्षा और अनुसंधान, पशु-चिकित्सा, कांजी हाउस। (२१) भूमि—भूमि के अधिकार; कृषकों और भूस्वामियों के संबंध, लगान की वसूली, कृषि-संबंधी भूमि का हस्तान्तर, विक्रय, क्रम तथा उत्तराधिकार; भूमि की उन्नति, कृषि ऋण, उपनिवेश, कोर्ट आफ वार्ड्स। (२२) वन सम्पत्ति। (२३) खान, तेल के कुएँ तथा खनिज उन्नति। (२४) मछलियों का व्यापार। (२५) बन-पशुओं की रक्षा। (२६) गैस और गैस के कारखाने। (२७) प्रान्त में व्यापार-वाणिज्य, बाजार और मेला, साहूकारा साहूकार। (२८) सराय। (२९) माल की उत्पत्ति, विभाजन, और पूर्ति; उद्योगों की उन्नति। (३०) खाद्य-पदार्थों तथा दूसरे माल में मिलावट; माप-तोल। (३१) शराब तथा अन्य मादक द्रव्यों संबंधी क्रय विक्रय और व्यापार। (३२) गरीबों को सहायता तथा बेकारी। (३३) कारपोरेशन संस्थाओं का सगठन, संचालन व परिमाप्ति; अन्य व्यापारिक साहित्यिक, वैज्ञानिक, धार्मिक आदि संस्थाएँ सहकारी-समितियाँ। (३४) दान तथा दान-दात्री संस्थाएँ; धार्मिक दान-दात्री संस्थाएँ (Religious endowments)। (३५) थियेटर, नाटक, और चित्रपट। (प्रदर्शन के लिए सिनेमा चित्रपटों की स्वीकृति को छोड़कर)। (३६) जूआ सट्टा। (३७) प्रान्तीय विषयों संबंधी क़ानूनों के विरुद्ध होने वाले अपराध। (३८) इस सूची में लिखित विषयों के संबंध में जाँच एवं अङ्क-संग्रह। (३९) भूमि की मालगुज़ारी, मालगुज़ारी संबंधी भूमि की माप। (४०) आबकारी, शराब, गांजा, अफ़ीम आदि पर कर। (४१) कृषि-जन्य-आय पर कर।

(४२) भूमि, मकान, आदि पर कर। (४३) कृषि-भूमि के उत्तराधिकार पर कर। (४४) खनिज अधिकारों पर कर। (४५) व्यक्ति कर (Capitation Taxes)। (४६) व्यापार, व्यवसाय धन्धे पर कर। (४७) पशुओं और नौकाओं पर कर। (४८) माल की बिक्री और विज्ञापनों पर कर। (४९) चुंगी (Municipality) के भीतर बाहर से आने वाले माल पर कर। (५०) विलासिता की वस्तुओं पर कर। इसमें मनोरंजन, दावत, जुए व सट्टे पर कर सम्मलित हैं। (५१) स्टांप-ड्यूटी की दर। (५२) प्रान्त के भीतर जल मार्ग से आने जाने वाले यात्रियों पर कर। (५३) मार्ग कर (Tolls)। (५४) अदालती फ़ीस को छोड़ कर किसी प्रान्तीय विषय संबंधी फ़ीस।

३—संयुक्त व्यवस्थापक सूची

प्रथम भाग १

(१) फौजदारी-क़ानून (जिनमें वे समस्त विषय सम्मिलित हैं जो शासन-विधान की स्वीकृति के समय भारतीय दंड विधान में सम्मिलित थे) किन्तु जो विषय-सूची १ व २ में सम्मिलित हैं, वे छोड़ दिये गये हैं। (२) जाब्ता फौजदारी। (३) एक स्थान से दूसरे स्थान के लिए बन्दियों को भेजना। (४) जाब्ता दीवानी। (५) साक्षी और शपथ। (६) विवाह व तलाक, बालक, नाबालिग़ तथा गोद लेना। (७) वसीयत तथा उत्तराधिकार परन्तु इसमें कृषि-भूमि का उत्तराधिकार शामिल नहीं है। (८) सम्पत्ति-हस्तान्तर। इसमें कृषि-भूमि सम्मिलित नहीं है। कागज़ातों व दस्तावेजों की रजिस्ट्री। (९) ट्रस्ट व ट्रस्टी। (१०) इक़रार-नामा (Contract) हिस्सेदारी-एजेन्सी, किन्तु कृषि भूमि संबंधी इक़रारनामें इसमें सम्मिलित

नहीं हैं। (११) पंचायती निर्णय। (१२) दिवाला। (१३) स्टांप ड्यूटी। (१४) Actionable wrongs। (१५) समस्त अदालतों की अधिकार सीमा एवं सत्ताएँ, संघीय न्यायालय को छोड़कर (१६) कानूनी, मेडीकल तथा दूसरे व्यवसाय। (१७) समाचार-पत्र, पुस्तकें और मुद्रणालय। (१८) पागल-पन, मस्तिष्क-विकार, पागलखाने। (१९) विष तथा घातक द्रव्य। (२०) मशीन द्वारा चलायी जाने वाली गाड़ियाँ। (२१) बॉयलर। (२२) पशु-निर्दयता का अवरोध। (२३) यूरोपियन भिक्षुक तथा जरामय पेशा जातियाँ। (२४) इस सूची के विषयों की जाँच तथा अंक-संग्रह। (२५) इस सूची संबंधी विषयों के संबंध में कर।

द्वितीय भाग २

(२६) कारखाने। (२७) मज़दूरों का हित; मज़दूरों की शर्तें; प्रोवीडेन्ट फंड; स्वामी का दायित्व मज़दूरों की क्षति पूर्ति, स्वास्थ्य बीमा, वृद्धावस्था में पेंशन। (२८) बेकारी बीमा। (२९) ट्रेड यूनीयन; औद्योगिक तथा मज़दूरों संबंधी झगड़े। (३०) रोग-कीटाणुओं तथा मनुष्य, पशु और वृक्षों के स्वास्थ्य के नाशक कीटों का अवरोध। (३१) विद्युत। (३२) सामुद्रिक व्यापार। (३३) सिनेमा के चित्रपटों की स्वीकृति। (३४) संघीय-शासन के अधीन नजरबन्द व्यक्ति। (३५) इस सूची में वर्णित विषयों की जाँच व अंक-संग्रह। (३६) फ़ीस।